पाठालोचन के सिद्धांत
(Principles of Textual Criticism)

U. G. C. BOOKS

साहित्य समालोचना ग्रन्थमाला—6

पाठालोचन के सिद्धांत

लेखक
डा० गोविन्दनाथ राजगुरु
भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ तथा
प्रोफेसर ऑफ इंडोलॉजी, पेइचिङ विश्वविद्यालय, पेइचिङ।

हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़
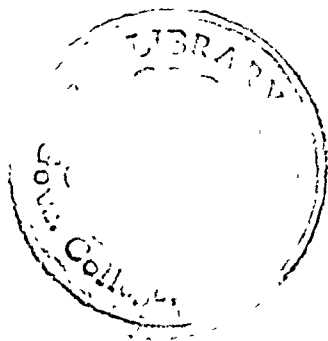
प्रकाशन : 1987
प्रतियां : 1100
मूल्य : 50-00 (Rs. 50-00)

मुद्रक :
मैसर्स परनामी प्रिंटिंग प्रेस, महेशपुर (पंचकूला)

प्रस्तावना

पाठालोचन के सिद्धांत इस पुस्तक का प्रकाशन भारत सरकार की हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओ मे विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ निर्माण योजना के अन्तर्गत किया गया है। विश्वविद्यालय स्तर की पढ़ाई हिन्दी माध्यम मे सभव कराने के लिए विभिन्न विषयो की पुस्तकें तैयार करवाने की यह योजना वैज्ञानिक तथा तक्नीकी शब्दावली आयोग के तत्वावधान मे विभिन्न ग्रन्थ अकादमियो एव पाठय-पुस्तक प्रकाशन बोर्डो द्वारा क्रियान्वित की जा रही है। इस योजना के अन्तगत हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा अब तक 129 पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं। प्रस्तुत पुस्तक इस योजना का 130 वा प्रकाशन है।

'पाठालोचन के सिद्धान्त' पुस्तक डा० गोविन्दनाथ राजगुरु, भूतपूव प्रोफेसर ऑफ इंडोलॉजी, पेइचिड विश्वविद्यालय पेइचिड द्वारा लिखी गई है। प्रस्तुत पुस्तक तीन पर्वों मे विभक्त है। प्रथम पर्व के पाच अध्यायो मे पाठ' सम्बन्धी सिद्धान्तों का फलिताथ दिया गया है। 'बाबा वाक्य प्रमाणम' की लीक छोड कर इस क्षेत्र मे तीन-चार दशको मे अर्जित लेखक के अपनी निजी अनुभवो के आधार पर 'पाठ सम्बन्धी विभिन्न समस्याओ से जूझने का उपक्रम इस पुस्तक मे प्राय सर्वत्र लक्षित किया जा सकता है। मात्र पश्चिम का (अध) अनुकरण तथा भारतीय पाठ' ममज्ञा की निरी अवहेलना जसे सीमान्त बिन्दुओ के मध्य मे एक 'विवेक-सम्मत तथा 'अनुभव पुष्ट' मध्यम माग अपनाया गया है।

द्वितीय पव के दो अध्यायो मे उत्तरापथ की सारस्वत परम्पराओं के विशिष्ट सन्दभ मे 'पारसभाग' का परिचय दिया गया है। इन परम्पराओ की प्रतिनिधि रचना 'पारसभाग' अपनी विभिन्न गुरुमुखी, नागरी तथा उर्दू 'वाचनाओं' (रूपान्तरो) के माध्यम से 'पाठ' सम्बन्धी प्राय प्रत्येक समस्या (अपपाठ, अतिरिक्त पाठ, पाठलोप आदि) का जीवत रूप प्रस्तुत करती है। फलत इन समस्याओ का एक सम्भावित समाधान प्रस्तुत करने के लिए 'पारसभाग' के कुछ अध्यायो, 'सर्गो' तथा 'अवकाशो' (अध्यायो के अवान्तर विभाजनों) का 'पाठ' प्रस्तुत करने का सवप्रथम प्रयास इस पुस्तक मे किया जा रहा है।

वस्तुत खडी बोली गद्य की इस प्राचीन तथा मूधन्य कृति (पारसभाग)

के 'पाठ' पर आधुनिक दृष्टि से विचार करने का प्रारंभिक प्रयास यहां किया गया है।

'पारसभाग' हिन्दी में पूर्वइस्लामी, इस्लामी, यहूदी, यूनानी तत्ववेत्ताओं की 'दृष्टियों' तथा उनकी साधना पद्धतियों का एक मात्र प्रामाणिक तथा प्राचीन 'स्रोत' है। हिन्दी में इस विभूति की सर्वप्रथम प्रस्तुति—भारतीय परम्पराओं के सन्दर्भ मे—पारसभाग में ही की गई है। पारसभाग की इस वैचारिक ऊर्जा तथा भाषा-विभूति (पर्व : 3) से हिन्दी जगत् को परिचित कराने का प्रारम्भिक प्रयास इस पुस्तक में किया गया है।

इसके अतिरिक्त दुर्लभ पाण्डुलिपियों के चित्रों, लिपि कर्म के विभिन्न कलात्मक आयामों, मसी, लेखनी सम्बन्धी अनेक विवरणों तथा लिपिक-वर्ग के 'वर्ग-चरित्र' पर भी इस पुस्तक मे यथावसर विचार किया गया है। इस प्रकार 'पाठ' सम्बन्धी प्राय: सभी प्रश्नों का एकत्र, स्वस्थ तथा सन्तुलित समाधान यह पुस्तक प्रस्तुत करती है।

आशा है 'पाठ' के 'रसिया' लोगों को इससे पर्याप्त मनस्तोष होगा।

प्रस्तुत पुस्तक हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा समकालीन हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं, प्रख्यात साहित्यकारों के कृतित्व तथा मध्यकालीन साहित्य का वस्तुनिष्ठ विवेचन प्रस्तुत करने के उद्देश्य से साहित्य समालोचना की पुस्तकें लिखवाने की योजना के अन्तर्गत तैयार करवाई गई है। इस योजना के विशेष सलाहकार हरियाणा साहित्य अकादमी की ग्रन्थ प्रभाग समिति के सदस्य तथा सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ० नामवर सिंह है। उन्होंने विषय के चयन से लेकर उसके प्रतिपादन तक गहरी रुचि ली है। योजना को पूर्णता प्रदान करने में डॉ० आर. एन. श्री वास्तव, डॉ० नित्यानन्द तिवारी और डॉ० सत्यव्रत शास्त्री ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। हम इन विद्वानों के आभारी हैं।

आशा है प्रस्तुत पुस्तक का छात्रों, शिक्षकों तथा काव्यशास्त्रियों द्वारा स्वागत किया जाएगा।

ओमप्रकाश शर्मा

निदेशक
हरियाणा साहित्य अकादमी
चण्डीगढ़

स्व-गत

अथ पाठ-अनुशासनम् ।

रचनाधर्मिता का दृश्यमान रूप है 'पाठ'। पाठ की रचनाधर्मिता के विभिन्न आयाम, पाठ को रूपायित करने वाले अनेक भौतिक उपकरण तथा पाठ की प्रस्तुति को नयनाभिराम रूप प्रदान करने मे सक्षम अनन्त कलासम्भार पाठ अनुशासन के उपादान तत्व कहे जा सकते हैं। रचयिता के मानसिक तथा बौद्धिक सूक्ष्मतम प्रत्ययो एव उनकी विभिन्न कोटिक सघन अनुभूतियो की—वस्तुत रचयिता के अशेष अन्तस् की—समूची प्रतिकृति भी पाठ ही प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार पाठ जहा रचयिता की सिसृक्षा, उसकी सृजन-प्रक्रिया तथा उसके भावनात्मक अथवा बौद्धिक (लगभग वर्जित) क्षेत्रों मे प्रवेश पाने का एक-मात्र पारपत्र है, वहा पाठ के लिपिक-प्रतिलिपिक वर्ग की बौद्धिक क्षमताओ, लिपिकर्म के प्रति उसकी निष्ठा तथा इस वर्ग की विभिन्न एषणाओ (मुख्यत धन तथा यश लोलुपता) का एक विश्वसनीय चित्र भी पाठ ही प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि जब कभी रचयिता की रचनाधर्मिता के पुख-अनुपुखी विवेचन-विश्लेषण का उपक्रम होता है, तब प्राय लिपिक-प्रतिलिपिक को भी पाठ-अनुशासन की मर्यादाओ के समक्ष अग्निपरीक्षा देने के लिए उपस्थित होना पड़ता है।

पाठ का मूल उत्स है, 'वाक्'। वाक् के 'वैखरी' रूप की प्रथम आक्षरिक प्रस्तुति के साथ 'पाठ' इतिहास के मच पर अवतरित होता है। अपनी इस कालयात्रा के वर्तमान बिन्दु पर पहुचने से पूर्व पाठ को अनेक वात्याचक्रो, सम-विषम उपत्यकाओ-अधित्यकाओ, विभिन्न गर्तो आवर्तों से जूझना पडता है। इस जूझ का ओर-छोर बता पाना सम्भव नही है।

भारत के मनीषियो ने पाठ के लिखित रूप की अपेक्षा श्रुति (उच्चरित) रूप को सुरक्षित रखने की जो (कठ) यान्त्रिक प्रविधि आविष्कृत की, वह पाठ के सार्वभौम इतिहास मे सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि कही जा सकती है। न केवल इसलिए कि यह प्रविधि पाठ के क्षेत्र मे प्राचीनतम ही है, अपितु इसलिए भी कि किसी स्थूल अथवा बाह्य उपकरण पर निर्भर न रह कर मात्र मानवी स्वर-यन्त्र मे अवस्थित विभिन्न तन्त्रियो की सवृत-स्वरित-विवृत स्थिति तथा 'सुर' की आरोह-सम-अवरोह (उदात्त-स्वरित-अनुदात्त) पद्धति की सहायता से—पाठ के विभिन्न

घटकों के माध्यम से—अर्थतत्व की निर्भ्रान्त प्रतीति के लिए भी इस प्रविधि से बढ़ कर तो क्या इसके समकक्ष भी दूसरी कोई प्रविधि प्रस्तुत नही की जा सकी।

इस प्रविधि का प्रशिक्षण एक सुनियोजित पद्धति—गुरु शिष्य, शाखा प्रशाखा तथा परम्परा—के द्वारा दिया जाता था। यह प्रशिक्षण कितना प्रभावी रहा, इसका निदर्शन है प्राक् इतिहास काल से लेकर आज तक यथावत् सुरक्षित चला आ रहा वैदिक संहिताओं का पाठ।

'किम् आश्चर्यम् अत: परम्' !

परन्तु कंठ तथा श्रुति (श्रवण) तक ही सीमित रख कर पाठ की पूर्णतम सुरक्षा की प्रतिभूति प्रदान करना तथा पाठ को इसी सुरक्षित रूप मे उत्तरवर्ती पाठकों-वाचको को सौंपा जाना प्रत्येक 'पाठ' (रचना) का सौभाग्य नही हो सकता। फलत: नितान्त कष्ट-साध्य इस श्रुति प्रविधि के वैकल्पिक रूप में पाठ की आक्षरिक प्रस्तुति को—अगत्या ही—स्वीकृति मिली होगी, यह अनुमान लगाया जा सकता है। परन्तु पाठ की यह अपेक्षाकृत सरल पद्धति रचयिता तथा उत्तरवर्ती लिपिकर्म की कालगत दूरी एवं पाठकों के विचार (भाव) गत वैपम्य के अन्तराल को पाट न सकी।

फलस्वरूप पाठ के सम्बन्ध में विभिन्न कोटिक वैपम्य 'ज्यामितिकीय-वृद्धि-पद्धति' ने—संख्या के स्तर पर—उत्तरोत्तर बढ़ते ही चले गए। अत: आक्षरिक संस्थान में प्रतिष्ठित एवं विभिन्न पाण्डुलिपियो (मुद्रित प्रतियों) में उपलब्ध पाठगत साम्य-वैपम्य को केन्द्र में रखकर तुलनात्मक पद्धति से शुद्ध पाठ का निर्धारण पाठ-अनुशासन की मूलभूत अपेक्षा मानी जाती है। इस युग के पश्चिमी विद्वानों ने अपनी बहुआयामी दृष्टि तथा 'सृष्टि' से पाठ संबंधी सार्वभौम सारस्वत साधना को पर्याप्त गम्भीरता तथा व्यापकता प्रदान की है। 'पाठ' संबंधी प्राचीन तथा अर्वाचीन पद्धतियों-प्रविधियों का प्रारम्भिक अध्ययन प्रस्तुत करने के उद्देश्य से पाठ-अनुशासन की यह पहली 'पोथी' हिन्दी जगत् के सामने प्रस्तुत है।

पाठ अनुशासन से संबंधित प्रामाणिक साहित्य हिन्दी मे अधिक नही है। पश्चिमी विद्वानों की मान्यताओं-पद्धतियों को ही अपेक्षित-अनपेक्षित रूप से प्राय: दुहराया गया है। निश्चय ही आधुनिक युग मे पश्चिमी विद्वानों ने इस क्षेत्र मे अत्यन्त महत्वपूर्ण काम किया है। परन्तु इन मान्यताओं को लक्ष्मण-रेखा मान लेना कदाचित् सारस्वत-अपेक्षाओं से—चुनौतियों से—पलायन करना ही होगा।

पश्चिम मे 'बाइबल' के पाठ को लेकर पर्याप्त चर्चा हुई है। इस चर्चा

को 'Higher criticism' कहा जाता है। केवल इसी आधार पर पाठ सम्बन्धी ऊहापोह को 'उच्चतर आलोचना' कह डालना बौद्धिक दासता की 'ग्रंथि' का ही विज्ञापन हो सकता है।

हिन्दी मे यह विषय इतना नवीन है कि अभी तक इसका विधिवत् नामकरण सस्कार भी नहीं हो सका है। इसके लिए किसी एक अभिव्यजक अभिधान के सम्बन्ध मे पर्याप्त मतभेद विद्यमान हैं। पाठालोचन, पाठानुसधान, पाठ-विज्ञान तथा सम्पादन शास्त्र जैसे नाम इसके लिए प्राय प्रस्तावित किए गए हैं। अंग्रेजी के Textual criticism के वजन पर गढ़े गए इनमे से कुछ शब्दो का अनगढ रूप स्पष्ट ही है। आलोचना से सबधित 'आलोचना' शब्द साहित्य को एक विशिष्ट विधा से इस प्रकार जुड़ा है कि वहा से उखाड़कर इसे 'पाठ' के क्षेत्र मे प्रत्यारोपित करना बहुत सगत नहीं जान पड़ता।

युग-प्रभाव के कारण आज विज्ञान शब्द विज्ञान के क्षेत्र से बाहर पड़ने वाले विषयों के लिए भी अवैज्ञानिक ढग से प्रयुक्त हो रहा है। भाषा-विज्ञान, समाज विज्ञान आदि शब्द विज्ञान के 'प्रकोप' के शिकार हुए हैं। विज्ञान के प्रति इस अतिरिक्त मोह पर देर-सबेर अकुश लगाना ही होगा। इसी प्रकार 'सपादन' को भी समाचार पत्रो तक ही रहने दिया जाए तो उचित ही होगा। अंग्रेजी के 'एडिटर' को यहा तक घसीटना क्या अनिवार्य है ?

पाठ-अनुसधान शब्द इस क्षेत्र की प्रमुख प्रवृत्ति को निश्चय ही रेखाकित करता है। चूकि पाठ की प्रकृति (विकृति) तथा इसकी अन्य समस्याओं को यह शब्द अछूता ही छोड देता है, इसलिए इस सदर्भ में इसका प्रयोग एकागी ही जान पडता है।

इन शब्दों की तुलना मे अपना शत प्रतिशत स्वदेशी 'पाठ-अनुशासन' शब्द इस क्षेत्र की सीमाओं में आने वाले प्रत्येक विचारविन्दु तथा इससे सम्बन्धित प्रक्रिया के प्रत्येक चरण का बोध सफलता पूर्वक करा सकता है। 'शब्दानुशासन' समूचे व्याकरण शास्त्र का बोध कराता आ रहा है। 'पाठ-अनुशासन' शब्द भी अपने क्षेत्र की समग्र अर्थक्षमता को वहन कर सकता है। आवश्यकता होने पर नव-नव-अर्थ-विच्छित्तिया भी इसी मे समाहित हो सकती हैं। शब्द तथा अर्थ के सम्बन्धो का यही चिरपरिचित इतिवृत्त है। अस्तु।

पाठ अनुशासन मात्र बौद्धिक विलास नहीं है। इसकी आवश्यकता प्रत्येक स्तर के पाठक को हुआ करती है। गीता के 'अह वैश्वानरो भूत्वा' को 'श्वा नरो' (अर्थात् श्वान नर) के रूप मे परिवर्तित कर डालने वाला पाठ अर्थ के स्तर पर कितना मारक हो सकता है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

एक साधु को अपने गुरू जी की पोथी में 'श्रीगणेशाय नमः' के स्थान पर एक विचित्र पाठ मिला। लिपिक अथवा वाचक की भ्रान्ति के कारण य' 'टा' का रूप धारण कर चुका था। फलतः 'श्रीगणेशाटा नमः' या 'टंनमः' साधु महाराज जपने लगे। कालान्तर मे इस साधु ने अपने सद्योमुंडित शिष्य को भी 'टंनमः' वाला पाठ गुरुमंत्र के रूप में दिया। संयोगवश शिष्य को किसी अन्य स्रोत से शुद्ध पाठ (श्रीगणेशाय नमः) उपलब्ध हुआ। गुरू जी से पूछने पर टकसाली उत्तर मिला, 'अपने अखाड़े का तो यही पाठ है'। धार्मिक आग्रहों के कारण अशुद्ध पाठ को भी यथावत् सुरक्षित रखने की भावना का निदर्शन इस अनुश्रुति से होता है।

चूंकि पाठ अनुशासन प्रायोगिक पद्धति पर आधारित है, इसलिए मात्र सिद्धान्त कथन इस क्षेत्र में अपनी सार्थकता खो देता है। रचयिता को ऐसे लिखना चाहिए, लिपिक को लिपिकर्म इस प्रकार करना चाहिए अथवा पाठ-अनुसंधाता को इन विधि निषेधों का पालन करना चाहिए जैसी 'चाहिए' के अतिरेक से अंटी वाक्य-योजना तटस्थ अथवा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती। 'कथनी से करनी भली' की संत-दृष्टि इस क्षेत्र में कदाचित् अधिक सार्थक हो सकती है।

सार्थकता की इसी तलाश में सिद्धान्त कथन के साथ-साथ मध्यकालीन हिन्दी (खड़ीबोली) की एक अन्यतम गद्यकृति (पारसभाग) के कतिपय सर्गों का 'पाठ' तथा इस 'पाठ' में उपलब्ध वैभव को रेखांकित करने का प्रयास भी इस 'पोथी' मे किया गया है।

स्पष्टीकरण

पंजाब तथा गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध 'पारसभाग' को ही तुलनात्मक पाठ की प्रस्तुति के लिए क्यों चुना गया? इस प्रश्न की सम्भावना—विशेषतः आज के विषाक्त वातावरण में—सहज ही है।

वैसे तो, इस प्रश्न का अनौचित्य पाठ-अनुशासन की सार्वभौम परम्पराओं के सन्दर्भ में स्वतः स्पष्ट है। पाठ-अनुशासन को किसी विशिष्ट देश-प्रदेश अथवा किसी लिपि या भाषा की कारा में बन्दी नहीं बनाया जा सकता। प्रो० मैक्समूलर ने धर्मतः ईसाई तथा जन्मतः यूरोपियन होते हुए भी ऋग्वेद का 'पाठ' इस शती के प्रारम्भ में सर्वप्रथम प्रस्तुत किया था। कनिंघम, मार्शल, हुल्त्स, पिशल, याकोबी, फयोदोर श्चेर्बात्स्की, प्रभृति विद्वानों ने धर्म, देश, अथवा राष्ट्रीयता की सीमाओं से कहीं ऊपर उठ कर भारतीय साहित्य का आजन्म पारायण किया और इस क्षेत्र में विभिन्न रचनाओं का पाठ प्रस्तुत कर अक्षय कीर्ति अर्जित की। वस्तुतः पाठ-

अनुसधाता के लिए किसी कृति का मात्र 'कृति' होना तथा 'विकृति' न होना ही पर्याप्त है। वस्तुनिष्ठता तथा वैज्ञानिक दृष्टि की यह सर्वप्रथम अपेक्षा है।

इसके अतिरिक्त जिस पजाब मे पारसभाग की रचना हुई थी, वह पजाब आज का खडित या विघटित पजाब न था। उस समय पजाब आधुनिक पाकिस्तान के अटक से लेकर अम्बाला तथा वहा से दिल्ली तक फैला हुआ था। हिमाचल भी इसी पजाब का एक घटक था।

गुरुमुखी लिपि के नाम पर भी लोग चौंक सकते हैं। इसलिये यह बता देना आवश्यक जान पड़ता है कि उत्तरापथ में प्रचलित (नागरी सहित) किसी भी अन्य लिपि मे खडी बोली गद्य की महनीय रचनाओं की इतनी प्राचीन तथा प्रामाणिक परम्परा नहीं है, जितनी कि गुरुमुखी लिपि मे आज भी उपलब्ध है। इस परम्परा की एक कालजयी कृति है, 'योग-वासिष्ठ-भाषा'। परन्तु इस रचना को *'कुण्डली' मे उपेक्षा के कुछ ऐसे विकट योग पड़े हैं कि प० राम* चन्द्र शुक्ल की सस्तुति के बावजूद इस कृति के 'पाठ' पर कोई सार्थक चर्चा कहीं देखने सुनने को आज तक नही मिली। नागरी प्रचारिणी सभा के किसी कल्पना प्रवण 'अन्वेषक' ने साठ-सत्तर वर्ष पूर्व 'योग वासिष्ठ भाषा' के सन्दर्भ मे अनर्गल कल्पना-जल्पना का जो जाल बुना था, उसे आज तक छिन्न-भिन्न नहीं किया जा सका। हिन्दी के इतिहासकारो ने प० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा दिए गए 'योग-वासिस्ठ-भाषा' के विवरण तथा उन्हीं के एक मात्र उद्धरण को नकल-दर-नकल' रूप से प्राय उद्धृत करते जाना ही पर्याप्त मान लिया।

नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से 1883 से 1914 तक प्रकाशित होने वाले पारसभाग (नागरी वाचना) के पाच सस्करणों की खबर शुक्ल जी को भी नहीं थी। शुक्लजी के पदचिन्हों पर चलते हुए उत्तरवर्ती इतिहासकार इस 'लक्ष्मण-रेखा' का उल्लघन कैसे करते? इस चिर-उपेक्षित रचना (पारसभाग) का आशिक पाठ तथा इसकी रचनाधर्मिता के कुछ आयामों का दिग्दर्शन इस 'पोथी' मे सर्वप्रथम कराया जा रहा है।

इस स्व-गत कथन के अत में यह कहना भी आवश्यक है कि प्रस्तुत पोथी मे पाठ-अनुशासन सम्बन्धी एकाधिक स्थलो पर अपने कुछ गुरुजनों तथा कुछ 'अग्रजो के साथ सहमत होना सभव नही हुआ। इसे अवज्ञा न समझा जाए। सभव है उनकी दृष्टि का ठीक से आकलन इन पक्तियों का लेखक न कर पाया हो। पाठ अनुशासन के क्षेत्र में काम करने वाले अनेक साधकों का साभार स्मरण करना तथा इस क्षेत्र के नायक (खलनायक) अर्थात् लिपिक वर्ग की यह स्वीकारोक्ति ,

'भुल्लण अन्दर सभ कोउ,
अभुल्ल गुरू करतार'

उद्धृत करना सारस्वत ऋण से उरिण होंने का प्रयास ही है।

अंत में यह कहना उचित प्रतीत होता है कि हरियाणा साहित्य अकादमी ने 'पाठ-अनुशासन' जैसे अभिनव विषय पर यह पुस्तक हिन्दी मे उपलब्ध कराने की योजना बनाई और इस योजना के माध्यम से हिन्दी के पठन-पाठन को एक नवीन आयाम देने का महत्वपूर्ण काम किया, तदर्थ समस्त हिन्दी जगत् 'अकादमी' का कृतज्ञ रहेगा !

18/40, पंचकूला
महाशिवरात्रि, सवत् 2043

गोविन्दनाथ राजगुरु

विषय-सूची

द्वितीय पर्व

तृतीय पर्व

पुस्तक सूची

समर्पण

जिनकी आजीवन साधना के फलस्वरूप 'पाठ' को सार्वभौम स्तर पर 'अनुशासन' की गरिमा मिली उन्हीं समानधर्मा अनुसन्धाताओं को 'पाठ अनुशासन' की यह पहली 'पोथी' ('बाल-उपदेश') सादर समर्पित।

—गोविन्दनाथ राजगुरु

अध्याय 1

पाठ स्वरूप

सहिता पाठ पद-पाठ, पाठ-नवसकल्प, लिखित सामग्री-समग्रता, नयनोत्सव, भारतीय लिपियाँ, दो वर्ग, उर्दू-रोमन, रोमन लिपि, लिप्यासन, कागज, पाषाण धातु, लेखनी, मसी स्याही, मसीधानी, पाठ-तत्व। पाद टिप्पणिया 1-17

पाठ एक बहु-आयामी शब्द है। मूलत 'पठ' (पढना) से सबधित यह शब्द-अर्थ विकास की अपनी लबी यात्रा मे अर्थ के अनेक छाया-समूहो, अभिप्रेय की अनेक विच्छित्तियो तथा प्रसग-विशेष-वश वक्ता-प्रयोक्ता की अनेक भाव-भगियो के साथ जुडता आ रहा है। वैदिक युग मे मत्रो का उच्चारण न केवल अक्षर तथा शब्द की नियत आनुपूर्वी से ही किए जाने का विधान था, प्रत्युत मत्र के प्रत्येक शब्द का उदात्त-अनुदात्त-स्वरित (उतार-चढाव तथा समभाव) की पद्धति से उच्चारण करना अभीष्ट फल-प्राप्ति के लिए अनिवार्य माना जाता था। स्वर-मात्रा-वर्ण के व्यत्यय से तो मत्र 'वाग् वज्र' बन जाता है, यह थी वैदिक युग की मान्यता।[1]

सहिता-पाठ इस मान्यता के अनुरूप वैदिक मत्रों को शुद्धतम रूप में रखने और इसी रूप मे भावी पीढियो को सौंप देने के उद्देश्य से उस युग के भी मनीषियों ने विभिन्न पद्धतिया अपनाई। इन पद्धतियो को 'पाठ कहा जाता था।

वैदिक मत्रो के उच्चारण की प्रमुख विधि थी, 'सहिता पाठ'। सधि -समास आदि की सुरक्षा करते हुए किसी मत्र का सस्वर पाठ सहिता पाठ

कहलाता था। वेदों के आधुनिक मुद्रित संस्करणों अथवा वेदों की हस्तलिखित प्रतियों में 'संहिता पाठ' ही आजकल उपलब्ध होता है।

पद-पाठ : मंत्रगत-पदों को संधि तथा समास आदि के नियमों से मुक्त कर—प्रत्येक पद को उसके मूल रूप में रख कर—पद – पाठ प्रस्तुत किया जाता था। भाषा के विभिन्न घटकों (प्रकृति-प्रत्यय आदि) की निर्भ्रान्त उपलब्धि-पद पाठ की प्रमुख विशेषता कही जा सकती है; आधुनिक युग मे प्रकाशित वैदिक संहिताओं मे प्राय. पद-पाठ दिया जाता है। हस्तलिखित प्रतियों मे तो प्राय: पद-पाठ मिलता ही है। इन दो पाठ-विधियों के अतिरिक्त 'जटा पाठ' तथा 'घन पाठ' आदि कई पाठ-विधियो का विधान वैदिक साहित्य मे पाया जाता है। वस्तुत: प्राचीन भारतीय पाठ अक्षरो तथा शब्दों की आनुपूर्वी, स्वर-पद्धति के पूर्ण-पालन, सुस्पष्ट तथा शुद्ध उच्चारण का प्रतीक है। स्वर पद्धति तो वैदिक युग के साथ समाप्त हो गई। अतत: पाठ शब्द शुद्ध तथा सुस्पष्ट उच्चारण तथा इस उच्चारण के शुद्धतम लिखित रूप का बोधक शब्द बन गया।

पाठ का यह वैदिक संकल्प पाठ-अनुशासन के क्षेत्र में न केवल प्राचीनतम ही है, प्रत्युत पाठ को अविकल रूप मे उच्चरित करने तथा इसी रूप में उत्तरवर्ती वाचकों (पाठकों) तक सफलतापूर्वक संप्रेषित कर सकने की दृष्टि से भी अद्वितीय ही कहा जाएगा।[1]

पाठ की इसी पद्धति के फलस्वरूप वैदिक संहिताएं हम तक प्राय: अपने मूल रूप में ही पहुची हैं। संसार में कोई भी इतनी प्राचीन रचना अपने मूल रूप में इस प्रकार सुरक्षित नहीं रखी जा सकी।[2]

'किम् आश्चर्यम् अत: परम्' !

पाठ. नव-संकल्प : वैदिक युग के इस पाठ-संकल्प के कारण पाठ शब्द परम शुद्धता तथा पवित्रता के साथ-साथ किसी ग्रन्थ विशेष की संपूर्ण या आंशिक आवृत्ति का भी बोधक बन गया। पाठ के इस संकल्प के साथ कर्मकाण्ड के अनेक विधि-विधान भी जुडते चले गए। पाठ से संभावित आध्यात्मिक या भौतिक समृद्धियों का 'अर्थवाद-शैली' में प्रस्तुत आकर्षक विवरण इस पाठ-पद्धति को अधिक लोकप्रिय बना सका। इस प्रकार 'पाठ' भारतीय जीवन पद्धति का एक अनिवार्य अंग बनता चला गया। अन्यत्र भी धर्म-पुस्तकों का पाठ धार्मिक अनुष्ठानों अथवा जीवन पद्धति का अनिवार्य अंग माना जाता है। इस्लाम की परिधि में 'तिलावत' अथवा 'क़ुर्आन-ख़ानी' का मूल्य और महत्व पाठ से कम नहीं है। अपने धार्मिक तथा आध्यात्मिक संकल्प के अतिरिक्त पाठ शब्द साहित्य के क्षेत्र मे एक भिन्न अर्थ का बोधक है। किसी विचार या भाव

का लिखित रूप सामान्यत पाठ कहलाता है। पाठ के इस लिखित रूप के अतिरिक्त किसी यात्रिक प्रविधि की सहायता से सुरक्षित शब्द-समूह (गायन-भाषण आदि) भी पाठ कहा जा सकता है। गायन-भाषण के 'टेप' पाठ की सीमा मे ही आएगे। उच्च तथा उच्चतम न्यायालय 'टेप' को लिखित पाठ के समकक्ष 'साक्ष्य' के रूप मे अब स्वीकार करने लगे हैं।

अतः केवल इतना ही है कि पाठ का प्राचीन सकल्प केवल लिपि तथा 'चाक्षुष-सन्निकर्ष' (दृष्टि-सम्पर्क) *तक ही सीमित था। आज यत्रिकों की* सहायता से पाठ का क्षेत्र केवल आख तक न रह कर कान तक फैल गया है। पाठ के क्षेत्र मे 'श्रुति' का फिर से प्रतिष्ठित होना कदाचित् इतिहास की अपने आपको दुहराते रहने की अनवरत प्रक्रिया का ही एक अग है।

लिखित सामग्री समग्रता इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पाठ शब्द अपनी विस्तृत परिधि मे लिपि तथा लिखित सामग्री की समग्रता को समेटे हुए है। क्योकि लिखित सामग्री—विशेषत परम्परा प्राप्त लिखित सामग्री-के साथ लिपि तथा लिपि-कर्म की विविध प्रणालिया सबधित हैं। इनके अतिरिक्त 'लिप्यासन' (शिला, धातु, भोजपत्र, ताम्रपत्र तथा कागज) के अनेक प्रकार भी 'पाठ' के साथ जुडे हैं।

तात्पर्य यह कि पाठ अनुशासन के क्षेत्र मे पाठ शब्द परम्परा प्राप्त लिखित *सामग्री के विविध रूपो मे से किसी एक अथवा एक से अधिक लिपि-बद्ध रूपो* का बोधक है।

नयनोत्सव दूसरे शब्दो मे पाठ मे निहित मनुष्य के विचार (भाव) जगत की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि को रूपायित करने वाला भव्य कला—समूह (जसे, अलकृत अक्षर विन्यास, चित्रावली, लिप्यासन को अधिकाधिक मसृण एव मनोज्ञ बनाने की विविध पद्धतिया, लेखनी, मसी आदि के अनेक मनोज्ञ प्रकार आदि कलात्मक सभार) भी पाठ मे ही समाहित रहता है इस कलात्मक सभार के माध्यम से पाठ-भरतमुनि के शब्दों मे - नयनोत्सव की गरिमा को धारण कर लेता है।

लिपि यदि पाठ (भाव या विचार) को भाषा की आत्मा कह सकें तो *लिपि निश्चय ही पाठ का दृश्यमान शरीर सस्थान है।*

भारतीय लिपिया दो वर्ग मनुष्य ने अपने विशिष्ट ध्वनियत्र, अपनी भाषिक आवश्यकताओ तथा अपने भौतिक परिवेश के अनुरूप ससार के विभिन्न भागो मे विभिन्न लिपियो का विकास किया है। दक्षिण-पूर्वी-एशिया के भारतीय भू-खण्ड मे ब्राह्मी से विकसित नागरी, गुरुमुखी, बगला, उडिया, आदि

लिपियां उत्तर में तथा तेलुगू, तमिल, मलायालम, कन्नड आदि लिपियां दक्षिण में प्रचलित है। भारत के विभिन्न अंचलों में बहुत-सी क्षेत्रीय लिपियों का प्रयोग भी एक विशिष्ट वर्ग की सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शताब्दियों से होता आ रहा है। महाजनी, मुडिया, लंडे आदि लिपिया थोडे बहुत अंतर के साथ पेशावर (पाकिस्तान) से लेकर दिल्ली तक प्रचलित रही है और आज भी प्रचलित हैं।[3] जम्मू से लेकर शिमला और वहा से अलमोड़ा तक फैली हुई क्षेत्रीय लिपियों का अध्ययन-विश्लेषण अभी होना है। क्षेत्रीय लिपियों की इस जीवंत धारा को नाम-शेष होने से बचाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक प्रबल तथा सक्रिय अभियान यथाशीघ्र अपेक्षित है। क्षेत्रीय बोलियों-उपबोलियों-को रूपायित करती हुई ये क्षेत्रीय लिपियां भारत की सारस्वत गरिमा की साक्षी देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बोली तो कुछ कोस पार करने पर अपना चोला बदल ही लेती हैं, लिपि भी बोली के नये चोले के अनुरूप प्रायः एक नव भंगिमा के साथ-क्षेत्र विशेष की ध्वन्यात्मक अपेक्षाओ के अनुरूप-अपनी नई भूमिका मे उतरने के लिए अधिक विलम्ब नही करती।

उर्दू : रोमन : भारत की प्रमुख तथा क्षेत्रीय लिपियों को दो वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है। एक है भारतीय—शत प्रतिशत विशुद्ध भारतीय-लिपि वर्ग और दूसरा है विदेशी लिपियो से प्रभावित भारतीय-लिपि-वर्ग। भारतीय लिपि वर्ग मे ब्राह्मी (शारदा) से विकसित नागरी, गुरुमुखी आदि लिपियां विभिन्न कोटिक लिपि कर्म में प्रयुक्त होती आ रही हैं।

विदेशी लिपियों में अरबी-फारसी मूलक (सेमेटिक परिवार की पर्सो-अरेबिक) उर्दू लिपि उल्लेखनीय है। वैसे तो, उर्दू लिपि काफी हद तक भारतीय लिपि बन चुकी है। उत्तरी भारत में उच्चरित होने वाली अनेक ध्वनियों को भी इसमें स्थान मिल चुका है और इसका प्रचलन भी काफी है। परंतु उर्दू को मात्र एक लिपि समझना भूल होगी। अरबी-फारसी शब्द-बहुल एक विशिष्ट भाषा के रूप में भी उर्दू अपनी एक अलग पहचान बनाती है। इतिहास की दृष्टि से सम्राट अशोक के खरोष्ठी लिपि में उत्कीर्ण शिलालेखों की उत्तराधि-कारिणी है उर्दू लिपि! भारतीय लिपियों और उर्दू-लिपि के इतिहास-प्रसिद्ध इन संबंधों को नकारना एक सांस्कृतिक भूल होगी।

प्रेमाख्यानक काव्य-चंदायन तथा पद्मावत आदि-की अनेक प्रतियां उर्दू लिपि में मिलती हैं। श्रीमद्भगवद् गीता के एक उर्दू अनुवाद (लिपिकाल : 1835 ई०) की प्रति में गीता का मूल रूप (संस्कृत श्लोक भी) उर्दू लिपि में उपलब्ध है। इस प्रकार की बहुतसी रचनाएं पूना, जयपुर तथा पटियाला की विभिन्न ग्रंथ सूचियों मे संदर्भित हैं।

रोमन लिपि अंग्रेजों ने रोमन लिपि का प्रचार करने की चेष्टा की थी। सेनाओ के लिए अरबी-फारसी शब्द-बहुल एक कृत्रिम भाषा रोमन लिपि के माध्यम से गढने का साम्राज्यवादी प्रयास किया गया। द्वितीय महायुद्ध के दिनो इसका ज़ोर-शोर से प्रचार किया गया। कुछ भारतीय विद्वानो ने नागरी लिपि के विकल्प के रूप मे रोमन लिपि की वकालत भी की। परतु रोमन लिपि भारत मे कोई प्रभावी भूमिका निभा पाएगी, इसमे पर्याप्त सदेह है।

लिप्यासन लिपि के माध्यम से पाठ लिप्यासन के साथ सबद्ध है।

लिपि के अक्षर (अक आदि) जिस आधारफलक पर प्रतिष्ठित किए जाते हैं, उसे लिप्यासन[4] (लिपि, लेख, पाठ का आधार) कहा जाता है। लिप्यासन दो प्रकार के हैं, कोमल लिप्यासन तथा कठोर लिप्यासन।

कोमल लिप्यासन वनस्पतियो तथा प्राणियो से उपलब्ध सामग्री विशेष से कोमल लिप्यासन तैयार किए जाते थे। वनस्पति-जगत के ताड,[5] भूज[6] (भोज) अगरू[7] (अगर) आदि वृक्षो की छाल से तथा कपास (कपडे)[8] से तैयार किए गए लिप्यासन अत्यत प्राचीन काल से लिपिकर्म के लिए प्रयुक्त होते रहे हैं। पशुओ की खाल को चिकना बना कर उस पर भी लिखा जाता था।[9] इन सभी प्रकारों के लिप्यासनो पर लिखित पाठ भारत मे तथा भारत के बाहर आज भी उपलब्ध हैं। महाभारत (आदि पर्व) की प्राचीनतम प्रति ताडपत्रो पर लिखी नेपाल से ही प्राप्त हुई है।[10] वस्तुत लिपिकर्म के साथ वनस्पति-जगत से ली गई बहुत सी शब्द-सामग्री प्राचीन काल से ही जुडी चली आ रही है। पत्र, पर्ण (पन्ना), शाखा, पत्र, स्कध प्रभृति शब्द वनस्पति जगत से ही लिए गए हैं तथा लिपि-कर्म के सदर्भ मे इन सभी शब्दो का प्रयोग होता आ रहा है।

कागज़ विगत चार पाच सौ वर्षों से प्राय कागज ही लिखने के काम मे आ रहा है। कागज़ उद्योग के विस्तार का भी यही कारण है। कागज पर लिखी पुस्तकें आज सर्वाधिक प्रचलित हैं।[11]

कठोर लिप्यासन कोमल लिप्यासन की सामग्री-विभिन्न प्राकृतिक कारणो अथवा मानवी उपेक्षा से शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाती थी। फलत कोमल लिप्यासन के स्थान पर कठोर लिप्यासन की व्यवस्था भी बहुत प्राचीन समय में की गई। काष्ठ-पाषाणखडो, शिलाओ तथा विभिन्न धातुओ की ठोस सतह पर —पर्याप्त समय तथा श्रम पूर्वक अपनाई गई-अनेक प्रविधियो की सहायता से-लिखा पाठ चिरस्थायी सिद्ध हुआ।

काष्ठ लकडी की सतह को चिकना बना कर उसके निश्चित आकार प्रकार के टुकडे काट लिए जाते थे। काष्ठ-खडो-पट्टियो पर उत्कीर्ण प्राचीन

लेख संसार भर में मिले हैं। चीन में लकड़ी के 'ब्लॉक' (ठप्पे) बना कर पुस्तकें छापी जाती थी। भारत में लिपिकर्म के लिए काष्ठ का प्रयोग अधिक नही हुआ।

पाषाण : मानव अपने पाषाण-युग से ही पाषाणों, शिला-खण्डों अथवा विभिन्न आकार प्रकार के पत्थर के टुकड़ों को अपनी आदिम कला या लिपि के लिए आधार फलक के रूप मे प्रयुक्त करता आ रहा है। सम्राट् अशोक तथा ईरान के सम्राट् देरियस के विशाल शिलाखंडों, स्तम्भों तथा स्तूपों पर उत्कीर्ण अभिलेख मानवीय सभ्यता के गौरव-ध्वज हैं।

धातु : मेहरौली (दिल्ली) के अष्टधातु स्तम्भ पर उत्कीर्ण अभिलेख तथा सुवर्ण[12] एव रजत के प्राचीन दानपत्र अपने लिपिकर्म के साथ-साथ उत्कृष्ट कला तथा प्रविधि का भी सर्वोत्तम रूप प्रस्तुत करते है। धातुओं मे मुख्यतः तांवा[13] लिपिकर्म के लिए प्रायः प्रयुक्त होता था। ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण लेख सर्वत्र मिले हैं। राजकीय आदेश, तथा पट्टे-परवाने ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण करवाने की परपरा पिछली शताब्दी तक प्रचलित रही है। लिपि तथा लिप्यासन संबंधी इस संक्षिप्त विवरण से यह सिद्ध हो जाता है कि आत्मप्रकाशन की अपनी सहज प्रवृत्ति को मनुष्य ने असंख्य लिपियो, कल्पनातीत लिप्यासनों तथा अनगिनत भाषाओं के माध्यम से 'पाठ' के धरातल पर रूपायित किया है। 10/585

लेखनी : समस्त लिपिकर्म तथा इसके माध्यम से पाठ का अविकल रूप लेखनी[14] के साथ अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है। लेखनी शब्द तूलिका (ब्रश), शलाका (पाठ-उत्कीर्ण करने के लिए लोहे की कलम), वर्णिका, वर्ण—वर्तिका तथा वर्णक (संभवतः चित्रकला अथवा पाठ मे यत्र तत्र रग के प्रयोग-निमित्त कोई रंगीन पेंसिल जैसी वस्तु) आदि विभिन्न उपकरणों के लिए भी हुआ है। डा० बुहलर के अनुसार 'लिपि कर्म के साधन को सामान्यतः लेखनी कहा गया है। स्टाइलस (शलाका) पैन्सिल, ब्रश, (सरकडा : नरसल) अथवा लकड़ी के बने क़लम प्राचीन साहित्य मे उल्लिखित हैं'।[15] लेखनी संबंधी प्राचीन उल्लेखों से पता चलता है कि उस युग के लेखक या लिपिक लेखनी का चुनाव बड़ी सावधानी से करते थे और इसके रख-रखाव के प्रति वे बहुत सजग थे। वस्तुतः भारत मे लेखनी को भी पाठ (पुस्तक) की सारस्वत गरिमा प्रदान की गई थी।[16]

मसी (स्याही) : कुछ परम्पराओं के अनुसार प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव 'असि' (खड्ग), मसि तथा कृषि के प्रथम शास्ता थे। वस्तुतः मसी (मषी, मशिः रूपातर) के बिना लिपिकर्म (पाठ) की कल्पना नही की जा सकती।

भारत मे मसी संबंधी अनेक प्राचीन विवरण उपलब्ध हैं। मसी के अनेक

रंग और प्रकार, उनके बनाने की अनेक विधियां तथा उत्तम मसी के गुण अनेक ग्रन्थों में उल्लिखित हैं।

आज मसी के लिए प्रचलित शब्द है, स्याही। स्पष्ट है कि यह शब्द फारसी 'स्याह' (काला) से विकसित हुआ है, चूंकि सामान्यत सभी प्रकार के लिप्यासनों पर काली मसी से ही लिखा जाता है, इसलिए मसी का मुख्य नाम स्याही हो गया।

कालांतर में स्याही का 'स्याह' कहीं लुप्त हो गया और लाल, पीली, हरी आदि सभी रंगों की मसी स्याही कहलाने लगी। 'अर्थ विस्तार' का यह अच्छा उदाहरण है।

अक्षरों को चमकदार बनाने के लिए मसी कई प्रकार से बनाई जाती थी। मुनि पुण्य विजय, गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा तथा बुहलर प्रभृति विद्वानों ने पक्की तथा चमकदार स्याही बनाने की परंपरा प्राप्त कई विधियों का उल्लेख किया है।[17]

पक्के रंग वाली और चमकदार स्याही के साथ एक ऐतिहासिक जालसाजी की घटना भी जुड़ी हुई है। राजतरंगिणी के प्रसिद्ध लेखक जोनराज ने अपने एक मुकद्दमे के संबंध में लिखा है, 'मेरे प्रपितामह ने एक प्रस्थ भूमि बेची। विक्रय-पत्र में 'भू-प्रस्थम्-एकम्' स्पष्ट लिखा था। खरीदने वाले ने (विक्रेता के मर जाने पर) मूल विक्रय पत्र में एक प्रस्थ के स्थान पर दस प्रस्थ लिख (लिखवा) कर दस प्रस्थ भूमि पर अपना स्वामित्व सिद्ध करने का यत्न किया। कश्मीर के तत्कालीन शासक जैन-उल-आबदीन के सामने भू-विक्रय संबंधी यह विवाद लाया गया। शासक ने विक्रय पत्र पानी में डलवा दिया। परिणामत विक्रय-पत्र के कच्ची स्याही से लिखे नवीन अक्षर तो घुल गए। परंतु मूल अक्षर यथावत् बने रहे और विक्रय पत्र का मूल पाठ सामने आ गया।'

शेख फरीद ने शायद इसीलिए कहा था।

'जे तू अक्ल लतीफ, काले लेख न लिख'

(आदि ग्रन्थ)

कबीर ने भी स्याही की कालिमा को कुकर्म—धोखा-धड़ी-के साथ इस प्रकार संबद्ध किया है

'मसि के करम कपाट' (आदि ग्रन्थ सलोक कबीर)

मसीधानी आधुनिक दवात के लिए प्राचीन शब्द है, *मसीधानी*। 'धानी' शब्द के मूल में 'धा' धातु है और इसका अर्थ होता है, रखना। इस प्रकार मसीधानी का अर्थ, है 'वह पात्र जिसमें मसी रखी जाए, दवात'

पाठ-तत्व : प्राचीन काल में मिट्टी, शीशे या किसी धातु की बनी दवात का प्रचलन था। इसमें पहले रुई या कपड़े (सूफ) का गीला टुकड़ा रखते थे। फिर स्याही का घोल इसमें डालते थे। आवश्यकता होने पर इसमे पानी डालते रहते थे।

इस संक्षिप्त विवेचन को ध्यान में रख कर 'पाठ' के ये तत्व निर्धारित किए जा सकते है :—

1. लिपि (अथवा फिल्म या टेप आदि),
2. लिप्यासन,
3. किसी भाव (विचार) की प्रस्तुति,
4. प्रस्तुत भाव(विचार)की विविध दृष्टियों से विवेचन-विश्लेषण-योग्यता,
5. निश्चित आकार,

एक अक्षर या पंक्ति या शब्द से लेकर 'एक लाख श्लोकों का संग्रह' महाभारत भी पाठ की इकाई मात्र है।

पाद-टिप्पणियां

1. डा० काने इस अद्वितीय पद्धति के बारे में लिखते हैं :
'The hymns of Rigveda, as we read them today in our printed editions, have remained almost analtered, word for word, syllable for syllable, accent for accent during the last three milleniums'
(Indian Textual Criticism. Page. 14)

2. प्रो० काशीकर ने An examination of Max Muller's Rigveda Samhita and PADA Text मे लिखते है
'India has been fortunate in preserving the sacred texts without a single mistake, eihter in letter or accent, by means of oral tradition peculiar of its own. The tradition has been preserved even to the present day and there will not be a single variation in the recitation of the sacred texts through out the length and breath of this vast country'
(Poona Orientalist : No. 1 and 2 Vol. 13 Page. 47-56)

3. पेशावर से लेकर दिल्ली तक फैले पंजाब मे नागरी, गुरमुखी के अतिरिक्त अनेक क्षेत्रीय लिपियों का परिचय तथा उनके प्रचार-प्रसार की साक्षी डा० लाइटनर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में दी है। देखिए :
History of Indigeneous System of Education : Since Annexation and in 1882. G. W. Leitner

4 लिप्यासन के प्राकृत रूप 'लिप्यासन' का प्रयोग पाचवीं शती के एक 'सूत्र' ग्रथ मे उपलब्ध है। देखिए मुनि पुण्य विजय कृत 'भारतीय जैन श्रमण सस्कृति अने लेखन कला' पृष्ठ, 18'

5 ताडपत्र की पाडुलिपियों के कुछ चित्र परिशिष्ट एक मे दिए गए हैं। ताडपत्र गर्म जलवायु मे अधिक देर तक टिक नही पाता। ताडपत्रो पर लिखी प्राचीन प्रतिया नेपाल, तिब्बत तथा जापान आदि देशों मे मिली है। ताडपत्र पर शलाका से अक्षर उत्कीण किए जाते थे। बाद मे अक्षरों पर काजल का चूर्ण छिडक देते थे। इस प्रकार अक्षर उभर आते थे। ताडपत्रो के बीच मे एक सूराख कर 'सूत्र (धागा) डाल दिया जाता था। चित्रो मे ये सुराख दिखाई दे रहे हैं।

6 भूज हिमालय का एक वृक्ष है। उसकी छाल से भूर्ज पत्र (भोज पत्र) बनाए जाते थे। ताडपत्र की भाति भूज पत्र को चिकना-लिपिकर्म के उपयुक्त-बनाया जाता था। इसके पत्रो के बीचो बीच एक सुराख भी किया जाता था। ताडपत्रो की भाति भोजपत्र पर लिखी पुस्तको के ऊपर नीचे काष्ट पट्टिकाए लगाकर इन पाडुलिपियो को अतिरिक्त सुरक्षा प्रदान की जाती थी। भूर्ज पत्र पर लिखे कई प्राचीन ग्रथ खोतान तथा अफगानिस्तान आदि कई स्थानो पर मिलते हैं। हिमालय मे भोजपत्र मकानो की दीवारो तथा छतों में भी डाला *जाता था। सुरक्षा के अतिरिक्त धार्मिक भावना के कारण भी बहुत सी पाण्डुलिपिया* दीवारो और छतो डलवाई गई।

7 आसाम के 'अगरु वृक्ष की छाल को बडे श्रम से लिपिकर्म के उपयुक्त बना *लिया जाता था। इस छाल पर लिखी सामग्री पूर्वी सीमाओं मे मिली है*

8 सूती तथा रेशमी कपडे पर लिखी पुस्तकें प्राय मिलती हैं। इन पाडुलिपियो का विवरण सब श्री बूहलर कीलहौन तथा गौरीशकर हीराचद ओझा प्रभृति विद्वानों ने दिया है। सर स्टार्डन, बूहलर आदि विद्वानो ने चमडे पर लिखी भारतीय पुस्तको की सूचना भी दी है। परतु इसप्रकार की सामग्री का प्रचलन कई कारणो से अधिक नहीं रहा।

10 यह प्रति राजगुरु हेमराज पडित जिउ (नेपाल) से मिली। इस प्रति की सहायता से महाभारत के पाठ को निश्चित करने में सफलता मिली है। देखिए 'Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute मे डा० सुखथकर की लेखमाला 'Epic Studies' भाग 7, पृष्ठ 201-260

11 उत्तरी भारत मे सिआलकोट (पाकिस्तान), कश्मीर, अहमदाबाद, खभात आदि स्थानो मे कागज-उद्योग के प्रसिद्ध केन्द्र थे। देखिए पाडुलिपि विज्ञान पृष्ठ 149

12 स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य धातु-पत्रो पर उत्कीर्ण अभिलेख भी कहीं कहीं मिलते हैं। 'टैक्सला' (प्राचीन तक्षशिला अब पाकिस्तान मे) के निकटवर्ती 'गगू स्तूप' में इस प्रकार की प्राचीन सामग्री मिली है। देखिए —
1 Indian Paleography A H Dani page 21-35

2. Elements of South Indian Paleography : A. C. Brunel : Page 15-15

13. तांबे के टुकड़ों को पीट-पीट कर लंबाई-चौड़ाई में आवश्यक आकार दिया जाता था। फिर इन पर छैनी या तेज नोक वाली कलम आदि से अक्षर उकेरे जाते थे। इन्हें ताम्रपट, ताम्रशासन या केवल ताम्र कहा जाता था। आगे चल कर ताम्र भी छूट गया और पत्र का 'पट्टा' रूप अधिक प्रचलित हुआ। 'हम चाकर रघुवीर के, पटो लिख्यो दरबार' (तुलसी) तथा 'जम का पटा लिखाइया' (कबीर: आदिग्रंथ: सोरठ)
देखिए : Annals and Antiquities of India, James Todd, page 21-31

14. पंजाब के साहित्य में लेखणी (लेखण) आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। लेखन-लेखनी के माध्यम से 'अद्वैत-भाव' को इस प्रकार रेखांकित किया गया है —
'आपे लेखणि, आप लिखारी'
(आदिग्रंथ: राग सोरठ: महल्ला: 4)

'कलम' शब्द, एक स्थान पर, वंचना-प्रधान लेख तथा इसके लेखक के लिए भी प्रयुक्त किया गया है :—
"क़लम जलउ सणु मसुवाणीऐ',
(आदिग्रंथ: वार श्री राग: महल्ला · 4
अर्थात् दवात (कलमदान) सहित (वंचक) क़लम जल जाए।

15. उद्धृत : पांडुलिपि विज्ञान: डा० सत्येन्द्र: पृष्ठ: 5

16. विवरण के लिए देखिए, भारतीय श्रमण संस्कृति अने लेखन कला· मुनि पुण्य विजय: पृष्ठ 30-35

17. चमकदार स्याही बनाने के कई नुस्खे प्रचलित रहे हैं। डॉ० सत्येन्द्र ने पक्की-चमकदार स्याही बनाने का यह प्राचीन नुस्खा उद्धृत किया है :
"जितना काजल, उतना बोल, ते थी दूणा गूद झकोल,
जे रस भांगरानो पड़े, तो अक्षरे अक्षरे दीवा जलै"
पाण्डुलिपि विज्ञान: पृष्ठ: 56

अध्याय 2

पाण्डुलिपि : आकार-प्रकार

सांस्कृतिक दाय, पाण्डुलिपि-परीक्षण, बहिरंग-परीक्षण, वेष्टन, काष्ठ-पट्टी, जिल्द, लिप्यासन, अंतरंग-परीक्षण, मुख्य-प्रतिपाद्य, माध्यम, प्रक्षिप्त अंश। पाद-टिप्पणियां 1—16

यद्यपि 'पाठ' की सबसे बड़ी इकाई पाण्डुलिपि कही जा सकती है तथापि पाण्डुलिपि शब्द की अर्थ सीमाएं बहुत स्पष्ट नहीं है। पाण्डुलिपि उस हस्तलेख को कहा जाता था जिसके प्रारूप [मसविदा] को पहले लकड़ी के पट्टे या जमीन पर पाडु [खड़िया चाक] से लिखा जाता और उसी को पक्का कर दिया जाता था। आज पाण्डुलिपि शब्द किसी भी प्राचीन या नवीन लिखित सामग्री के लिए सामान्यत प्रयुक्त होता है। प्राय अंग्रेजी के मैन्युस्क्रिप्ट शब्द के लिए पाण्डुलिपि शब्द प्रचलित है। 'टंकित प्रति' शब्द 'टाइप-स्क्रिप्ट' के लिए सामान्यत प्रयुक्त होता है।

'मैन्यू' लैटिन भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'हाथ', 'स्क्रिप्ट' का सीधा अर्थ है लेख। इस प्रकार हस्तलेख' मैन्युस्क्रिप्ट का पर्याय माना जा सकता है। परन्तु 'हस्तलेख' पर्याप्त भ्रामक शब्द है। एक तो इसलिए कि लेख के साथ 'हस्त' विशेषण निरर्थक ही है। लिखने का काम हाथ से ही सामान्यत किया जाता है। हस्त-लेख से हाथ की रेखाओं का भ्रम भी हो सकता है। वस्तुत प्रयोग-बहुलता के कारण ज्यों-ज्यों शब्द के साथ अर्थ के नए-नए आयाम जुड़ते जाते हैं, त्यों-त्यों शब्दों के साथ अनेक विशेषण भी

3. जिल्द : पांडुलिपियां सामान्यत: दो रूपों में तैयार की जाती थी :
1. खुले पत्रों वाली (बिन सिली) पांडुलिपिया, तथा
2. सिए गए पत्रों वाली पांडुलिपियां।

पहले खुले पत्रों वाली पांडुलिपियों का प्रचलन बहुत था। यहां तक कि पहले पुस्तकें छपती भी खुले पत्रों के रूप में थी। बहुत से 'पुराण' इसी रूप में छपे मिलते है। इनका प्रत्येक पत्र (पन्ना) अलग-अलग रहता था। इन पर जिल्द नही बांधी जाती थी। इन खुले पत्रों को सुरक्षित रखना अथवा इन पत्रो का क्रम ठीक रखना कठिन था। इसलिए इनका प्रचलन धीरे-धीरे कम होता गया। इस तरह पांडुलिपियों की जिल्दबंदी शुरू हुई। जिल्द बांधने से पूर्व पांडुलिपि के पत्रो को बीच से मोड़ कर सी दिया जाता था। इससे एक पत्र दो भागों मे बंट जाता था। सभी पत्रो की लंबाई चौड़ाई बराबर रख कर सिलाई की जाती थी। इस प्रकार पांडुलिपियों के पत्र बिखरने अथवा उनके क्रम भंग होने की संभावना कम हो गई। जिल्द के भीतर दोनों ओर कुछ कागज कोरे भी रखे जाते थे। पांडुलिपि को बेचने या भेंट मे देने का आवश्यक विवरण इन कोरे कागजों मे दर्ज किया जाता था। कई बार पांडुलिपियों की पूरी जीवनी-रचयिता, लिपिक, रचनाकाल, प्रतिलिपि काल-भी इन कोरे पत्रों मे दर्ज मिलती है। कभी-कभी कोई अन्य रचना भी—प्राय: भिन्न स्याही और अन्य व्यक्ति की लिखावट में—इन कोरे पत्रों पर प्रतिलिपित मिलती है। जिल्द आम तौर पर मजबूत गत्ते की होती थी। गत्ते के ऊपर प्राय: कपड़ा या कागज़ कलात्मकता के साथ चढ़ा दिया जाता था। कभी-कभी चमड़े की जिल्द भी चढ़ी मिलती है। पर इसका प्रचलन अधिक नहीं था।

4. लिप्यासन : उत्तरी भारत में पांडुलिपियां प्राय: कागज़ पर लिखी मिलती हैं। इधर कागज़ के अधिक सुलभ तथा लिपि-कर्म के लिए अधिक उपयुक्त होने के कारण पांडुलिपियां कागज़ पर ही लिखी मिलती हैं। यह कागज़ प्राय: कुछ भूरे रंग का और आज के कागज़ की तुलना में कुछ मोटा होता था। सजग लिपिक लिपि-कर्म से पूर्व कागज़ को अपेक्षित विस्तार, लंबाई, चौड़ाई चौड़ाई के अनुसार काट लेते थे। शताब्दियों

से पीढी-दर-पीढी प्राप्त अनुभव के आधार पर कागज का 'कटावा' किया जाता था।[4]

परिशिष्ट एक मे कागज पर लिखी पाडुलिपियो के कुछ पत्रो के चित्र देखे जा सकते हैं।

5 पत्र पाण्डुलिपि मे पत्रो की व्यवस्था बहुत सावधानी तथा वैज्ञानिक ढग स की जाती थी। पत्र का परीक्षण करते समय इन तथ्यो पर बारीकी से विचार किया जाता है

(क) **पक्ति विधान** प्रत्येक पत्र पर लिखित पक्तियो तथा प्रत्येक पक्ति मे प्रयुक्त शब्दो की सख्या पूरी पाण्डुलिपि मे लगभग बराबर रखी जाती थी। फलत पाण्डुलिपि की पक्ति-सख्या तथा शब्द-सख्या प्राय सही सही बताई जा सकती है। इन दोना सख्याओ को भिन-भिन पत्रो के पाठ से प्राप्त किया जा सकता है।

(ख) **पत्राक** प्रत्येक पत्र के दूसरी ओर हाशिए से बाहर पत्र-शीर्ष से कुछ नीचे तथा पाठ की पक्तियो से थोडा ऊपर पत्र की सख्या लिखी जाती थी। चूकि पत्र-सख्या पत्र के एक ही ओर दी जाती थी, इस लिए दो पृष्ठो का एक पत्र माना जाता था। पत्रो की सख्या तथा पत्रो के कम की जाच बारीकी से की जाती है। क्योकि पत्रो की सख्या तथा उनके क्रम मे लिपिक कभी-कभी भूल कर जाते हैं।

(ग) **पत्र पाठ** प्रत्येक पत्र पर सामान्यत 'चलत शैली' मे लिखा पाठ उपलब्ध होता है। परन्तु प्रतिपाद्य के अनुसार कभी-कभी एक पत्र पर 'त्रिपाठ' या 'पचपाठ' की पद्धति से भी लिपिकर्म प्रस्तुत किया जाता था। पत्र के मध्य मे मोटे-अक्षरो की सहायता से मूल पाठ तथा मूल पाठ के ऊपर-नीचे दोनो ओर कुछ बारीक अक्षरो मे टीका लिखी जाती थी। पाठ की इस तिहरी व्यवस्था को त्रिपाठ-पद्धति कहा जाता था। त्रिपाठ पद्धति के अनुसार लिखे पत्र पर कभी कभी दोनो ओर के हाशियो पर भी-एक ही लिखावट मे-पाठ के दो अश लिखे मिलते हैं। इसे पत्र की 'पच-पाठ-पद्धति' कहा जाता है।

उत्तरी भारत की पाडुलिपियो मे पत्र प्राय इकहरी या अधिक से अधिक त्रिपाठ (मूल तथा टीका) पद्धति से लिखे जाते थे।

(घ) **विषय-सूची पत्र** पाण्डुलिपि के प्रारम्भ मे सावधान लिपिक विषय-सूची तथा विषय से सबद्ध पत्रो की सख्या (अको मे) भी देते थे। इस विषय-सूची की परीक्षा गभीरता से की जानी चाहिए। पाडुलिपि की विषय-वस्तु के अवातर विभाजन-अध्याय, सर्ग आदि की जानकारी इन प्रारभिक पत्रो से मिलती है।

परिशिष्ट एक-में 'पारस भाग' की एक प्रति की विषय-सूची का चित्र दिया गया है।

(च) **अंतिम पत्र :** पांडुलिपि का अंतिम पत्र बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि रचना तथा रचयिता के संबंध में आवश्यक सूचनाएं प्रायः इसी पत्र पर दी जाती हैं। संवत्-संबंधी विवरण, दिन-तिथि-नक्षत्र, राजा, संरक्षक आदि की सूचना भी इसी पत्र में मिलती है।

संवत् संबंधी विवरण की शुद्धता को गणित की सर्वमान्य पद्धति[5] के आधार पर पूरी तरह परखना चाहिए[6]। क्योंकि इस विवरण को कुछ लोग विकृत तथा भ्रांत रूप देने का कुचक्र प्रायः रचा करते हैं।

पुस्तक का यह अंतिम अवतरण "पुष्पिका" कहलाता है और इसमें दी गई सूचनाओं का महत्व स्पष्ट ही है। परन्तु इन सभी सूचनाओं का किसी स्वतंत्र स्रोत से पुनः परीक्षण अनिवार्य है।

पत्र-गत पाठ के संशोधन की कौन-सी विधि लिपिक अपनाता है, त्रुटित अंश हाशिए में या शब्द के नीचे या ऊपर रखता है, इस तथ्य का विशेष रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए। हड़ताल (एक पीला रंग) पोत कर अक्षर-शब्द पंक्ति को मिटाने की पद्धति प्रायः अपनाई जाती थी। पत्र के इस पुते अंश से भी लिपिकर्म के संबंध में कई महत्वपूर्ण सूचनाएं मिलती हैं। लिपिक की भ्रांतियों की आवृत्ति उसके मनोविज्ञान की निर्भ्रांत सूचना प्रायः दे देती है। स्याही के रंग उसकी चमक आदि की जानकारी से लिपिक की सुरुचि तथा कलाप्रियता को रेखांकित किया जा सकता है।

संक्षेपतः, पांडुलिपि की बहिरंग परीक्षा से, उसके हर एक बाहरी पहलू की जांच पड़ताल से अनुसंधाता कई महत्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन कर सकता है।

अंतरंग-परीक्षण : किसी पांडुलिपि का अंतरंग परीक्षण रचयिता के अंतस् का साक्षात्कार करना है। रचयिता के भाव (विचार) जगत् की विशद मीमांसा पांडुलिपि के गहन पर्यालोचन से ही संभावित है। चूंकि रचयिता के इस भाव-जगत् से परिचित होना या करवाना ही पाठ-अनुशासन का अंतिम उद्देश्य है, इसलिए इस अंतरंग परीक्षण को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। पाठ अनुशासन के सभी सिद्धांत तथा सभी क्रिया प्रक्रिया-प्रविधि-समूह इसी उद्देश्य के प्रति समर्पित हैं।

पांडुलिपि के प्रतिपाद्य से परिचित होने के लिए पांडुलिपि का गंभीर अध्ययन करना अनिवार्य है। इस अध्ययन के फलस्वरूप उपलब्ध तथ्यों का विवरण इस प्रकार दिया जाता है :

1 मुख्य प्रतिपाद्य प्राय प्रत्येक रचना मे एक से अधिक विषयों का प्रतिपादन मिलता है। इन विषयों म लेखक किस विषय पर सर्वाधिक बल देता है अथवा रचना का प्रत्येक विचारबिन्दु किस लक्ष्य की ओर उन्मुख है, इन पाठकीय जिज्ञासाओ का समाधान अनुसधाता को करना होता है। इन विचार-बिन्दुओ की समग्र अन्विति का सिद्धान्त-रूप मे प्रस्तुतन अनुसधाता के श्रम की चरम परिणति मानी जाती है। उदाहरण के लिए, 'पारसभाग' जैसी विशालकाय रचना मे अनेक विषयों पर गभीर विचार किया गया है। परन्तु इस बहुमुखी चर्चा का उद्देश्य एक विशेष आध्यात्मिक स्थिति की प्रस्तुति ही है। इस तथ्य की उपलब्धि पूरी रचना का गभीरता से पारायण किए बिना सभव नही है। सामान्यत रचना का नाम ही उसके मुख्य प्रतिपाद्य का स्वरूप स्पष्ट कर देता है। रामचरित मानस पदमावत, पृथ्वीराज रासो आदि नाम अपने प्रतिपाद्य की सूचना स्वय देते हैं। परन्तु 'लीलावती', 'उपमिति भव प्रपच कथा' तथा 'पोथी आदि नामो से प्रतिपाद्य का अनुमान लगाना सभव नही है।

2 माध्यम लेखक अपने प्रतिपाद्य को मुख्यत दो माध्यमो के द्वारा प्रस्तुत करता है, गद्य तथा पद्य। कभी कभी इन दोनो माध्यमो का एकत्र प्रयोग भी किया जाता है। गद्य का प्रचलन हिन्दी मे अधिक पुराना नही है। खडी बोली के विशुद्ध गद्य की आदि रचना कदाचित् मिर्हरिबानु की 'पोथी मधु पदु' है। फलत खडी बोली की उपलब्ध रचनाओ का महत्त्व साहित्य तथा इतिहास की दृष्टि से बहुत अधिक है।

गद्यात्मक रचनाओ मे प्रयुक्त भाषा, सज्ञा, क्रिया, समास, अव्यय आदि व्याकरणिक व्यवस्था तथा मुहावरे प्रभृति सामग्री का गभीर पर्यालोचन अतरग परीक्षण का प्रथम सोपान है। इसी सोपान पर अनुसधाता रचयिता के भाषा-वैभव, उसकी प्रिय शब्दावली, उसके बिम्बविधान तथा उसके अतस् के साथ सामजस्य स्थापित करता है। इसी सामजस्य की प्रस्तुति अनुसधाता की प्रमुख उपलब्धि मानी जाती है।

पद्यात्मक रचनाओ की सख्या मध्यकालीन हिन्दी मे बहुत अधिक है। पद्य ही रचना का एकमात्र माध्यम माना जाता था। इन पद्यात्मक रचनाओ के अतरग परीक्षण मे पद्य की सैद्धातिक मीमासा सबसे पहले की जाती है। यदि रचना पद्यात्मक है तो उसमे प्रयुक्त छदो का पर्यालोचन शास्त्रीय दृष्टि से किया जाता है। छद का स्वरूप उसकी लय-व्यवस्था, तुकान्त पद्धति का निर्वाह आदि छद सबधी समस्याओ पर विचार किया जाता है। 'पद' पद्धति पर लिखी गई रचनाओं मे राग, सगीत, ताल और लय की चर्चा की जाती है। राग या छद के पश्चात भाषा का विवेचन-विश्लेषण अतरग परीक्षण की दूसरी प्रमुख अपेक्षा है। प्राय ब्रजभाषा मे ही मध्यकालीन रचना-धर्मिता विकसित हुई,

इसलिए ब्रजभाषा के मानक स्वरूप की दृष्टि से आलोच्य रचना की भाषा का स्वरूप-विवेचन किया जाता है।

3. प्रक्षिप्त अंश : प्राय: प्रत्येक प्राचीन रचना के साथ अनधिकृत अंशों-प्रक्षिप्त-अंशों-की समस्या जुड़ी रहती है। इस समस्या का समाधान करना जितना आवश्यक है, उतना ही कठिन भी। प्रक्षिप्त अंशों की पहचान पांडुलिपि या प्रकाशित रचना के गंभीर पारायण से ही की जा सकती है। रचयिता की भाषा के प्रत्येक अवयव को स्पष्टत: रेखांकित किए बिना अनधिकृत सामग्री को अलगाया नहीं जा सकता।

परस्पर-विरोधी-वचन सामान्यत: प्रक्षिप्त माने जा सकते हैं। मुख्य प्रतिपाद्य का विरोध करने वाली सामग्री भी प्राय: रचना के प्रक्षिप्त स्तर को सूचित करती है। अतत: यह स्वीकार करना ही होगा कि प्रक्षिप्त-अंशों की अचूक पहचान अभी तक हाथ नहीं लगी है।

पांडुलिपियों के प्रारंभिक अवतरण (मंगलाचरण आदि), अंतिम अंश (पुष्पिका) तथा इसके अनंतर उपलब्ध पाठ, संवत् उल्लेख एवं अन्य निर्देश प्राय: क्षेपक-बहुल पाए गए हैं।

पाण्डुलिपियों की इन प्रमुख समस्याओं से अनुसंधाता को प्राय: जूझना होता है। इस जूझ का विवरण जहा रोमांचकारी है वहा सारस्वत परम्पराओं के प्रति निष्ठा का भी प्रतीक है।

पाण्डुलिपियो के बहिरंग तथा अंतरंग परीक्षण के कुछ उदाहरण इस क्षेत्र के प्रतिष्ठित अनुसधाताओं की कृतियों मे से दिए जा रहे हैं :

प्रो॰ पीटर्सन : आज से पूरे सौ वर्ष पूर्व प्रो॰ पीटर्सन ने गुजरात, महाराष्ट्र तथा राजस्थान में संस्कृत पांडुलिपियों की खोज का काम किया था। उनकी खोज-रिपोर्ट में ताड़पत्रों पर लिखी एक पाण्डुलिपि का विवरण (अंग्रेजी मे) इस प्रकार दिया गया है:[7]

(क) 'क्रम संख्या : 181 नाम : उपमिति-भव-प्रपंच कथा। लेखक सूरी। पत्र 1 से 128 तक। पत्राकार : 14-1/2" लंबा तथा 2" चौड़ा। वर्धमान प्रत्येक पत्र पर 6 से 10 पंक्तियां और प्रत्येक पंक्ति में 43 से 45 अक्षर हैं। पहला पत्र टूट चुका है। दोनों टुकड़े वेष्टन में विद्यमान हैं। अंतिम पत्र के साथ 6 कोरे कागज सुरक्षा के लिए लगाए गए हैं। पत्रांक प्रत्येक दूसरे पत्र की बाईं तरफ लगाया गया है।'

इस बहिरंग विवरण के पश्चात पूरे दो पृष्ठों में इस रचना के प्रारंभिक तथा पुष्पिका सहित अंतिम अवतरण भी दिए गए हैं।

उत्तरवर्ती प्रो० कीथ तथा थॉमस आदि विद्वानों ने इस प्रविधि को और अधिक उपयोगी बनाया।[8] प्राय प्रत्येक उपलब्ध पाडुलिपि की पूरी जाच पड़ताल के बाद उसके प्रतिपाद्य की यथोचित विस्तार से मीमासा की गई है।

(ख) 'प्राकृत प्रकाश (टीका सहित)। पत्र 88। यूरोपिअन कागज। पुस्तकाकार। सजिल्द। 8-1/2"+13—1/2। लेख सुदर। लिपि देवनागरी। प्रत्येक पत्र पर 20—25 पक्तिया।"

इस विवरण के बाद 'प्राकृत प्रकाश' के प्रत्येक 'पाद के प्रारम्भिक तथा अतिम अवतरण उद्धृत किए गए है। प्रथम पत्र पर दी गई सूचना के आधार पर इस पाडुलिपि की दोनो आदर्श प्रतियो के सम्बन्ध मे भी पर्याप्त जानकारी दी गई है। जैन भडार, पाटन की ताडपत्र पर लिखी एक रचना का यह विवरण पाठ-अनुशासन की सभी अपेक्षाओ के अनुरूप है [9]

(ग) 'मण-थिर-करण'। प्राकृत भाषा। सस्कृत टीका सहित।

रचयिता महेन्द्र सूरी। पत्र सख्या 16-178। पत्राकार 15' × 1½' इसके पश्चात मूल प्राकृत रचना तथा सस्कृत टीका के पृथक्-पृथक मगलाचरण, पुष्पिका तथा ग्रथाग्र 2300 आदि विवरण दिया गया है।

डा० हीरा लाल माहेश्वरी ने एक पाडुलिपि का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है।[10]

(घ) "327, रुक्मणी मगल, पदम भगत कृत। प्रत्येक राग-रागिणी के अतर्गत आए छदो की सख्या पृथक्-पृथक् दी गई है। पत्र सख्या 83। मोटा देशी कागज। आकार 11×5 हाशिया दाए एक इच, बाए एक इच। प्रति पृष्ठ 10 पक्तिया। प्रति पक्ति 26-30 अक्षर। लिपि सामान्यत सुपाठ्य लिपिक साहब राम। प्राप्तिस्थान लोहावट सायरी। आदि अत के अवतरण।' पुष्पिका 'इति श्री पदमैया कृत रूक्मणी मगल सपूण——सवत 1935'

'जीसी प्रती देषी, तैसी लिषी। मम दोष न दीजिए।'

'हाथ पाव कर कूवडी' आदि दोहा।

'सुभमस्तु———(भिन्न हस्तलिपि मे)'

(स्व०) शमशेर सिंह अशोक ने पजाब (गुरमुखी लिपि) की पाडुलिपियो के विवरण बडी लगन, तपस्या तथा पूरे विवेक के साथ सकलित किए हैं [11]

(ङ) 'श्री सतगुरु निरवाण गज। सग्रह ग्रथ। पत्र सख्या 1208। प्रारभ और अत के पत्र फट चुके हैं। इनके स्थान पर अन्य पत्र लिख कर चिपकाए गए हैं। पत्राक 1206 नही है। प्रति पत्र पक्तिया 26। कश्मीरी कागज। लेख साफ और शुद्ध। रगीन हाशिए के बाहर पाठ सशोधन। कहीं कही

लाल स्याही का प्रयोग। उदासीन साहित्य का दुर्लभ ग्रंथ। इसमें वेदांत संबंधी 86 अन्य रचनाएं भी संकलित हैं। संवत् 1838। लिपिकः विध भगत सावन"

'श्री वीर प्रिगेस गुर विलास देव तरू' नामक एक प्रकाशित रचना का विवरण इन पंक्तियों के लेखक ने इस प्रकार दिया था।[12]

'रचयिता : स्वामी शेर सिंह : प्रकाशन वर्ष : 1911 ई०। 10½×12 आकार के 1914 पृष्ठ। दो भागों में प्रकाशित। पहला भाग 1 से 948 पृष्ठ तक (पूर्वार्द्ध) तथा 949 से 1914 पृष्ठ तक दूसरा भाग (उत्तरार्ध) है। पूर्वार्द्ध मे दो स्कंध है। पहले स्कंध मे 40 और दूसरे मे 21 अध्याय हैं। उत्तरार्ध में तीन स्कंध और इनमें क्रमशः 32,45 और 8 अध्याय हैं।'

'प्रत्येक पृष्ठ पर 28 पंक्तियां और प्रत्येक पंक्ति मे 14 शब्द हैं। इस प्रकार इस बृहत् (इतिहास) ग्रंथ मे लगभग 53,592 पंक्तियां और साढे सात लाख से ऊपर (7,50,2288) शब्द हैं।'

दुर्भाग्य से हिन्दी की पांडुलिपियों के विवरण प्रायः आधे-अधूरे ढंग से-अमर्यादित रीति से-दिए मिलते हैं। पांडुलिपि संबंधी आवश्यक तथ्यों का उद्घाटन इन विवरणों से नहीं होता।

'महाभारत' के कितने ही 'पर्व' हिन्दी में उपलब्ध हैं। इनके सम्बंध में नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी की ओर से मात्र इतना सा विवरण प्रकाशित हुआ है :[13]

'महाभारत (पद्य) धर्मदास कृत। 1664—1711 वि० के लगभग।'

इसी प्रकार 'लीलावती' (गणित की प्रसिद्ध संस्कृत पुस्तक) की पांच पांडुलिपियों की सूचना तो दी गई है।[14] परंतु अन्य आवश्यक तथ्यों का जानकारी देना आवश्यक नहीं समझा गया। 'मानस'[15] तथा 'योग वाशिष्ठ'[16] की अनेक प्रतियों का भी मात्र नामोल्लेख किया गया है। नागरी प्रचारिणी सभा के ये 'विवरण' उत्तरवर्ती संस्करणों मे भी-बिना किसी-परिवर्तन परिवर्धन के दुहराए जाते रहे हैं।

डा० परमेश्वरी लाल गुप्त ने पश्चिम में पुस्तकों—पांडुलिपियों-के प्रति जागरूकता का एक प्रेरणाप्रद प्रसंग 'चोसरन' की खोज के संदर्भ में विस्तार से दिया है। प्रत्येक पांडुलिपि के खरीदने तथा बेचने से संबंधित पूरी जानकारी वहां सुलभ है। इसके विपरीत पांडुलिपियों की कौन कहे, यहां तो प्रकाशित पुस्तकों के संबंध में भी आधारभूत पांडुलिपियों, अनुवादकों, संस्करणों की संख्या आदि की जानकारी न तो प्रकाशकों के पास उपलब्ध है और न ही सरकार के संबंधित विभाग ही इस बारे में कोई सूचना दे पाते हैं।

'योग वासिष्ट भाषा' का प्रकाशन बम्बई से होता रहा। परन्तु प्रकाशक (वेंकटेश्वर प्रेस) के पास इस पुस्तक की मूल पाडुलिपि, इसके अनुवादक (लिप्यतरणकर्ता) तथा इसके सस्करणो की सख्या सबधी कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नही है। पारसभाग के हिन्दी प्रकाशक (नवलकिशोर प्रेस लखनऊ) से तथा सरकार द्वारा रजिस्टर्ड इस पुस्तक की कोई जानकारी उत्तरप्रदेश सरकार से भी नही मिल सकी। किसी भी ज्ञात अथवा अज्ञात पाडुलिपि की उपलब्धि साहित्यिक जगत मे एक युगान्तरकारी घटना सिद्ध हो सकती है इसलिए प्रत्येक पाडुलिपि के सबध मे आवश्यक विवरण विवेक पूर्वक सकलित किए जाने चाहिए।

पाद-टिप्पणियां

1 प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत मे पाडुलिपियो को अनेक पुस्तकालयो मे सचित अथवा सकलित किया जाता था। तक्षशिला, पाटलीपुत्र, नालदा आदि प्राचीन शिक्षा-केन्द्रो तथा भोज भाडागार, चालुक्य भाडागार जैन भाडागार (जैसलमेर-अहमदाबाद) आदि पुस्तकालयो मे प्राचीन पाडुलिपिया के सग्रहीत होने की साक्षी उन अनुसधाताओ ने दी है, जिन्हे यह सामग्री स्वय देखने-परखने का सौभाग्य मिला था। दुर्भाग्य से यह ग्रथराशि सुरक्षित नही रखी जा सकी।

2 चीन मे पाडुलिपियो के कई प्राचीन पुस्तकालय है। पेर्दिंग के अतिरिक्त लोयाग तथा भीतरी मगोलिया के बौद्ध मठो मे सकलित-सचित पाडुलिपियो को देखने का सौभाग्य इस लेखक को भी मिला था। धर्मरक्ष, सघभूति तथा कुमार जीव प्रभृति अनेक भारतीय श्रमणो द्वारा चीनी भाषा मे स्वय अनूदित या चीनी विद्वानो द्वारा इन श्रमणो की देखरेख मे तैयार किए गए संस्कृत-पाली ग्रथो के कई अनुवादो की सूचना भी मिली है।

3 योरोप मे प्राचीनतम पाडुलिपिया एथेन्स तथा अलेक्जेंड्रिया मे मिली बताई गई है। यह भी माना जाता है कि उत्तरी ईराक के एक प्राचीन नगर 'निनवे' मे *'असुर' (असीरियन) सम्राट 'बेनीबाल' द्वारा स्थापित एक विशाल पुस्तकालय* मे से अनेक पांडुलिपिया योरोप मे पहुची।

4 कागज के कटाव की इस पारपरिक विधि का विवरण डा० हीरालाल माहेश्वरी ने दिया है जाम्भोजी विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य पृष्ठ 15-16

5 पाडुलिपियो मे प्राय उपलब्ध लेखन शैली 'चलत शैली' कही जा सकती है। इस शैली मे लेखक या लिपिक एक ही शिरोरेख के अतर्गत—सज्ञा क्रिया आदि विभाजन के बिना ही— पाठ लिपित करता है। इसे 'मिलिताक्षर शैली' भी कह सकते हैं। 'तुलसीअत्रकाहोहुगेनरकैमनमदरार' चलत शैली का लेखन कहा जा सकता है।

लिपिक पूर्ण विराम के लिए 'दो खडी पाइयाँ' (॥) का प्रयोग प्राय करते है।

परंतु पाठ में किसी अवान्तर विभाजन की निश्चित व्यवस्था न रहने से पूर्ण विराम का भी सही प्रयोग कम ही मिलता है। परिशिष्ट एक में संकलित पत्रों पर यह अव्यवस्था देखी जा सकती है।

पद्यों की पहली पंक्ति के अंत में प्राय: एक खड़ी पाई तथा पद्य की समाप्ति पर 'दो खड़ी पाइयों' की व्यवस्था रहती है। कवित्त-सवैया जैसे-जैसे बड़े छंदों की प्रत्येक पंक्ति के समाप्त होने पर एक तथा पूरे छद के समाप्त होने पर 'दो खड़ी पाइयां' लगाई जाती है।

6. इस गणित-पद्धति से श्री एल.डी. स्वामी कन्नू पिल्लइ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'इंडियन क्रॉनालोजी' में ईसवी सन 1000 के बाद की सभी तिथियों, नक्षत्रों, दिनों तथा विभिन्न भारतीय संवत्सरों का वैज्ञानिक 'पचाग' प्रस्तुत किया है। सन 1000 के अनंतर दिए गए किसी भी तिथि विवरण की परीक्षा इस पुस्तक की पद्धति से की जा सकती है।
7. Search for Sanskrit MSS.
Peter Peterson, Bombay, 1887 Page. 3-5.
8. Catalogue of the Sanskrita and Prakrita MSS.in the Library of the India Office, Vol II. 1935. Page. 297.
9. Descriptive Catalogue of MSS. (Palm Leaves) Baroda : 1937 Page 1.
10. जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य, उद्धृत :
पाण्डुलिपि विज्ञान: डा० सत्येन्द्र पृष्ठ · 120
11. 'हथलिपतां दी सूची' भाग-2 : पृष्ठ 73
12. गुरमुखी लिपि में हिन्दी गद्य—डा० गोविन्दनाथ राजगुरु : पृष्ठ : 227
13. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण—संवत् 2021
14. वही : पृष्ठ : 351-52
15. वही : पृष्ठ : 277-283
16. वही : पृष्ठ : 196

अध्याय 3

लिपिक : लिपिकर्म

लिपिक नायक-खलनायक, नामांतर, लिपिक-गुण, लिपिक-दोष, संयुक्ताक्षर, अंग-शैथिल्य, अज्ञान, मैनासत प्रसंग, संरव-सासत्र-संग्रह, सिधांत-कटाप-ग्रंथ, संग्रहिसार, योगवासिष्ठ भाषा, पदमावत, मिरगावती, स्वर-व्यंजन-व्यत्यय, स्वर-व्यंजन-लोप, संकेताक्षरों की भ्रांत वाचना, अक्षरों-शब्दों का भ्रांत स्थानांतरण, हाशिए के लेख, प्राथमिक अपेक्षा, सोद्देश्य-पाठ-व्यत्यय, क्षेपक, कारण, संग्राम, विवाह, स्तुति, वरदान, फलश्रुति, वैष्णव-शैव-तकरार, पचामृत उपनिषद भाषा, योग वासिष्ठ भाषा, सोद्देश्य पाठ-लोप, इस्लामी नामावली, अवैष्णव तत्वों का बहिष्कार, निर्गुण पर सगुण का आरोप, पाठ लोप, पाद टिप्पणियां 1—32

लिपि-कर्म का सूत्रधार है लिपिक। लिपि-कर्म की अशेष संभावनाएं उसके समस्त उपकरण तथा कला-संभार लिपिक को केंद्र में रख कर ही सार्थक होते हैं।

पाठ-अनुशासन की दृष्टि से तो रचयिता का भी लिपिक रूप ही अधिक महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि रचना (पाठ) का दृश्यमान तथा विविध दृष्टियों से विवेचन विश्लेषण योग्य रूप लिपि-कर्म द्वारा ही रूपायित होता है। इस प्रकार लिपिक-यदि वह स्वयं रचयिता भी है-पाठ के मंच पर दो भूमिकाओं में अवतरित होता है। रचयिता की भूमिका में उसका मनन चिंतन तथा अनुभव

एवं लिपिक की भूमिका में उसका लिपिकर्म के प्रति सर्वात्मना समर्पित रूप उजागर होता है।

नायक : खलनायक सच तो यह है कि लिपिक लिपि-कर्म का नायक भी है और खलनायक भी। नायक तो इसलिए कि लिपिकर्म के सभी सूत्रों का संचालन लिपिक ही अपने विवेक से करता है। परंतु यह विवेक सभी लिपिकों के हिस्से में आया हो, ऐसी बात नहीं है।

सामान्यतः दो-तीन प्रतिशत लिपिकों को छोड़ कर शेष लिपिक प्रायः अपने अविवेक-अज्ञान के अतिरिक्त अपने अपने वैयक्तिक आग्रहों-दुराग्रहों से भी बुरी तरह चिपके रहते है। फलतः मूल अथवा आदर्श प्रति को अनेकशः खंडित, क्षत-विक्षत करने तथा अनपेक्षित प्रसंगों-अवतरणों-की अनधिकृत भरती (क्षेपक) से पाठ का बंटाढ़ार कर देने में भी लिपिकों की भूमिका जोरदार रहा करती है। लिपिक के खलनायक की यही भूमिका है।

नामांतर लिपिक के लिए लिपिकार, लिपिकार या दिपिकार ये शब्द भी प्राचीन भारत में प्रचलित रहे हैं। संस्कृत कोश-ग्रंथों में लिपिकार तथा लेखक पर्यायवाची शब्द बताए गए हैं।[1] डॉ० कात्रे के अनुसार ईसा से 400-500 वर्ष पूर्व लिपिकर्म को व्यवसाय के रूप में अपनाने वाले व्यक्ति को लिपिकार अथवा लिपिकार कहा जाता था। सातवीं आठवीं शती में राजकीय लिपिक को दिविरपति कहते थे।[2] शिलाओं, धातुपत्रों तथा दूसरे कठोर लिप्यासनों पर उकेरने वाले व्यक्ति करणक, करणिन्, शासनिक अथवा धर्म लेखिन नाम से प्रसिद्ध थे।[3]

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल की मान्यता है कि पाणिनि के समय लिपि शब्द लेखन-कर्म तथा लेख (स्क्रिप्ट) दोनों के लिए प्रयुक्त होता था।[4] 'धम्म लिपि (दिपि)' शब्द अशोक के शिलालेखों में "लेख" (पाठ; इबारत) के लिए प्रयुक्त हुआ है। प्रो. बुहलर के अनुसार लेखक शब्द का अर्थ है, 'पांडुलिपियों का लिपिक"[5]

वस्तुत: लेखक तथा लिपिकार प्रभृति शब्दों की अपेक्षा लिपिक आधुनिक शब्द है। परंतु इस शब्द की अर्थ-सीमाएं बहुत स्पष्ट हैं। रचयिता, ग्रंथकर्ता अथवा कवि से यह व्यक्ति भिन्न है।[6] इसका कार्य अथवा व्यवसाय किसी लिखित रचना (पाठ) की प्रतिलिपि (कॉपी) तैयार करना मात्र है। इस प्रकार पाणिनि के साक्ष्य पर लिपि (पाठ, लेख अथवा स्क्रिप्ट) को तैयार करने वाले व्यक्ति को लिपिक कहा जा सकता है।[7]

लिपिक-गुण किसी भी सभ्यता के उत्कर्ष का घोषणापत्र है उसका ज्ञान (विज्ञान) सम्भार! इस सम्भार को लिखित रूप देकर इसके उत्तरोत्तर प्रचार प्रसार

के प्रति समर्पित लिपिक को भारतीय परम्पराए सादर स्मरण करती आई हैं। विभिन्न पुराणो तथा अन्य प्रामाणिक रचनाओ मे लिपिक (लेखक) का गुणगान अनेकश किया गया है। लिपिक केवल लिपिकर्म म ही निष्णात नही होता था वरन उसकी बौद्धिक क्षमता भी उच्चकोटि की होती थी। सामान्यत लिपिक से यह अपेक्षा की जाती थी —

> 'अनेक देशो म प्रचलित अक्षरो (लिपियो) का प्रयोक्ता तथा उन्हे पढने मे विचक्षण, सर्वशास्त्र विशारद, लिपि-क्रम का सीधी सीधी पक्तियो मे युक्ति-युक्त अक्षर-शब्द-पद-विभाजन, शिरोरेखा सहित प्राजल प्रस्तवन कर सकने मे समर्थ, विस्तार को सक्षिप्त रूप देने मे सक्षम तथा भक्त अर्थात स्वामी के प्रति अनन्य निष्ठा सम्पन्न व्यक्ति ही लिपिक (लेखक) होने के लिए उपयुक्त व्यक्ति है।'[8]

इस कोटि का लिपिकर्म निश्चय ही मन मस्तिष्क की अनेक विभूतियो से सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकता है। इसी लिए लिपिकम को न केवल सामाजिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रो मे ही अपेक्षित मान सम्मान, दान-दक्षिणा, समुचित वेतन[9] तथा अनेक अवसरो पर विभिन्न पुरस्कारो मे ही अभिनदित किया जाता था, वरन् विशुद्ध ज्ञान अथवा भक्ति के क्षेत्र मे भी लिपिकम को पर्याप्त आदर दिया जाता था।[10] नायक की भूमिका मे अवतरित लिपिक की यह सर्वोच्च भूमिका है। इसे एक आदश कहा जा सकता है। परतु आदश को व्यावहारिक रूप देना कभी कभी ही सम्भव होना है। लिपिक का ऊचा आदर्श भी इसका अपवाद नही है। उदाहरण के लिए, 'महाभारत' को लिया जा सकता है। बरौदा सस्थान मे महाभारत की लगभग 60 प्रतिया सग्रहीत की गई हैं। परतु इतनी प्रतियो मे केवल एक ही प्रति का पाठ प्राय शुद्ध पाया गया। पदमावत, मानस, कबीर वाणी मे पाठ का अनुसधान इतने व्यवस्थित ढग से अभी तक नही हुआ है। परतु जो कुछ हुआ है उससे लिपिको के वर्ग चरित्र तथा उनके *खलनायक का पर्याप्त परिचय मिल जाता है।*

लिपिक-दोष यह मान लेना चाहिए कि लिपिक सर्वज्ञ नही होता। उसके लिपिकर्म मे अनेक भ्रातिया, त्रुटिया, दृष्टि-दोष, प्रमाद, त्वरा, विभ्रम आदि कारणो से आ जाती है। इनमें से कुछ दोष (आदर्श) प्रति की-बिना कुछ सोचे समझे की जाने वाली नकल से भी आ जाते हैं। कुछ दोषो का सम्बन्ध *लिपिक के साम्प्रदायिक-धार्मिक आग्रहो-दुराग्रहो से भी रहता है।*

सामान्यत लिपिक अक्षरो को पढने मे भूल करते हैं। यदि एक अक्षर गलत पढ लिया गया तो शब्द के शेष अक्षरो मे भी विपयय की पूरी सभावना रहा करती है। फलत पूरा शब्द ही अपना अर्थ खो देता है या फिर उसमे अनेक कोटिक विकृतिया आ जाती है।

नागरीलिपि के कुछ अक्षर प्रायः ग़लत पढ़े जा सकते हैं। 'थ' 'छ' मे बहुत से लिपिक भेद नही कर पाते। 'थाप' को 'छाप' पढना संभव है। इसी प्रकार 'छुरी' को 'थुरी' भी पढ़ा जा सकता है। 'घ' और 'ध' में शिरोरेखा के हल्के विपर्यय से अर्थ का अनर्थ प्रायः हो जाता है। 'घन' या 'धन' 'घी' या 'धी' मे यही समस्या है। इस प्रकार 'फ' का 'क' पढ़ा जाना भी पर्याप्त संभव है। 'फल' का 'कल' इसी अनवधानता का परिणाम है। 'प' तथा 'य', 'म' एवं 'स', 'उ' और 'ट' में अंतर कर पाना लिपिक के स्तर पर सरल नही है। भाव यह कि नागरी अथवा प्राय सभी लिपियो में अक्षर साम्य पर्याप्त रहा करता है।[11] इस साम्य के कारण पाठ-वैषम्य की स्थिति प्रायः आ जाया करती है।

संयुक्ताक्षर : संयुक्ताक्षरों को ठीक से न पढ पाने की विवशता बहुत से लिपिकों की होती है। 'महावीर चरितम्' की कुछ प्रतियों मे 'स्वस्थ' के स्थान पर स्वच्छ, निष्यन्द के स्थान पर 'निस्पंद' तथा 'कल्पापाय' के स्थान पर 'कल्याण' पाठ मिला।[12] स्पष्ट है कि 'प' तथा य में विद्यमान सूक्ष्म से अंतर को ध्यान में न रखने के कारण यह पाठ-विकृति हुई। महाभारत की एक प्रति (क) में 'हास्य' के स्थान पर 'हाम्य' लिखा मिलता है।[13] संयुक्ताक्षरों का यह विपर्यय 'पाठ' का बंटाढार कर देता है। उत्तरवर्ती अनुसंधाता के लिए शुद्ध पाठ का निर्धारण करना इस स्थिति में दुष्कर हो जाता है।

मुनि पुण्य विजय जी ने प्राचीन पाडुलिपियो मे उपलब्ध लिपिक कृत संयुक्ताक्षर वैषम्य का विस्तार से विवेचन किया है। उन्होंने सप्रमाण तथा सोदाहरण सिद्ध किया है कि :

(1) 'स्व' के स्थान पर 'र व' या 'ग्व'

(2) 'ग्र' के स्थान पर 'रग' या रज

(3) 'क्ष' के स्थान पर 'क्ष'

(4) 'त्र' के स्थान पर 'न्न' या 'न'

(5) 'ई' के स्थान पर 'इ'

(6) 'ष्ठ' के स्थान पर 'ष्ट' या 'ष्व'

(7) 'क्व' के स्थान पर 'क' या 'ऋ' आदि विपर्यय पांडुलिपियों में प्रायः पाए जाते है।[14]

इसके अतिरिक्त लिपिकर्म को कलात्मक बनाने के चक्कर मे बहुत से लिपिक अपने अक्षरों शब्दों का मात्र रूप परिवर्तन ही नहीं, वरन कभी कभी योनि परिवर्तन भी कर डालते हैं। ब्राह्मी लिपि के कई प्राचीन अभिलेख लिपिकों

को इस कलात्मकता के कारण मूल अर्थ से दूर जा पड़े हैं।[15] साथ ही अकलात्मक, अस्पष्ट, अक्षर-शब्द-पद विवेक शून्य तथा भद्दा लिपिकर्म अधिक अनर्थकारी हो सकता है। एक प्रसिद्ध जनश्रुति के अनुसार किसी लिपिक ने 'राजकुमार को पढ़ाओ। (अध्यापय) के स्थान पर 'अंधापय' लिख मारा। परिणाम यह हुआ कि बेचारे राजकुमार को आंखों से हाथ धोना पड़ा। तात्पर्य यह कि लिपि की आंतरिक अक्षमताओं के साथ-साथ लिपिक का प्रमाद या अज्ञान 'पाठ' को बुरी तरह क्षत-विक्षत कर सकता है। नागरी जैसी लिपि मे —जिसमें वर्णों की संख्या संसार की सभी लिपियों मे उपलब्ध वर्णों की संख्या से कहीं अधिक है-लिपिक के स्तर पर इतनी भ्रांतियों की संभावना हो सकती है, तो रोमन, फारसी-अरबी-उर्दू आदि कम वर्णों वाली लिपियों में संभावित अथवा वास्तविक वर्ण व्यत्यय की कितनी संभावनाएं हो सकती हैं, इसका अनुमान भी नही लगाया जा सकता। प्रसिद्ध है कि 'शिकस्ता शैली में लिखे एक उर्दू-पत्र को निचली अदालत से लेकर 'हाई कोर्ट' तक पांच-छह बार पढ़ने का अवसर आया। हर बार उसे भिन्न-भिन्न रूप में पढ़ा गया। नाथूराम शंकर ने 'पंच पुकार' में उर्दू की इबारत के बारे में लिखा था

'उर्दू की बेनुक्त इबारत लिख दूं काबिल दीद,'
'बीनी-खुद-बुरीद' को पढ़ के 'बेटी देव जदीद'
चुनींदा नज्म गुजारूंगा, किसी से कभी न हारूंगा'

(सरस्वती मई 1908)

डॉ॰ माता प्रसाद गुप्त प्रभृति विद्वानो ने 'पदमावत' आदि रचनाओं के उर्दू-लिपि मे उपलब्ध पाठ पर काम करते हुए इस लिपि की अनेक त्रुटियों का विवरण दिया है। इस विषय पर यथावसर विचार किया जाएगा। अपनी अक्षमताओं से लिपिक स्वयं भी अपरिचित नहीं थे। इसलिए बहुत से लिपिकों ने अपनी ओर से पर्याप्त स्पष्टीकरण भी दिए हैं —

(1) प्रो॰ मैक्समूलर ने अपनी आदर्श प्रति से लिपिक का यह श्लोक उद्धृत किया है —

'भग्न-पृष्ठ कटि ग्रीव, स्तब्ध-दृष्टि अधो मुखम्,
कष्टेन लिखित ग्रंथ, यत्नेन परिपालयेत्।

(ऋग्वेद दूसरा संस्करण
भाग-1, पृष्ठ 13, भूमिका)

इस श्लोक का तात्पर्य इस राजस्थानी दोहे में अपने पूरे भाव-विस्तार के साथ विद्यमान है —

'हाथ पांव कर कूबड़ी, मुप अरू नीचे नैन,
इन कष्ठां पोथी लिपी, तुम नीके रापीओ सैन"

(उद्धृत: पांडुलिपि विज्ञान: : पृष्ठ: 78)

प्रो. पीटरसन, बुहलर, टॉड आदि अनुसंधाताओं ने लिपिकों की इस पद्धति को विशेषत: इस कष्टप्रद प्रणाली को अपनी आंखों से देखा है। लिपि-कर्म की इस साधना को लिपिक प्राय: दुहराते हैं। संभवत. वे कष्ट साधना के इस विवरण से अपने पाठकों के मन में अपने लिए सहानुभूति भी उत्पन्न करना चाहते हैं।

(2) मैक्समूलर द्वारा उद्धृत लिपिक का यह श्लोक भी पठनीय है :

'मुने: अपि मति भ्रंश:, भीमस्यापि पराजय:,
यदि शुद्धम् अशुद्ध वा. मह्य दोषो न दीयताम्'

(ऋग्वेद: भूमिका)

अर्थात् मुनि की मति भी स्खलित हो सकती है, भीम भी पराजित हो सकता है। यदि (इस रचना मे) शुद्धि या अशुद्धि हो तो मुझे दोष न देना। अशुद्धि के लिए तो दोषी माना जाना स्वाभाविक है, परन्तु शुद्धि के लिए भी दोष स्वीकार कर लेना अकल्पनीय है।

(3) मक्खी पर मक्खी मारने वाले लिपिक अपने लिपि-कर्म के सभी दोषों (गुणों) को भी अपनी 'आदर्श' प्रति के मत्थे मढ़ दिया करते है :—

'यादृशं पुस्तकं दृष्ट, तादृशं लिखितं मया,
यदि शुद्धम् अशुद्ध वा मम दोषो न विद्यते'।

गुरमुखी लिपि में संवत् 1831 की लिखी 'योगवासिष्ठ भाषा' की एक प्रति में लिखा मिलता है :—

"बहुत लिपारी ने लिपी, पूरन केसर कीन,
भूल चूक सब सोधि के, पढउ चत्र प्रवीन"[16]

संवत 1832 की एक राजस्थानी 'पोथी' में लिखा है :

'कथा चतुरदस में लिपी, अरज करूं कर धारि,
घट-बध अक्षर जो ह्वै, संतो लेहु सुधार'[17]

भाषा अथवा शब्द-प्रयोग की भिन्नता इन सभी अवतरणों में स्पष्ट ही है। परन्तु तात्पर्य सबका यही है कि 'जैसी पुस्तक मिली वैसी लिखी' अथवा 'यदि कोई दोष हो तो क्षमा करना'।

लिपिको के इस अनुनय को केवल आलकारिक अर्थ मे ही ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि इस अनुनय की आड मे प्राय जानबूझ कर किए 'पाठ-सहार' पर भी पर्दा डालने का गूढार्थ रहा करता है।

अक्षर या पाठ-वैषम्य के कारणो को मुख्यत दो व्यत्यय-वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है —

1 अग शैथिल्य जनित व्यत्यय
तथा

2 अज्ञान (अपरिचय) अथवा प्रमाद जनित व्यत्यय,

1 अग-शैथिल्य प्राचीन अथवा मध्य युग के अधेरे 'सीलन भरे' ग्रथ भडारो-पोथी खानो-मे काम करने वाले लिपिको को प्राय असमय मे ही बुढापा आ दबोचता था। फलत लिपिक वर्ग-विशेषत व्यावसायिक स्तर पर जी तोड परिश्रम करने वाले लिपिक वर्ग–को दृष्टि मदता तथा हाथो और अगुलियो मे कपन आदि रोग प्राय घेर लेते थे। परिणाम यह होता था कि आदश प्रति के बारीक अक्षर, हल्की मात्राए, बिंदु, अनुस्वार आदि पढना एव उन्हे ठीक ठीक प्रतिलिपित करना शारीरिक अक्षमताओ के कारण इन लिपिको के लिए प्राय सभव नही होता था। मद को 'मद' कुती को 'कुती' काटा को 'काटा' पढना और इसी रूप मे प्रतिलिपित करना एक सामान्य सी घटना है। कापती अगुलियो से राम को रास, राय भी लिखा जा सकता है। इस प्रकार के व्यत्यय के से 'पाठ' मे अनेक त्रुटिया-भ्रातिया आ जाती हैं। शारीरिक अगो की शिथिलता उच्चारण यत्र की अक्षमता (भिन्नता) की भी सूचना देती है। भारत जैसे विशाल देश मे जलवायु की विभिन्न परिस्थितियो के कारण सारे देश के लोगों का उच्चारण यत्र एक सा नही हो सकता। फलत भिन्न-भिन्न प्रदेशो में एक ही ध्वनि अनेक प्रकार से उच्चरित होती है। यदि एक लिपिक-मागधी प्रभाव से—स को 'श' बोलता है तो अपने लिपिकर्म को भी वह इस प्रवृत्ति से अछूता नही रख सकता।

मैनासत प्रसग मनासत प्रसग मे लिपिक ने लिखा है
'सो नरक वाश मे जाय (95)

इसी पत्र में वरश (वष), शत (सत सत्य, शक्ति) शके (सके) शव (सब) और शशार (ससार) आदि शकारादि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। ये सभी शब्द 'मैनासत प्रसग' के अतिम पत्र से उद्धृत हैं।[18] स्वजन को 'स्व-जन' बोलने वाले लोगों की यही परपरा है।

एक प्राचीन श्लोक में कहा गया है कि ,'पूर्व देश (आसाम आदि) के रहने वालों से आशीर्वाद नहीं लेना चाहिए। क्योंकि वे लोग 'शतायु:' के स्थान पर 'हतायु' कहते हैं (श = ह) !

'क्ष' हमारी कठिनतम ध्वनियों में से है। उच्चारण के स्तर पर 'छ' या 'ख' रूप में यह ध्वनि परिवर्तित हुई है। बंगला मे लिपि के स्तर पर 'क्ष' जीवित है, परतु उच्चारण के स्तर पर इसका रूप 'ख' 'क्ख' हो गया है। चक्षु चोक्ख, लक्ष्मी, लोक्खी आदि न केवल उच्चरित ही होते है, वरन् "कृत्तिवास" रामायण (नागरी रूपातर) मे इनका यही लिखित रूप भी मिलता है। तात्पर्य यह कि लिपिक पढेगा 'क्ष' पर इसे बोलेगा छा या ख। लिखते समय भी यही दुविधा उसे घेरे रहेगी। यदि लिपिक "पाठ" को सुन कर लिखता है तो श्रुति-दोष के कारण भी उसका लिपि-कर्म क्षतिग्रस्त हो जाता है। पजाब और सिंध कुछ साधुओं ने अपनी रचनाएँ 19वी शती में अपने शिष्यों को बोल कर लिखवाई। लिखने वालो ने अपने विशिष्ट उच्चारण के अनुरूप ये रचनाएँ लिखी। व तथा ब, भ और ब, ढ और ट में इन लेखकों ने अतर नही रखा। उदाहरण के लिए गुरुमुखी लिपि की इन पाडुलिपियों को देखा जा सकता है :—

'सरबणाम्ब संग्रह' में अंत.करण के स्थान पर 'अंताकरण', प्रतिमा के स्थान पर 'प्रतमा', 'सिधांत-कटाप-ग्रंथ' में इतर को "इत्र" को अभ्यास 'अविआस' 'मंग्रहिसार' में लक्षण को 'लषण' उपाधि को 'उपाध' 'स' या 'उपाधी', पढा को 'पड़ा', वर को 'बर' रूप में लिखा गया है।

ये सभी पांडुलिपियां —आंतरिक साक्ष्य के अनुसार—'गुरु' मुख से सुन कर लिखी गई हैं।[19] इन पर पंजाबी बोलने वाले लिपिकों के विशिष्ट उच्चारण की तो छाप है ही, बोलने, सुनने और लिखने की तीन विभिन्न स्थितियों के कारण हुए अक्षर शब्द-व्यत्यय भी इनमे स्पष्ट है।

लिपिक कृत व तथा ब का व्यत्यय प्रो मैक्समूलर द्वारा संपादित ऋग्वेद (1890-92) मे भी लक्षित किया गया है। वैरी-बैरी, वीर-बीर आदि व्यत्यय ऋग्वेद के पश्चिमी सम्पादकों-मैक्समूलर तथा आफ्रेक्ट-के संस्करणों में पाए जाते है। प्रो. काशीकर ने इस विषय पर एक महत्वपूर्ण आलेख 'आल इंडिया ओरियंटल कान्फरेंस' के दरभंगा (14वें) सम्मेलन मे प्रस्तुत किया था।

अज्ञान (अपरिचय-प्रमाद) जनित व्यत्यय

कहा जाता है कि 'मूढ व्यक्ति ही श्रेष्ठ लिपिक हो सकता। (आदर्श) प्रति की हूबहू नकल करने या कर सकने वाला व्यक्ति 'पाठ अनुशासन' की दृष्टि से 'आदर्श-लिपिक' कहा जा सकता है। परंतु आदर्श तो केवल एक सपना ही रहता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य एक मनन-चिंतन-चेतना सम्पन्न प्राणी है। मनन आदि उसके सहज गुण हैं। यही कारण है कि 'मूढ-तम' व्यक्ति भी सोच समझ के उच्चतम शिखर पर स्थित अन्य प्राणियों से कहीं अधिक बुद्धिमान होता है। भाव यह कि लिपिक भी हो और 'मूढतम' व्यक्ति होने का प्रमाण पत्र भी उसके पास हो यह स्थिति दुघट-स्थिति प्रतीत होती है।

अज्ञान, वस्तुत हमारे पूरे लिपिकर्म के अतिरिक्त समूचे जीवन में विषमताओं, असंगतियों तथा अन्तर्विरोधों को विकट-संकट-पूर्ण-विभिन्न स्थितियां उत्पन्न कर देता है। पाठ अनुशासन के क्षेत्र में अज्ञान-विभिन्न कोटिक अज्ञान-निश्चय ही अक्षर से लेकर समस्त पाठ को गंभीर तथा व्यापक रूप से प्रभावित (विकृत) कर डालता है। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अज्ञान जनित अनेक भ्रांतियों से भरपूर (भ्रष्टतम) प्रति में भी यत्र-तत्र-भूल चूक से कभी कभी सर्वोत्तम 'पाठ' का कोई अंश सुरक्षित भी पाया जा सकता है। फलत अनुसंधाता के लिए 'पाठ' की प्रत्येक उपलब्ध प्रति का महत्व बना ही रहता है।

अज्ञान बहुत व्यापक शब्द है। लिपिकर्म (शब्द-रूप, वर्तनी, पद, प्रकृति, प्रत्यय) के विवेक पूर्ण विन्यास से लेकर प्रतिपाद्य की पूरी जानकारी पाठ अनुशासन की दृष्टि से ज्ञान कोटि में रखी जाती है। इसके विपरीत लिपि-कर्म तथा प्रतिपाद्य के संबंध में थोड़ा सा भी मति-भ्रम अज्ञान ही कहा जाता है। इस दृष्टि से प्राचीन लिपिकों के लिपिकर्म की समीक्षा करने पर अनेक मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक तथा भाषाई तथ्य प्रकाश में आते हैं।

योगवासिष्ठ भाषा पंजाब के लिपिकों ने हिन्दी के प्राचीनतम गद्य साहित्य को गुरुमुखी तथा नागरी लिपियों में लिपित प्रतिलिपित किया। इस कार्य को सम्पन्न करते समय स्वभावत कुछ अज्ञान जनित त्रुटियां 'पाठ' में आ गईं। 'योग वासिष्ठ भाषा' की एक प्राचीन प्रति (लिपि गुरुमुखी। प्रतिलिपि संवत् 1831) के एक अवतरण में 'ब्रह्मन्' (संस्कृत संबोधन) को "हे ब्रह्मण' रूप में अनूदित लिपित किया गया है। प० रामचन्द्र शुक्ल के 'इतिहास' में 'योग वासिष्ठ भाषा' के किसी बम्बई संस्करण से उद्धृत अवतरण में 'हे ब्रह्मण' के स्थान पर 'हे ब्रह्मण्य' छपा मिलता है।[20]

'ब्रह्मन्' से 'ब्रम्हण्य' तक की यह यात्रा लिपिक-प्रतिलिपिक परम्परा के अज्ञान से ही संभावित है।

'पारस भाग' (रचनाकाल: 18वीं शती का पूर्वार्ध) की एक पांडुलिपि (लिपि : गुरुमुखी) में 'मनमति' (अर्थ : अपनी इच्छाओं का दास) शब्द प्रयुक्त हुआ है। पंजाब के साहित्य में यह शब्द पर्याप्त प्रचलित है। परंतु इस प्रचलित शब्द से अपरिचित होने के कारण 'पारसभाग' के नागरी संस्करण (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ) मे 'मनमति' के स्थान पर मन्मथ शब्द रखा गया है।[21] 'पारसभाग' के दूसरे नागरी रूपांतर 'पारसमणि' में 'मन्मथ' के स्थान पर 'कामासक्त' शब्द प्रयुक्त किया गया है।[22] अज्ञान तथा अपरिचय के कारण कितना शब्द व्यत्यय हो सकता है, इसका निदर्शन इस एक शब्द की विभिन्न प्रस्तुतियों मे हो सकता है।

पदमावत : डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल को 'पद्मावत' (संपादक: पं० रामचंद्र शुक्ल) की एक अर्द्धालि में 'डांडि' शब्द मिला। इसके नौ पाठांतर विभिन्न प्रतियों में मिले। एक एक पाठांतर पर विचार करने से 'दुआलि' (फारसी शब्द/अर्थ : चमड़े की रस्सी) शब्द ही मूल प्रति में रहा होगा, यह निश्चय किया गया।

सामान्यत: लिपिक-परम्परा में 'दुआली' जैसे फारसी तथा प्राय: अप्रचलित शब्द अपरिचित रहे हों, इनकी पूरी संभावना है। साथ ही प्रसंग के अनुसार इस कठिन शब्द के स्थान पर सरल तथा सुबोध शब्द रखने की परंपरा भी लिपिक वर्ग में प्रचलित थी, इस तथ्य की भी पुष्टि इस प्रसंग से होती है।[23]

मिरगावती : अज्ञान तथा प्रमाद का मिला जुला रूप 'मिरगावती' की एक प्रति (पुष्पिका) में मिलता है। 'पुष्पिका' के संपादित प्रकाशित अंश में '———सुभ असुभ सी गुरु प्रसाद— · —', आदि पंक्तियां विद्यमान है[24]। डा० परमेश्वरी लालगुप्त की वाचना के अनुसार —विभिन्न परंपराओं तथा पाठांतरों के साक्ष्य पर यहां 'सुभ असीस श्रीगुरु प्रसाद'पाठ होना चाहिए।[25] अज्ञान तथा अपरिचय के अतिरिक्त 'प्रमाद' के कारण भी लिपि-कर्म में अनेक स्खलन, त्रुटियां अथवा भ्रांतियां आ जाती है। प्रमाद का संबंध शरीरगत आलस्य से है। पर पाठ अनुशासन की दृष्टि से 'प्रमाद' मानसिक (बौद्धिक) अक्षमताओं का भी सूचक है! एक सजग लिपिक से यह अपेक्षा की जाती है कि उसे अपनी आदर्श प्रति के अतिरिक्त रचना की अन्य प्रतियों-वाचनाओं-की भी जानकारी रहनी चाहिए। विभिन्न प्रतियों में संचित-संकलित पाठ को तुलनात्मक दृष्टि से देखना परखना भी लिपि-कर्म की अपेक्षा है।[26] इन

अपेक्षाओ मे से किसी एक की भी-पूर्णत या अशत उपेक्षा-करना प्रमाद ही कहा जाएगा।

प्रमाद जनित–पाठ-व्यत्यय

इस प्रमाद के कारण पाठ मे ये विकृतिया (व्यत्यय) सभावित हैं —

1 स्वर (मात्रा) व्यजन व्यत्यय

महादोप के स्थान पर महादास (भवभूति कृत महावीर चरितम् पाडुलिपि वी) सरासुर (बाणासुर) के स्थान पर 'सुरासुर' (मानस)

2 स्वर (मात्रा) व्यजन लोप

'विपय वासी' के स्थान पर विप-वासी (रामायण डी प्रति),

'लोल लोअणो' (लोल लोचन) इस प्राकृत शब्द के स्थान पर 'लोलअणो' (महावीर चरितम् 2/7/8)

विलीन के स्थान पर 'वलीन' निवृत्त के स्थान पर निवरत'' सालोक्य मुक्ति के स्थान पर 'सलोकु मुकति जैसे लिपिक प्रयोग पजाब की मध्यकालीन पाडुलिपियो मे मिलते हैं।[27]

3 सकेताक्षरों की भ्रान्त वाचना

शब्दों को सक्षिप्त रूप देकर लिखने की प्रवृत्ति भी प्राचीन पाडुलिपियो में पाई जाती है। यदि किसी शब्द की आवृत्ति बार-बार हो रही है तो लिपिक निश्चय ही उस शब्द के प्रथम तथा अतिम अक्षरो को लेकर 'सकेताक्षर' बना लेने का लोभ सवरण नहीं कर सकेगा। ब्राह्मी लिपि के कुछ शिलालेखो मे 'दूत' शब्द के स्थान पर सकेताक्षर मात्र 'दू०' मिला। क्योंकि उन शिलालेखो मे दूत शब्द की आवृत्ति बार-बार हो रही थी। श्रम तथा समय की बचत करना कौन नही चाहेगा? प्राकृत ग्रथो मे 'गा' से 'गाथा' तथा रासो, मानस की पाडुलिपियो मे 'दो, से दोहा, 'सो' से सोरठा आदि की सूचना दी गई है। असावधान लिपिक इन सकेताक्षरो को पाठ के साथ मिला देता है। फलत पाठ विकृति का सूत्रपात हो जाता है।

4 अक्षर-शब्दों का भ्रात स्थानातरण

लिपिकर्म मे त्वरा या प्रमाद के कारण 'पाठ' के कुछ अक्षर तथा कभी-कभी शब्द भी स्थानातरित हो जाते हैं। डॉ० लक्ष्मण स्वरूप ने 'निरुक्त' की पाडुलिपियो मे उपलब्ध इस प्रकार की भ्रातिया लक्षित की हैं। 'मक्खी-

मच्छर' के स्थान पर 'मक्खर-मच्छी' लिख मारना इसी प्रवृत्ति का उदाहरण है। 'पंचासत उपनिषद् भाषा' (लिपि : गुरुमुखी) की एक प्रति में 'उद्गीथ' को 'उगदीथ' लिखा गया है। 'चरवन फेरव दार' (काव्य निर्णय : भिखारी दास) की इस पंक्ति को 'चरवन फेरवदार' के रूप में लिपित करने के मूल में यही प्रवृत्ति काम करती है। मिलित अक्षरों की भ्रांत वाचना तो यहां स्पष्ट ही है।

5. हाशिए के लेख का पाठ में अपमिश्रण

प्राय: प्रत्येक पांडुलिपि के पत्रों पर हाशिए की सीधी रेखाएं खिंची मिलती हैं। पत्र के दाएं-बाएं हाशिया लगा कर पाठ लिपित करने की परम्परा बहुत प्राचीन है। हाशिए की रेखाएं कभी-कभी रंगीन तथा कभी-कभी बेल-बूटों से सजी भी मिलती है।

'हाशियह्' (अरबी) शब्द से हाशिया विकसित हुआ है। इसका अर्थ है किनारा। पत्र के दोनों किनारों के लिए इसका प्रचलन लिपिकर्म में पाया जाता है। हाशिए पर पाठ संबंधी कोई अतिरिक्त सूचना कभी कभी लिपिक स्वयं तो कभी कोई अन्य व्यक्ति भी टांक दिया करता था। इसे 'हाशिए-आराई' या 'हाशिया चढ़ाना' कहा जाता है। लिपिक कभी-कभी प्रमाद से अपनी आदर्श प्रति के हाशिए पर दर्ज किसी इबारत को भूल से मूल पाठ के साथ मिला देता है। 'संदेश-रासक' की एक प्रति के हाशिए पर लिखे छंद-लक्षण किसी लिपिक ने मूल पाठ के साथ मिला दिए। इस अपमिश्रण से मूल पाठ पर्याप्त विकृत हुआ।

'पारस-भाग' की एक प्रति के हाशिए पर लिखे 'याद को' (करो) को किसी लिपिक ने मूल पाठ में डाल दिया और इस अनपेक्षित अपमिश्रण से पाठ पर्याप्त दुर्बोध बन गया। ध्यान से देखने पर अधिकांश लिपिक दोष स्वाभाविक ही कहे जाएंगे। सामान्य स्थिति में इस प्रकार के दोष किसी भी लिपिकर्म में –अधिक या कम—संभावित ही हैं। इस प्रकार के सभी संभावित लिपिक दोषों के लिए क्षमा प्रार्थना पंजाब की पांडुलिपियों के अंत में इस प्रकार की जाती रही है :

'भुल्लण अंदर सभ कोइ, अभुल्ल गुरु करतार'

अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति भूल चूक की सीमाओं में है। परन्तु केवल 'गुरु-करतार' (स्वयं ईश्वर) ही अभुल्ल अर्थात् भूल-चूक से ऊपर है।

प्राथमिक अपेक्षा : इस सारस्वत-परम्परा को ध्यान में रख कर लिपिकर्म

मे सभावित भ्रातियो को ध्यान मे रख कर रचना (आदर्श प्रति) के प्रति पूर्णत निष्ठावान् रहते हुए भी जो दोष किसी लिपि कर्म मे पाए जाते हैं, उनकी पूरी छानबीन-पूरी निर्ममता के साथ—की तो जानी ही चाहिए, पर केवल दोष दर्शन की मानसिकता से ऊपर उठना पाठ अनुशासन की प्राथमिक अपेक्षाओ मे से है, इस तथ्य की उपेक्षा नही की जा सकती। 'पाठ के क्षेत्र मे काम करने वाले अनुसधाताओ—डॉ० लक्ष्मण स्वरूप, डॉ० सुखथकर, डॉ० कात्रे, डॉ० उपाध्ये, मुनि पुण्य विजय तथा मुनि जिन विजय प्रभृति विद्वानो—ने 'पाठ' मे प्रायश उपलब्ध लिपिक-दोषो को भिन्न-भिन्न वर्गों मे विभाजित किया है। निश्चय ही इन सब कारणो के कई उपवर्ग भी बनाए जा सकते है। परन्तु केवल अज्ञान, शारीरिक अक्षमता तथा प्रमाद के कारण लिपिकर्म मे इसी कोटि की त्रुटिया सभावित हैं। इन सब त्रुटिया मे मौलिक समानता इतनी ही है कि ये सब त्रुटिया अनजाने मे ही होती हैं।

सोद्देश्य पाठ-व्यत्यय इनके विपरीत कुछ पाठ-व्यत्यय लिपिक जानबूझ कर *किसी विशेष उद्देश्य से भी करते है। यहा लिपिक खलनायक की भूमिका* मे अवतरित होता है। इस प्रकार के सचेष्ट प्रयासो के कारण पाठ मे अनेक विकृतिया आ जाती हैं। इन्हे 'सचेष्ट-पाठ विकृतिया' भी कहा जा सकता है।

क्षेपक इन विकृतियों मे सबसे महत्वपूर्ण है, क्षेपक। कभी-कभी लिपिक अपने साम्प्रदायिक आग्रह, अपनी वैयक्तिक मानताए, लोकप्रिय कथाए-घटनाए भी अपनी आदश प्रति के पाठ मे अपनी ओर से मिला देता है। उसका उद्देश्य प्राय अपनी मान्यताओ, धारणाओ या घटनाओ को अपेक्षित प्रामाणिकता, इतिहास प्रसिद्धि तथा सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाना होता है। महाभारत से लेकर रासो ग्रथो तथा रासो से लेकर 'मानस' तक लिपिको ने पाठ मे अनेक प्रकार से क्षेपक (प्रक्षिप्त अश) डालने का कुचक्र जानबूझ कर किया है। मूल या आदर्श प्रति की भाषा-शैली का यथावत् अनुकरण कर बडी सावधानी से प्रक्षिप्त अश 'पाठ' मे लिपिको ने डाले हैं। आज इन प्रक्षिप्त अशो को पहचान पाना कठिन जान पडता है। मूल के अतिरिक्त पुष्पिकाओं मे, रचनाकाल मे, रचयिता, लिपिक सम्बन्धी विवरण मे भी अनपेक्षित परिवर्तन प्रक्षिप्त-अश डाल कर किया गया है।

'पदमावत' के अत मे पूरी कथा को 'रूपक' सिद्ध करने वाला

'तन चितउर, मन राजा कीन्हा'

आदि अश प्रक्षिप्त जान पडता है। स्पष्ट है कि 'प्रक्षेप' जहा पाठ को सदोष बनाता है, वहा अनुसधाता के समक्ष एक चुनौती बन कर भी डट जाता है।

क्षेपक कारण प्राचीन पुस्तको मे प्रक्षिप्त-अशो का समावेश बहुत प्राचीन

समय से और प्राय: विश्व में सर्वत्र होता आया हैं। प्रक्षिप्त पाठ से जूझने वाले अनुसंधाता सर्वत्र विद्यमान रहे हैं। होमर की कृतियों में उपलब्ध-प्रक्षिप्त अंशों को निकाल कर शुद्ध पाठ का उद्धार करने वाले विद्वानों में ग्रीक विद्वान 'जेनोडोटस' (समय ईसा पूर्व दूसरी या तीसरी शताब्दी) का नाम सर्वोपरि है। यद्यपि स्वच्छन्द रूप से की गई प्रक्षिप्त अंशों की यह पहचान उत्तरवर्ती विद्वानों को संतुष्ट न कर सकी। तथापि इस दिशा में किए गए इस प्रारम्भिक प्रयास का अपना महत्व तो है ही।

भारत में भी प्रक्षिप्त अंशों के अपमिश्रण की समस्या बहुत विकट रही है। वैदिक संहिताओं को छोड़ कर उत्तरवर्ती साहित्य-विशेषतः रामायण तथा महाभारत जैसी विशाल आकार की लोकप्रिय रचनाएं-लिपिक- प्रतिलिपिक परम्परा के कारण अनधिकृत प्रक्षिप्त अंशों के समावेश से प्रतिपाद्य (उद्देश्य) के स्तर पर उत्तरोत्तर भ्रामक बनती चली गई। राजशेखर ने सम्भवत. इसलिए ग्रंथ रचयिताओं को सुझाव दिया था कि 'अपनी रचनाओं के अनेक 'आदर्श' (प्रतिलिपियां) तैयार करवाएं'। राजशेखर का विचार था कि रचयिता की देखरेख में रचयिता के जीवन काल में ही- यदि किसी रचना की विभिन्न प्रतिलिपियां प्रस्तुत की जाएं तो संभवत: प्रक्षिप्त अंशों का समावेश उनमें न हो सकेगा।[28] परतु इस सुझाव को व्यावहारिक रूप देना उस युग में सरल न था। सर्वश्री सुखथंकर, बेलवलकर वैद्य के संपादकत्व में 'हरिवंश पुराण' संपादित तथा प्रकाशित हुआ (1969 ई०)। इसकी भूमिका में यह सूचना दी गई है कि इस पुराण की पांडुलिपियों में 318 अध्याय तथा 18,000 श्लोक मिलते हैं। परन्तु इस संस्करण में केवल 118 अध्याय तथा 6073 श्लोक- प्रक्षिप्त अंश निकाल कर-ही संपादित किए गए हैं। इसी प्रसंग में प्रक्षेप कारणों को-किसी प्राचीन अनुश्रुति के आधार पर- इस प्रकार परिगणित किया गया है 'संग्राम, विवाह, स्तुति, वरदान तथा फलश्रुति के कारण किसी रचना में प्रक्षिप्त अंश मिलाए जाते हैं'।[29]

प्राचीन कृतियों में प्रक्षेप-समावेश की व्याख्या इस अनुश्रुति से संतोषजनक रूप में हो जाती है। इन कारणों का प्रस्तवन संक्षेप से इस प्रकार किया जा सकता है:

1. संग्राम : रासो, आल्हा जैसी लोकप्रिय रचनाओं की प्रतिलिपि तैयार करते समय संग्राम के वास्तविक या काल्पनिक विवरण प्रक्षिप्त रूप से मूल पाठ में प्राय: मिला दिए जाते हैं। लोक रंजन या मूल पाठ को अधिक प्रभावी बनाने के उद्देश्य से लिपिक स्वरचित अंश भी मूल में डाल देता है। भाषा-शैली, छंद-विधान आदि की दृष्टि से इन प्रक्षिप्त-अंशों को मूल के निकट रखते समय इन छद्म लेखकों का कौशल चकित कर देता है। संग्राम संबंधी प्रक्षिप्त अंशों में

सङ्ख्या-विषयक अतिरंजना प्राय मिलती है। अस्त्र-शस्त्रों की नामावली प्रक्षिप्त अशो मे—बिना किसी औचित्य या अनुपात के —ठूँस दी जाती है। 'एक को सवा लाख बताने मे ही इस अतिरजना का कौशल निहित है।

2 **विवाह** विवाह वर्णन हमारे महाकाव्यो का एक लोकप्रिय प्रसग है। कालिदास ने 'रघुवश' मे और तुलसी ने 'मानस' मे एक से अधिक स्थलो पर विवाह वर्णन किया है। अनेक लोक कथाओ, रीति-रिवाजो, जेवनार आदि के विवरण-लोक रुचि को ध्यान मे रख कर विवाह-वणन के प्रसग मे प्रस्तुत किए जाते हैं। यदि लिपिक मे भी कविता करने का सामर्थ्य विद्यमान हो तो अपनी रचना का कोई अश मूल पाठ मे मिला देने का लोभ सवरण करना लिपिक के लिए कठिन होगा।

3 **स्तुति** स्तुति के मूल मे है अतिरजना। यदि मूल पाठ की स्तुति लिपिक की अपनी इष्ट-भावना से मेल खा जाए तो लिपिक-एक दो पद्य-या गद्य पक्तिया—अपनी ओर से मूल मे डालना अपना धार्मिक कर्तव्य मान लेता है। फलस्वरूप पाठ मे प्रक्षिप्त अश का समावेश हो जाता है।

4 **वरदान** देव स्तुति और तपस्या से द्रवित होकर देवता वरदान देते हैं, यह एक प्रचलित विश्वास है। शकर को आशुतोष, औढर दानी आदि सार्थक विशेषण इसलिए दिए जाते हैं कि वे आर्त भक्त की 'टेर' जरा जल्दी ही सुन लेते हैं। इस बहु प्रचलित भावना के कारण वरदान देने की अनेक घटनाए शकर से जुडी चली आ रही हैं। पाणिनि को '14 सूत्रा' की प्राप्ति शकर की कृपा से ताडव नृत्य के बाद हुई बताई जाती है। इस प्रकार प्रक्षिप्त -अशो का एक स्रोत वरदान भी सिद्ध होता है। सरल-विश्वास-परायण व्यक्ति के विश्वास को और भी दृढ करने के लिए वरदान सम्बन्धी घटनाएँ क्षेपक के रूप मे डाल देना, एक पुराना हुनर है।

5 **फलश्रुति** किसी ग्रन्थ के पाठ करने, मन्त्र जप करने अथवा किसी अन्य विधि विधान का पालन करने से किसी अभीष्ट फल की प्राप्ति होने का आश्वासन प्राय धार्मिक पुस्तको के अन्त मे कभी-कभी अध्यायो की पुष्पिकाओ में भी दिया जाता है। इसे 'फलश्रुति' कहा जाता है।

श्रीमद्भगवद् गीता के एक भाषानुवाद (लिपि गुरमुखी) 'गीता महातम मे प्रत्येक अध्याय का पृथक् पृथक् तथा सम्पूर्ण गीता के पाठ का माहात्म्य-फलश्रुति मूलक अनेक कथाओ के माध्यम से-दिया गया है। 'फैजी' कृत गीता के फारसी अनुवाद मे भी हाशियो पर 'गीता माहात्म्य' लिखा मिलता है (प्रतिलिपि काल 1871 ई०)[30]

यह फलश्रुति आज के विज्ञापनों की तर्ज पर तैयार की जाती है। प्राय: धार्मिक ग्रन्थों में फलश्रुति के कारण प्रक्षिप्त पाठ पाया जाता है।

वैष्णव-शैव-तकरार : मूल में प्रक्षिप्त-अंशों का समावेश निश्चय ही इन सभी कारणों से होता रहा है। परन्तु गुप्त युग मे 'परम भागवत' का विरुद्धारण करने वाले शासकों के संरक्षण में वैष्णव सम्प्रदायवादी, काश्मीर के 'प्रत्यभिज्ञा-वादी' तथा दक्षिण के 'भारशिव' जैसे शैव सम्प्रदायवादी एक दूसरे के सामने डट गए। शैवों और वैष्णवो की इस तकरार के कारण प्राचीन ग्रंथों को एक घिनौना साम्प्रदायिक रूप भी दिया गया। प्राचीन ग्रंथों मे शिव अथवा विष्णु के प्रति अभद्र शब्दावली प्रक्षिप्त रूप से डाल दी गई।

रामायण तथा महाभारत की उत्तरी तथा दक्षिणी वाचनाओं मे उपलब्ध इस कोटि की सांप्रदायिक सामग्री के कारण इन दोनों रचनाओं के अखिल भारतीय रूप को बहुत क्षति पहुंची है। इस प्रकार की प्रक्षिप्त सामग्री का किसी प्राचीन रचना मे समावेश एक जघन्य अपराध है। दुर्भाग्य से यह अपराध शताब्दियों से होता आ रहा है। एक अक्षर, शब्द या पंक्ति से लेकर क्षेपक का आकार-विस्तार एक पूरे प्रसंग-अध्याय, सर्ग, पर्व जितना पाया जाता है। दो प्राचीन पांडुलिपियों में उपलब्ध कुछ आदर्श क्षेपकों का परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है :—

पंचासत उपनिषद भाषा (लिपि गुरुमुखी) दाराशिकुह कृत 'सिर्र-ए-अकबर' का भाषानुवाद है। इसका आरम्भ 'उअं। ओं सतिगुर प्रसादि। ओं। स्री परमातने नमह। अथ उपनिषद् छांदूक सामवेद भाषा लिपते'।[31] इस अवतरण के साथ हुआ है। 'सिर्र-ए-अकबर' से तुलना करने पर पता चला कि :—

1. 'उअं (ओं) मूल (फारसी) के अनुसार है ; फैजी ने गीता के फारसी अनुवाद के आरम्भ मे भी 'उअं' ही रखा है।

2. 'ओ' आदि पद अनुवादक ने अपनी ओर से लिखा है : पंजाब की पांडुलिपियो में यह मंगलसूचक पद प्राय: सर्वत्र मिलता है। मूल (फारसी) में यह नही है।

3. 'ओं' की तीसरी प्रस्तुति तथा 'स्री परमातमने नमह' यह पद भी मूल (फारसी) मे नहीं है :

4. 'अथ-लिपते' पद मूल (फारसी) वाक्य का छायानुवाद जान पड़ता है। 'छान्दोग्य' को 'छांदूक' रूप मूल फारसी के अनुरोध पर दिया गया है।

स्पष्ट है कि इस प्रारभिक अवतरण मे तीन पद मूल के अनुसार नही है। इन तीनो पदो को प्रक्षिप्त कहा जाएगा। क्षेपक का यह लघुतम परन्तु बहु-प्रचलित रूप है।

योग वासिष्ठ भाषा योग वासिष्ठ भाषा की दो मुद्रित तथा दो पाडु-लिपियो के प्रारम्भिक अवतरणो मे उपलब्ध प्रक्षिप्त अशों का विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है —

प्रति क 'प्रथम परमब्रह्म परमात्मा को नमस्कार है'
(उद्धृत प० रामचद्र शुक्ल कृत हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 412)

प्रति ख 'ओ' सतिगुरु प्रमादि। स्री परमातमाय नम।
अथ वैराग प्रकरण स्रवण समृत भाषा लिषते।'
(सवत् 1923 मे प्रतिलिपित पाडुलिपि)

प्रति ग 'श्री गनेशाय नम। श्री परमात्मने नम।
अथ वैराग्य प्रकरण श्रवण स्मृत भाषा लिख्यते।'
(नागरी अक्षरो म उपलब्ध 'हिसार' की पाडुलिपि)

प्रति घ 'स्री परमात्मने नमह। अथ स्री योग वासिष्ठे '
(गुरुमुखी लिपि की लीथो प्रति)[32]

(क) प्रति मे अनुवादक का मगलाचरण नही है। केवल मूल योग-वासिष्ठ के मगलाचरण के साथ ही ग्रथ का आरभ किया गया।

ख, ग तथा घ प्रतियो मे मगलाचरणो के विविध रूप द्रष्टव्य हैं। (ख) प्रति में 'ओ' आदि मगल वचन के साथ 'परमातमाय नम' भी है। (ग) प्रति मे 'श्री गणेश तथा 'श्री परमात्मने नम' दोनों मगल वचन व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हैं। (घ) प्रति मे केवल एक मगल वचन है। स्पष्ट है कि मगलाचरण विषयक इस वैषम्य का समाधान ढूढने के लिए अन्य पाडुलिपियो-प्राचीनतम पाडुलिपियो-पर विचार करना होगा।

ख, प्रति मे 'स्रवण समत भाषा' तथा घ प्रति मे 'श्रवण-स्मृत भाषा' एक अस्पष्ट पद है। क तथा घ प्रतियो मे यह पाठ नहीं है। इसके शुद्ध रूप का अनुसधान तथा इसकी अर्थ सगति भी विचारणीय है। तात्पर्य यह कि प्रक्षिप्त अशो का व्यापक तथा विविध रूप से समावेश पाडुलिपियो-मुद्रित पुस्तको मे पाया जाता है। इन प्रक्षिप्त अशो का विधिवत् विवेचन-विश्लेषण करने के उपरात ही शुद्ध पाठ तथा प्रक्षिप्त अशों के पीछे निहित स्वार्थ का पता लगाया जा सकता है।

सोद्देश्य-पाठ-लोप : क्षेपक – प्रणाली से विपरीत है, पाठ-लोप की पद्धति। प्रमाद या अज्ञान जनित पाठ लोप से भिन्न कोटि है, सोद्देश्य-पाठ-लोप की किसी विशेष उद्देश्य से प्रतिलिपि करते समय मूल पाठ के किसी विशेष अंश को निकाल देना सोद्देश्य-पाठ-लोप कहा जा सकता है। 'पारसभाग' की विभिन्न पाण्डुलिपियों तथा मुद्रित प्रतियों में इस्लामी साधना पद्धति के साधकों, यहूदी, ईसाई मत के पैगंबरों के नाम उनके वचन आदि सामग्री संकलित है। परंतु कुछ प्रतियों में से यह सामग्री चुन-चुन कर निकाल दी गई है।

इस्लामी-नामावली : पारस भाग जैसी बहु-आयामीय कृतियों में लिपिक-पाठक-संपादक के विभिन्न स्तरों पर अनेक दृष्टि-भेद पाए जाते हैं। इस्लामी (सूफी) साधकों के अभारतीय नाम भारतीय परिवेश में सरलतया स्वीकार्य नहीं होते। इसी प्रकार इस्लामी (सूफी) दृष्टि तथा जीवन चर्या भी बहुत से पाठकों को उद्विग्न करती है। परन्तु मूल पुस्तक के प्रतिपाद्य का मुख्य-अंश इन लिपिकों-पाठकों के अपने परिवेश के अनुरूप होता है, अत: इस मुख्य अंश के प्रति उनका आग्रह बना ही रहता है। परन्तु आग्रह तथा उपेक्षा के अन्तर्द्वन्द्व में लिपिक पाठ को प्राय: अपपाठ बनाकर ही छोड़ते हैं। पारस भाग में दृष्टि भेद के कारण उपलब्ध सोद्देश्य पाठ-लोपों का एक संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है :

अवैष्णव तत्त्वों का बहिष्कार : पारस भाग में ऐसे शब्द तथा वाक्य मिलते हैं, जिनका सामंजस्य अहिंसा मूलक वैष्णव दृष्टि से नहीं हो पाता। फलत: वैष्णव लिपिक-अवैष्णव प्रक्रिया से-मूल पाठ की हत्या कर देते हैं और उसके स्थान पर विकृत पाठ रख देते हैं। इस प्रकार के अपपाठ का यह एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

'जैसे मखी अपणे चिति विषे जाणै जो कसाई मेरे ही वास्ते हाटु काढता है। सो जदप कसाई के हाट काढणे करिके मखी कउ अहार प्राप्त भी होता है। परु वहु कसाई अपणे विवहार विषे ऐसा मगन् है। जो मखी उसके सिमरन विषे भी नहीं होती।'

(पारस भाग : प्रति : क, पत्र: 412)

पारस भाग की ग प्रति में यह अवतरण इस प्रकार मिलता है :

'जैसे मखी अपणे चित विषे जाणे जो कसाई मेरे ही वासते हाटु काढ़ता है। सो जदप कसाई के हाट काढणे करि के मखी कउ अहार प्रापति भी होता

है पर वह कसाई अपणे विवहार विषे (ऐसा) मगनु है। जो मखी उसके सिमरन विषे भी नही होती।

(पत्र 575)

यह अवतरण थोड़े भिन्न रूप मे पारस भाग की अन्य गुरमुखी प्रतियों मे भी उपलब्ध होता है। परन्तु लखनऊ सस्करण के वैष्णव सम्पादकों को 'कसाई-मास की हाट, (दुकान) आदि शब्द अग्राह्य प्रतीत हुए। फलत इस अवतरण को उन्होंने इस प्रकार सम्पादित-प्रकाशित किया

"जैसे माखी अपणे चित विषे जाने कि शीरी मिठाई हलवाई लोग मेरे ही अथ करते हैं।"

(पारस भाग पृष्ठ 423)

कसाई के स्थान पर हलवाई शब्द दृष्टि-भेद के कारण रखा गया है। शीरी मिठाई मूल के अनुरोध पर नही है। इस पाठ का कारण दृष्टिभेद है।

पारसमणि का सम्पादक इस अवतरण मे आए 'शीरी मिठाई' के स्थान पर "सारी मिठाईया" रख देता है (पृष्ठ 634)। मूल पाठ को अपपाठ मे परिवर्तित करने की यह सचेष्ट प्रक्रिया पारस भाग के विभिन्न सस्करणों मे पाई जाती है।

निर्गुण पर सगुण का आरोप पारस भाग की मूल दृष्टि निर्गुण-परक है। यह निर्गुण दृष्टि पारस भाग के सगुणवादी वैष्णव सम्पादकों को रास नहीं आती। अत वे बडी सफाई से निर्गुण परक अशो को सगुण भावना के अनुकूल बना देते हैं और इस प्रकार पारस भाग मे अपपाठो का समावेश करते चलते हैं। उदाहरण

'बुधिवान पुरप हैं सो तिनकी प्रीति निरगुण सरूप विषे होती है।'

(प्रति क पत्र 470)

यह वाक्य पारस भाग की ख प्रति मे इस प्रकार मिलता है

'बुधिवान जो पुरप है सो तिनकी प्रीति निरगुण सरूप विषै होती है।'

(पत्र 502)

गुरु नानक की निर्गुणवादी दृष्टि पजाब के साहित्यकारों की प्रेरिका शक्ति रही है। अत पारस भाग जैसी कृतियों मे निर्गुण दृष्टि को सरलतया अपना लिया गया है। परन्तु सगुणवादी सम्पादक इस निर्गुण दृष्टि के साथ समझौता नही कर पाते।

लखनऊ सस्करण मे इस वाक्य को इस प्रकार सम्पादित किया गया है

'पर जो बुद्धिमान पुरुष है तिसकी प्रीति अन्तरीव सूक्ष्म स्वरूप विषे ही होती है।' (पारस भाग : पृष्ठ : 585)

पारसमणि के सम्पादक ने इस वाक्य को इस प्रकार सम्पादित किया है :

'किन्तु जो बुद्धिमान पुरुष होते हैं उनकी आन्तरिक प्रीति सूक्ष्म स्वरूप में होती है।' (पृष्ठ : 859)

दृष्टि भेद के कारण यहां अपपाठ पाया जाता है।

महांराज : पारस भाग में ब्रह्म (ईश्वर) के लिए महांराज, साईं तथा भगवंत शब्द प्रयुक्त हुए है। पारस भाग की गुरुमुखी प्रतियों तथा प्रकाशित संस्करणों में इन तीनों शब्दों का प्रयोग प्रायः मिल जाता है। परन्तु सगुण दृष्टि के साथ इन शब्दों का पूर्ण सामंजस्य न होने के कारण पारस भाग के लखनऊ संस्करण में इन शब्दों के स्थान पर राम की सगुण लीलाओं से सम्बन्धित नामावली प्रयुक्त की गई है। उदाहरण के लिए, 'महाराजि के समान उदारु अरु दइआलु अवर कोई नही।' (पारस भाग : प्रति क : पत्र : 434)

इस वाक्य को पारस भाग (लखनऊ संस्करण) में 'श्री जानकी जीवन के समान उदार और दयालु और कोई नहीं' (पृष्ठ : 444)

इस प्रकार रूपांतरित किया गया है।

पारस मणि के सम्पादक ने इस वाक्य को अनजाने ही मूल पारस भाग की दृष्टि तथा शब्दावली के अनुरूप रखा है :—

'भगवान के समान दयालु और उदार कोई नहीं है।' (पृष्ठ : 664)

भगवंत पारस भाग (प्रति : क) मे एक स्थान पर भगवंत शब्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ।

'भगवंत ने अपनी दइआ करिके राख परि निबेडा कीआ है।' पत्र 427
पारस भाग (लखनऊ) में यह वाक्य इस प्रकार मिलता है :—

"श्री जानकीनाथ ने अपनी दया करके राख पर ही निबेरा कर दिया है।" (पृष्ठ 437)

पारसमणि में मूल भगवंत के स्थान पर भगवान शब्द रखा गया है :—
"भगवान ने कृपा करके राख से ही मेरा छुटकारा कर दिया है।" (पृष्ठ 653)

साईं :—स्वामी से विकसित साईं शब्द पंजाब में प्रचलित है। सिन्धी आदि भाषाओं में भी प्रचलन है। पारस भाग में निर्गुण ब्रह्म के लिए इस शब्द का प्रयोग प्रायः हुआ है :—

'इसी परि साईं भी कहा है। जो इस लोक के दुख ते परलोक का दुख अति कठनु है' (पत्र 427)

साईं के स्थान पर महाराज शब्द का प्रयोग पारस भाग (लखनऊ सस्करण) मे हुआ है

'इसी पर महाराज ने भी कहा है कि इस लोक के दु ख से परलोक का दु ख अति कठिन है।' (पृष्ठ 437)

इन अवतरणो से यह सिद्ध हो जाता है कि पारस भाग के शुद्ध पाठ को अपपाठ मे परिवर्तित करने के लिए लिपिकों-सपादको ने शुद्ध पाठ को अपपाठ बना डाला।

पाठलोप

दृष्टि भेद के कारण मूल पारस भाग मे उपलब्ध अभारतीय व्यक्तिवाचक सज्ञाओ को बहुत से लिपिक—सम्पादक छोड देते हैं। मिहतर (हजरत) नूह, खलील अबीआ (इब्राहीम खलील), मिहतर मूसा, मिहतर दाऊद और मिहतर ईसा जैसे पैगबरो और फुजैल, इब्राहीम अदहम, आयशा, राबिआ, शिबली और बायाजीद जैसे अभारतीय फकीरों-दरवेशों के नाम, उनकी आध्यात्मिक दृष्टि तथा उनके अनेक वचन पारस भाग मे सकलित हैं। निश्चय ही इस सामग्री का मूल्य और महत्व अकल्पनीय है।

परन्तु इस अभारतीय नामावली से पारस भाग के अनेक लिपिको-सपादको की सकीर्ण मनोवृत्ति को ठेस पहुचती है। वे गुड तो खाना चाहते है पर गुलगुलो से परहेज करते हैं। फलत अनेक अभारतीय व्यक्तियों के नाम तो छोड दिए जाते हैं। परन्तु उनके विचार ग्रहण कर लिए जाते हैं। एक दृष्टि-विशेष के आधार पर किए गए इस सोद्देश्य पाठ लोप के कुछ उदाहरण इस प्रकार दिए जा सकते हैं

मिहतर ईसा

ईसामसीह के अनेक वचन तथा उनके जीवन की अनेक घटनाए पारस भाग मे सकलित हैं। एक अवतरण इस प्रकार है

'इकि बारि मिहतरि ईसा पायरि कउ सिरि तले राखि करि सोई रहिआ था। (पारस भाग क प्रति पत्र 374)

यह अवतरण ग प्रति मे इस प्रकार मिलता है

'एक बार एक सत जन वैराग्वान पाथर कउ सीस तले राखि करि सोइ रहा था। (पत्र 526)

इस प्रति में 'मिहतरि ईसा' के स्थान पर 'इक संतजन वैरागवान' पद रखा गया है ।

पारस भाग (लखनऊ संस्करण) के प्रस्तुत अवतरण मे भी ईसा का नाम छोड़ दिया गया है :

'एक महापुरुप पत्थर को शीश तले रखकर सोय रहे थे ।' (पृष्ठ 387)
पारसमणि में इस वाक्य को इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—

'एक समय कोई महापुरुप अपने सिर के नीचे पत्थर लगाए सो रहे थे ।' (पृष्ठ 583)

ईसा का उल्लेख एक अन्य स्थान पर इस प्रकार हुआ है :

'मिहतरि ईसे ने मारग विपे एक वार किसी कउ सूता देखिआ था । तब उस कउं कहत भइआ जो उठि करि भगवत का भजनु करि । उस पुरुप ने कहा—जो मैंने माइआ (माया) तउ माइआधारीअहू कउं सउंपि दीनी है । तब मिहतरि ईसे ने कहा जो तेने ऐसे कीआ है । तउ अचित होकरि सोइ रहु ।' (पारस भाग क प्रति पत्र 45)

ख, ग प्रतियों के प्रस्तुत अवतरण में 'मिहतर ईसे' के स्थान पर 'इक संतजन' शब्द रखा गया है । परन्तु पारस भाग (लखनऊ संस्करण : पृष्ठ 460) और पारसमणि में 'ईसा महापुरुप' 'महापुरुप ईसा' शब्दों का क्रमशः प्रयोग इसी अवतरण में हुआ है । (पृष्ठ 686)

क्षेपक तथा सोद्देश्य पाठ-लोप की समस्या पांडुलिपियों की एक गंभीर समस्या है । इस समस्या का समाधान 'पाठ' के तुलनात्मक अनुसंधान से ही किया जा सकता है, किसी अनियमित संशोधन से नहीं । पारस भाग का पाठ संबंधी विवेचन यथास्थान किया जाएगा ।

पाद-टिप्पणियां

1. अमरकोश, हलायुध कोश तथा वायस्पत्यम् आदि कोश ग्रंथ ।
   डा० राजवली पाण्डेय ने कुछ प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा अन्य स्रोतों के आधार पर लिखा है "लेखक शब्द लिपिक (कॉपिस्ट) तथा उत्कीर्णक (अक्षर उकेरने वाले व्यक्ति) के लिए भी प्रयुक्त होता था"
   देखिए : इंडियन पेलियोग्रैफी : पृष्ठ 90
2. Indian Textual criticism (पृष्ठ :9)
   फारसी का 'दिवीर' शब्द दिविरपति से संबंधित जान पड़ता है ।
3. विस्तार के लिए देखिए : डा० पांडुरंग वामन काणे कृत: हिस्ट्री ऑफ धर्म-

शास्त्र भाग 2 पृष्ठ 50–55

4 India as known to Panini (पृष्ठ 311)

5 देखिए इंडियन पैलियोग्रैफी पृष्ठ 10 25
राजशेखर ने भी लिपिक के अर्थ में लेखक शब्द का प्रयोग किया है। राजशेखर के अनुसार 'कवि की रचनाओं की प्रतिलिपि तैयार करने वाला लेखक सभी भाषाओं में कुशल, सुन्दर लिखने वाला, भिन्न-भिन्न प्रकार की लिपियों का *ज्ञाता होना चाहिए'*
काव्यमीमांसा अनुवादक प० केदारनाथ शर्मा सारस्वत, पृष्ठ 124–125

5 इंडियन पैलियोग्रैफी पृष्ठ 10–25 आदि

6 पद्यात्मक रचनाओं की बहुलता के कारण कवि तथा काव्य ये दोनों शब्द समग्र साहित्यिक रचनाधर्मिता का बोध कराते आ रहे हैं। नाटक, गद्य-कथा को काव्य तथा इनके रचयिताओं को कवि पद से अभिहित करन की परम्परा भी बहुत प्राचीन है।

लिपिक भी कवि हो सकता है। बहुत से लिपिकों ने अपने बनाए पद्य पुष्पिकाओं में तो रखे ही हैं, मूल पाठ म प्रक्षेपक भी खूब मिलाए हैं। तात्पर्य यह है कि लिपिक मूल रचयिता अथवा कवि से भिन्न व्यक्ति है तथा यह भिन्नता न केवल कर्म के स्तर पर ही है, वरन् ये दोनों शब्द मानसिकता की दो विभिन्न कोटियों के साथ भी सम्बद्ध हैं।

7 लिपिक के लिए एक प्राचीन पर्याय 'कायस्थ' भी है। 'काय' शब्द का एक अर्थ भवन है। आधुनिक सचिवालय का बोधक भी यही शब्द रहा है। काय (सचिवालय) में स्थित (उपस्थित या विद्यमान) व्यक्ति कायस्थ कहा जाने लगा। ज्यों ज्यों लिपिकर्म की आवश्यकताएं बढने लगी त्या त्यों इस कर्म को व्यवसाय के रूप में अपनाने वाले लोगों का एक पृथक् वर्ग भी तैयार होने लगा। इस वर्ग के लोगों की बढती संख्या, विशेषत इस वर्ग की पहुंच को देखते हुए वर्ण व्यवस्था के भीतर इस वर्ग को 'कायस्थ कहा जाने लगा। हिमाचल प्रदेश के सचिवालय (शिमला) में कायस्थ शब्द क्लर्क, के लिए प्रचलित रहा भी है। परन्तु आज इस शब्द को क्लर्क के अर्थ में प्रचलित करना कदाचित् सम्भव नहीं है।

8 मत्स्य, पद्म तथा गरुड पुराण, शार्ङ्गधर पद्धति, पत्र कौमुदी, आदि प्राचीन *ग्रंथो में लिपिक के गुणों तथा उसकी अर्हताओं का विस्तृत विवरण मिलता है।* विस्तार के लिए देखिए 'शब्द कल्पद्रुम' (प्रविष्टि पुस्तक) तथा 'वाचस्पत्यम्' (प्रविष्टियां लिपि, लेखक, पुस्तक आदि)

9 डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार 'सख्याक' (एकाउटेंट) तथा लेखक (क्लर्क) को राज्य के कर्मचारियों में पर्याप्त वरीयता प्राप्त थी। लेखक का वेतनमान मन्त्रियों से कम तथा अन्य अधिकारियों के बराबर 'पाचसौ

कार्षापण" वार्षिक होता था। विभिन्न अवसरों पर लिपिक विशेष रूप से पुरस्कृत-सम्मानित होते थे। विवरण के लिए देखिए :
(क) बूहलर कृत इंडियन पैलियोग्रैफी : पृष्ठ 63-65
तथा
(ख) अहमद हसन दानी: इंडियन पलियोग्रैफी : 21, 25 आदि
(ग) राजशेखर कृत काव्य मीमांसा-अध्याय 10

10. मूल्य चुकाकर लिपिक द्वारा लिखवाए गए 'धर्मशास्त्र' का दान करने से दाता को 'देवत्व' तथा 'कल्पत्रय' पर्यंत स्वर्ग लाभ आदि की 'फलश्रुति' पुराणों मे मिलती है।
देखिए · प्रो० मूलराज जैन कृत 'भारतीय सम्पादन शास्त्र' पृष्ठ 6-7

11. पर्शो-अरेबिक-लिपि (उर्दू) मे उपलब्ध पदमावत आदि ग्रथों की प्रतियों मे अक्षर साम्य के कारण पाठ-वैषम्य के विकट सकट से अनुसधाताओं को प्रायः जूझना पडा है। 'त' और 'ट' के लिए एक ही अक्षर 'ते', 'क' और 'ग' के लिए सिर्फ 'काफ' का होना इस (उर्दू) लिपि मे लिखे 'पाठ' को पर्याप्त दुरूह बना देता है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त की यह मान्यता बहुत महत्वपूर्ण है कि 'फारसी अरबी लिपियों और लेखन शैलियों की अपूर्णता वे हमारी बोल-चाल की भाषाओं को लिपिबद्ध करने के लिए पर्याप्त नही होती है'
(चादायन : भूमिका : पृष्ठ 60)
'मिरगावती' के सम्बन्ध मे विचार करते समय डा०परमेश्वरी लाल गुप्त ने भी इसी मान्यता की पुष्टि की है।
(मिरगावती : पृष्ठ 99)

12. भवभूति कृत 'महावीरचरितम्। सम्पादक : डॉ० टोडरमल 1928 पृष्ठ 4-5 (भूमिका)

13. महाभारत 'आदिपर्व 'क' प्रति : संपादक : डॉ० सुखथंकर 'प्रोलोग' पृष्ठ 16, 17, 21

14. 'भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखन कला' पृष्ठ 78-79 आदि।

15 विवरण के लिए देखिए, गौरीशंकर हीराचंद ओझा कृत 'प्राचीन भारतीय लिपि माला' पृष्ठ 21, 25 आदि

16. विस्तार के लिए देखिए : डॉ० गोविन्दनाथ राजगुरु कृत 'गुरुमुखी लिपि मे हिन्दी गद्य' : पृष्ठ 67

17. डा० हीरालाल महेश्वरी कृत 'जांभोजी: विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य 'पृष्ठ 41-42

18. यह पत्र डा० सत्येन्द्र ने 'पांडुलिपि विज्ञान' में फोटो-कापी के रूप में उद्धृत किया है। पृष्ठ 63। इस पत्र की प्रतिकृति परिशिष्ट मे दी गई है।

19. विवरण के लिए देखिए : डॉ० गोविन्दनाथ राजगुरु कृत: गुरुमुखी लिपि मे हिन्दी गद्य पृष्ठ : 217-226

20. विवरण के लिए देखिए वही—पृष्ठ 53-77
तथा
पं० रामचंद्र शुक्ल कृत हिन्दी साहित्य का इतिहास. पृष्ठ 412

21 पारस भाग, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ। पाचवा सस्करण 1914 पृष्ठ 383

22 पारस भाग (सभवत लखनऊ सस्करण) के आधार पर स्वामी सनातन देव न 'पारसमणि' नाम से 'पारस भाग' को सपादित तथा प्रकाशित किया। सन् 1962। 'मन्मथ' के स्थान पर 'कामासक्त' पाठ इसी मे रखा है पृष्ठ 579

23 देखिए पद्मावत सपादक डा० वासुदेव शरण अग्रवाल प्राक्कथन पृष्ठ 26 *डा० माताप्रसाद गुप्त तथा प० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा स्वीकृत पाठ* निराधार कल्पना पर ही आधारित है।

24 *कुतुबन कृत मृगावती सपादक श्री शिव गोपाल मिश्र। पृष्ठ 3 तथा 204* किसी मध्यकालीन कृति या उसकी प्रतिलिपि मे 'मृग' का मिलना आश्चर्यजनक है। 'मिरग' लोक-उच्चारण, तथा 'कैथी' आदि लोक-लिपियो के भी अधिक अनुकूल है।

25 मिरगावती सपादक डा० परमेश्वरी लाल गुप्त/पृष्ठ 89-90

26 डा० कात्रे के अनुसार सत ज्ञानेश्वर कृत ज्ञानेश्वरी (भगवद्गीता की मराठी टीका रचनाकाल 1290 ई) का पाठ 'एकनाथ' तक आते आते बहुत भ्रष्ट हो चुका था। एकनाथ ने कई पाडुलिपियो की सहायता से मूल पाठ का अनुसधान किया (1584ई) 'इडियन टैक्स्चुअल क्रिटिसिज़्म' पृष्ठ 27
महाभारत के एक टीकाकार 'नीलकण्ठ' ने भी अपनी टीका लिखने से पूर्व महाभारत की कुछ पाण्डुलिपियो का तुलनात्मक अध्ययन कर प्रामाणिक पाठ की खोज की थी।
डा० सुखथकर प्रोलोग पृष्ठ 16-20

27 इस प्रवृत्ति के अनेक उदाहरण डा० *गोविन्दनाथ राजगुरु कृत 'गुरमुखी लिपि मे* हिन्दी गद्य' मे देखे जा सकते है पृष्ठ 235-338

28 विस्तार के लिए देखिए राजशेखर कृत '*काव्य मीमासा*' सपादक केदारनाथ सारस्वत पृष्ठ 132

29 हरिवश पुराण भूमिका पृष्ठ 35

30 'गीता महात्तम भाषा, की तीन प्रतियो का विवरण डा० गोविन्द नाथ राजगुरु कृत '*गुरमुखी लिपि मे हिन्दी गद्य' मे दिया गया है। पत्र 158-59*

31 विवरण के लिए देखिए डा० गोविन्दनाथ राजगुरु कृत 'गुरमुखी लिपि मे *हिन्दी गद्य' पृष्ठ 271*

32 *योगवासिष्ठ भाषा सबधी* विवरण के लिए देखिए, वही, वही। पृष्ठ 53-77,

अभ्यास : 4

प्रति संकलन : वंश वृक्ष

(क) प्रति संकलन, महाभारत, मानस, संदेश रासक, भविस्सतत्त कहा, पउमचरिउ, पृथ्वीराज रासो, शिलालेख, विवेक।

(ख) वंश वृक्ष, ज्ञात से अज्ञात की ओर, महाभारतः संपादक प्रताप चन्द्र राय, महाभारत-वंश वृक्ष, स्पष्टीकरण, पंचतंत्र जटिल पद्धति, वृहत् कथा, तंत्राख्यायिका, दक्षिणी पंचतंत्र, पहलवी पंचतंत्र, हितोपदेश पंचतंत्र, कार्ल लैशमान, आदर्श प्रति, जान ड्राइडन, सर वाल्टर ग्रेग डा० माताप्रसाद गुप्त, सांख्यिकी।

पाद टिप्पणियां : 1—11

(क) प्रति संकलन

पाठ अनुशासन की प्रारम्भिक अपेक्षा है विचाराधीन ग्रंथ, लेख अथवा अभिलेख की उपलब्ध विभिन्न प्रतियों का संकलन। अनुभव से यह प्रमाणित हो चुका है कि किसी भी हस्तलिखित ग्रंथ या लेख आदि की प्रतिलिपि मूल प्रति से उत्तरोत्तर भिन्न होती जाती हैं। प्रतिलिपि की प्रतिलिपि तो मूल प्रति से आकार के अतिरिक्त प्रतिपाद्य के स्तर पर भी बहुत कुछ खो बैठती है, या फिर उसमें अनधिकृत परिवर्तन या परिवर्द्धन हो जाता है। उपलब्ध प्रतियों में पाठ-विकृति, अपपाठ, प्रक्षिप्त पाठ आदि को विधिवत् रेखांकित करना पाठ अनुशासन की मूलभूत समस्या है। इस समस्या का समाधान मूल पाठ अथवा मूल के संभावित निकटतम पाठ के पुनरुद्धार द्वारा किया जाता है। यहां यह स्वीकार

कर लेना पड़ेगा कि मूल पाठ का पुनरुद्धार चाहे *कितने ही प्रतिभाशाली विद्वान* द्वारा क्यो न किया जाए अथवा पूरी वैज्ञानिक दृष्टि, तलस्पर्शी मनीषा, जीवन व्यापी अनुभव तथा इस क्षेत्र की सार्वभौम अपेक्षाओ के अनुरूप ही कार्य क्यो न किया जाए, अन्तत अनुसधाता के विभिन्न निर्णयो तथा उसकी नितात वैयक्तिक सोच की सीमा मे ही यह कार्य सम्पन्न होता है। फलत इस सम्बध मे मतभेद के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है।

मानव के इतिहास मे जिन रचनाओ ने मानवी चिंतन तथा जीवन धारा *को सर्वाधिक प्रभावित किया*, उन रचनाओ के मूल-पाठ को लेकर विद्वानो मे सार्वभौम स्तर पर तीव्र मतभेद विद्यमान हैं। रामायण, महाभारत, बाईबल जेंद-अवेस्ता, कुरान आदि धर्म ग्रथो के उपलब्ध पाठ के कई अश विवाद के घेरे मे हैं। होमर की *'इलिअड-ओडिसी' आदि कृतियो*, शेक्सपीयर के *नाटको*, विद्यापति की कीर्तिलता, चद के रासो, जायसी के पद्मावत, तुलसी के मानस आदि अनेक लोकप्रिय ग्रथो का पाठ अनेक स्थलो पर सदिग्ध चला आ रहा है।

वस्तुत प्रत्येक लोकप्रिय रचना लिपिक परम्परा द्वारा लिपित तथा प्रति-*लिपित होती रहती है। प्रत्येक लिपिक बहुत प्रयत्न करने पर भी-अपनी आदर्श* अथवा मूल प्रति को यथावत् प्रतिलिपित नही कर पाता। फलस्वरूप प्रत्येक प्रतिलिपि मूल से निरतर दूर हटती जाती है। पुस्तको का इतिहास सार्वभौम स्तर पर अपने आपको इसी प्रकार दुहराता आ रहा है। लिपिक-प्रतिलिपिक परम्परा के प्रकोप से 'जय' काव्य कब 'भारत' बना और कब उसने 'महाभारत' का रूप धारण किया, यह कहना कठिन है। सच तो यह है कि भारत की प्राय *प्राचीन और मध्यकालीन रचनाओ के पाठ को मूल या प्रामाणिक रूप मे प्रस्तुत* करने के प्रयास विगत दो अढाई शताब्दियो से हो रहे हैं। पर पाठ सम्बधी प्राय प्रत्येक निर्णय सर्वमान्य तो क्या बहुमान्य भी नही हो सका। ऐसी स्थिति मे पाठ उद्धार का कार्य किसी रचना की विभिन्न प्रतियो के सकलन के साथ जुड जाता है। इन प्रतियो के लिपिक मूल रचना से समय की जितनी दूरी पर हैं, उनके द्वारा प्रतिलिपित रचना की शुद्धता तथा प्रामाणिकता उतनी ही सन्देहग्रस्त हो जाती है। इतना ही नही मूल लेखक भी यदि अपनी रचना को समाप्त कर कालान्तर मे देखे-परखे तो उसे भी अपनी रचना मे यत्र-तत्र परिवर्तन-परिवर्धन की आवश्यकता प्रतीत होती है।

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि प्रत्येक जागरूक लेखक अपने लेखन को कई *दृष्टियो से समय-समय पर सजाता सवारता* रहता है।[1] सजाने-सवारने के इस उपक्रम मे आवश्यक परिवर्तन-परिवर्धन की अनिवार्यता को नकारा नही जा सकता। मानस की मूल प्रति तैयार कर चुकने पर तुलसी ने एक महत्वपूर्ण प्रसग बालकाण्ड मे स्वय जोड दिया था। इसी प्रसग मे मानस के रचनाकाल

(संवत् 1631) को अपेक्षित विस्तार दिया गया था। परन्तु असावधानता वश दिन तथा तिथि विषयक में विवरण गणना के स्तर त्रुटिग्रस्त हो गए। साथ ही वर्तमानकालिक सर्वनामों के स्थान पर भी भूतकालिक सर्वनाम आ गए।[2]

तात्पर्य यह है कि मूल रचना मे सशोधन-परिवर्तन-परिवर्धन कितने और कब संभावित हैं, इनकी कोई इयत्ता या समय सीमा निश्चित नही की जा सकती। संशोधन-परिवर्तन-परिवर्धन की अनेक परतों को कुरेद-कुरेद कर, खुर्च खुर्च कर, मूल पाठ का उद्धार किया जा सकता है और पाठ के इस उद्धार कार्य मे रचना की अनेक प्रतियों का संग्रह करना अथवा उनसे आवश्यक तथ्य संकलित करना पाठ अनुशासन के लिए अनिवार्य हो जाता है।

महाभारत जैसी अत्यन्त लोकप्रिय रचनाओं की भिन्न-भिन्न लिपिकों-प्रतिलिपिकों द्वारा नागरी, शारदा, ब्राह्मी, ग्रन्थम्, वंगला, नेवारी आदि अनेक लिपियों में प्रतिलिपित प्रतियां मिली हैं। अपभ्रंश की 'संदेश रासक', 'भाविसत्त-कहा' तथा 'पउमचरिउ' जैसी रचनाओं की भी एक से अधिक प्रतियां मिली हैं। इसी प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' तथा 'पद्मावती' की भी अनेक प्रतियां खोज ली गई हैं। इन प्रतियो की सहायता से मूल (शुद्ध) पाठ निर्धारण के अनेक प्रयत्न किए जा चुके हैं और किए भी जा रहे हैं। प्राचीनतम प्रतियों के इस संकलन से तुलनात्मक पाठ अनुसंधान की प्रक्रिया द्वारा—मूल (शुद्ध) पाठ को रेखांकित किया जा सकता है, अनपेक्षित तथा प्रक्षिप्त अंशो की पहचान तथा अज्ञान एवं असावधानी कारण अथवा जानबूझ कर किए गए 'पाठलोप' की जाच पड़ताल की जा सकती है। स्पष्ट है कि प्राचीन से प्राचीन प्रतियों का संकलन पाठ अनुशासन की पूर्व पीठिका है।

क्या एक ही प्रति पाठ-अनुशासन की मूलभूत अपेक्षाओं की पूर्ति कर सकती है? इस प्रश्न का औचित्य इस तथ्य से प्रकट होता है कि सभी रचनाओं को महाभारत जैसी लोकप्रियता और इसी कारण अत्यन्त विकृत रूप प्राप्त करने का सौभाग्य (?) नही मिला करता। प्राय: किसी रचना की एक ही प्रति पहले पहल मिला करती है। अनुसंधाता अपने अध्यवसाय से अन्य प्रतियों का संधान किया करता है। कई वार किसी रचना की एक ही प्रति उपलब्ध होती है और अनुसंधाता इसी एक प्रति की सहायता से 'मूल पाठ' का निर्णय करता है। सम्राट अशोक की धर्म लिपियों की एक-एक प्रतिलिपि ही मिली थी। कालसी (देहरादून) से लेकर मानसेहरा (पाकिस्तान के पश्चिमी सीमा प्रांत) तक अशोक के शिलालेखों की केवल एक-एक प्रति ही मिल सकती थी और मिली भी। ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपि में ये शिलालेख लिखे गए थे और इनमें प्राकृत (पाली) भाषा प्रयुक्त हुई थी। भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं ने इन शिलालेखों को एक-एक

प्रति की सहायता से ही सम्पादित-प्रकाशित किया। चीनी-तुर्किस्तान, भूटान, तिब्बत, लद्दाख से प्राप्त पाण्डुलिपियो तथा शिलालेखो का भी सम्पादन-प्रकाशन एक-एक प्रति की सहायता से किया गया था। प्रो० लूडर्स ने कुछ बौद्ध नाटको का सम्पादन भी एक ही उपलब्ध प्रति से किया था।[3]

वस्तुत किसी रचना की एक से अधिक प्रतियो की उपलब्धि जहा सबधित रचना की लोकप्रियता का सकेत देती है, वहा रचना के मूल रूप के विकृत हो जाने की पूरी सम्भावना भी इसी उपलब्धि मे निहित रहती है। इसके विपरीत एक प्रति वाली रचनाओ का 'पाठ' इसलिए दुष्कर होता है कि किसी अन्य प्रति की सहायता से इस पाठ की शुद्धता-अशुद्धता का निर्णय नही किया जा सकता। पूरी रचना को गम्भीरता से और बार-बार पढकर रचनाकार की भाषा-शैली, मुहावरे, शब्द-प्रयोग, वाक्य-विन्यास तथा उसकी प्रिय शब्दावली की पहचान करना यहा अधिक आवश्यक हो जाता है।

विवेक

प्रति सकलन सम्बन्धी इस प्रारभिक वक्तव्य को समाप्त करने से पूर्व यह कहना आवश्यक जान पडता है कि रचना की प्रतिया अनेक हो या फिर उसकी एक ही प्रति उपलब्ध हो, मूल (शुद्ध) पाठ सम्बन्धी निर्णय अतत अनुसन्धाता के अपने अनुभव-पुष्ट विवेक तथा अपनी नैसर्गिक प्रतिभा (Sixth sense) के ऊपर ही निर्भर रहता है। फलत अनुसधाता के विवेक को ही पाठ अनुशासन मे सर्वोपरि माना जाता है।

(ख) वश-वृक्ष

किसी रचना की विभिन्न पाडुलिपियो का आतरिक सबध स्थापित करने के लिए वश-वृक्ष-पद्धति अपनाई जाती है। विगत दो-अढाई सौ वर्षों से यह पद्धति सार्वभौम स्तर पर-पाठ अनुशासन के क्षेत्र मे- अपनाई जा रही है। यह पद्धति जितनी अधिक प्रचलित है, उतनी ही विवादग्रस्त भी है। वश-वृक्ष सबधी विभिन्न दृष्टियो विधियों के माध्यम से उपलब्ध पाडुलिपि सबधी निष्कर्ष एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न-कभी कभी एक दूसरे के विरोधी रूप मे भी-मिलते हैं। परन्तु व्यावहारिक स्तर पर इन विविध दृष्टियो-विधियों का एकमात्र उद्देश्य किसी रचना का शुद्धतम (मूल) पाठ निर्दिष्ट करना ही है। वस्तुत किसी रचना के उपलब्ध पाठ की प्राचीनतर प्रतियो के आधार पर तुलना तथा अनपेक्षित तथा अनधिकृत सामग्री को रेखाकित करते हुए मूल पाठ या मूल के निकटतम पाठ का अनुसधान करना इस वश-वृक्ष-पद्धति का उद्देश्य है।

ज्ञात से अज्ञात की ओर

किसी रचना की उत्तरोत्तर लिपित-प्रतिलिपित प्रतियां अथवा विभिन्न लिपियों अनेक क्षेत्रों (विदेशों में भी) उपलब्ध एकाधिक वाचनाओं के आधार पर पाठ-विकृतियों, पाठ-लोप, अधिक पाठ तथा अपपाठ की नाना स्थितियों की संतोषजनक एवं तर्कसंगत व्याख्या करना वंश-वृक्ष-पद्धति का उद्देश्य है।

वस्तुत: ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ने का यह उपक्रम है। संसार भर में अनेक प्राचीन रचनाओं की विभिन्न प्रतियों-वाचनाओं के शुद्धतम पाठ निर्धारित करने में इस पद्धति से बहुत सहायता मिली है। इसके साथ ही विभिन्न प्रतियों वाचनाओं के इस तुलनात्मक अध्ययन से पाठ-अनुशासन को जहां कुछ नव आयाम मिले हैं वहां लिपिकों-प्रतिलिपिकों के मनोविज्ञान, इस वर्ग की कुछ मानसिक ग्रंथियों तथा इस वर्ग के बौद्धिक आग्रहों के बीहड़ वन में भी इस पद्धति की सहायता से प्रवेश पाने में सफलता मिली है।

पाठ अनुशासन के क्षेत्र में काम करने वालों का यह सार्वभौम अनुभव रहा है कि प्रत्येक लिपिक वह चाहे बौद्धिकता के किसी भी स्तर पर सांस क्यों न लेता हो —अन्तत: अपने निजी चिन्तन-मनन-विश्लेषण से परिचालित हुआ करता है। उसके अपने आग्रह तथा उसकी अपनी वर्जनाएं, अर्थात् उसका मानसिक परिवेश, उसके समूचे लिपि कर्म को गंभीर रूप से प्रभावित करता है।

महाभारत : उत्तरी तथा दक्षिणी वाचनाएं

चूंकि लिपिक मात्र एक मशीन नहीं है, इसीलिए उसका लिपि-कर्म कहीं न कहीं 'मक्खी पर मक्खी मारने' की लीक से हटने को बाध्य हो ही जाता है और इस प्रकार उसकी बाध्यता उसकी प्रतिलिपि कोमूल (या आदर्श) प्रति से कई अंशो में पर्याप्त भिन्न रूप दे देती है। इस संबंध में एक रोचक घटना महाभारत के सम्पादन को लेकर प्रसिद्ध है। महाभारत (उत्तरी वाचना) के प्रथम संपादक (प्रकाशक) थे प्रताप चन्द्र राय। इन्होंने 'दातव्य कार्यालय, कलकत्ता, से महाभारत प्रकाशित किया (सन 1893-1896)। राय 'मोशाय' ने 18 पाण्डुलिपियों की सहायता से यह संस्करण तैयार किया था। परन्तु दक्षिण के एक विद्वान श्रीनिवास शास्त्रीयाल ने इस संस्करण की कटु आलोचना करते हुए लिखा है कि 'राय मोशाय' का यह सस्करण भ्रष्ट (Corrupt) संस्करण है। क्योंकि इसमें से वे अंश-अवतरण जान बूझ कर

निकाल दिए गए हैं, जिनमे दक्षिण के आचार्य रामानुज विशेपत उनके 'विशिष्टाद्वैत' का समर्थन उपलब्ध है।

इस आक्षेप का उत्तर देते हुए राय 'मोशाय' ने लिखा कि महाभारत मे प्रक्षिप्त-अश बहुत अधिक है। महाभारत की उत्तरी तथा दक्षिणी वाचनाओ मे आकाश-पाताल का अतर है। महाभारत की उत्तरी वाचनाओ मे 18 पर्व हैं तो दक्षिणी वाचनाओं मे 24 पर्व हैं। फलत महाभारत का ऐसा सस्करण सपादित प्रकाशित नही किया जा सकता जिसमे इन दोनो वाचनाओ का पूर्ण समावेश हो। राय मोशाय ने यह सूचना भी दी कि 45 वर्ष पूर्व रॉयल एशियाटिक सोसायटी ने भी विभिन्न पाडुलिपियो की सहायता से महाभारत का आशिक सम्पादन किया था। राय मोशाय के अनुसार इस सस्करण मे भी दक्षिणी वाचनाओ को स्थान नही मिला था।[4]

'पारस भाग' का पाठ लोप सबधी विवरण पीछे दिया जा चुका है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि लिपिकर्म मे लिपिक के वैयक्तिक आग्रहो के साथ-साथ उसकी बौद्धिक अक्षमताए भी यत्र तत्र उजागर होती चलती हैं।

इस प्रकार एक रचना-लिपि प्रतिलिपि के कारण-निरन्तर परिवर्तित होती जाती है। डा० कार्ल्ने ने अनुमान किया है कि प्रत्येक लिपिक अपनी प्रतिलिपि तैयार करते समय अपनी मूल (आदश) प्रति का 93% भाग ही यथावत् प्रस्तुत कर पाता है। मूल पाठ की क्षति या इसमे परिवर्तन-परिवर्धन का प्रतिशत-नक्ल-दर-नक्ल-इसी मात्रा मे बढता चला जाता है। किसी पाडुलिपि का चौथा प्रतिलिपिक मूल पाठ का 12% अश या तो मिटा देता है या फिर उसमे अनपेक्षित परिवर्तन-परिवर्धन कर डालता है।

तात्पर्य यह कि किसी लोकप्रिय रचना की प्रत्येक प्रतिलिपि अपनी आदश प्रति से पर्याप्त भिन्न होती जाती है। हा, वे रचनाए जिन्हें लोकप्रियता का व्यापक आधार न मिला हो, लिपिको प्रतिलिपिको के इस अनवरत-परिवर्तन-परिवर्धन के प्रकोप से प्राय बची रहती है।

"महाभारत वश वृक्ष डा० सुखथकर ने महाभारत की उपलब्धि पाडुलिपियों को 'वाचना' के आधार पर दो मुख्य वर्गों मे विभाजित किया उत्तरी वाचनाए तथा दक्षिणी वाचनाए। उत्तरी वाचनाओं को शारदा, देवनागरी, बगला आदि लिपियो के आधार पर भिन्न-भिन्न वर्गों मे विभाजित किया गया। इसी प्रकार दक्षिणी वाचनाओ के ग्रथम, तेलुगू, तमिल, मलयालम आदि लिपियों के आधार पर भिन्न-भिन्न वर्ग बनाए गये।

इन उत्तरी तथा दक्षिणी वाचनाओ को लिपि-भेद के अतिरिक्त 'पाठ

अनुशासन' की दृष्टि से भी भिन्न-भिन्न उपवर्गों में विभाजित किया गया। इस प्रकार महाभारत की वर्गीकृत सामग्री लगभग 70 विभिन्न पाडुलिपियों की सहायता से अनेक पाठांतरों के साथ सम्पादित की गई। निश्चय ही इस कोटि का प्रयास 'पाठ अनुशासन' के क्षेत्र में अभूतपूर्व है।

भारत (महाभारत) के शुद्धतम (मूल) पाठ-निर्धारण के लिए जिन विभिन्न पांडुलिपियों के पाठ पर विचार किया गया, उन पाडुलिपियों का वंश-वृक्ष डॉ० सुखथंकर ने इस प्रकार बनाया है :
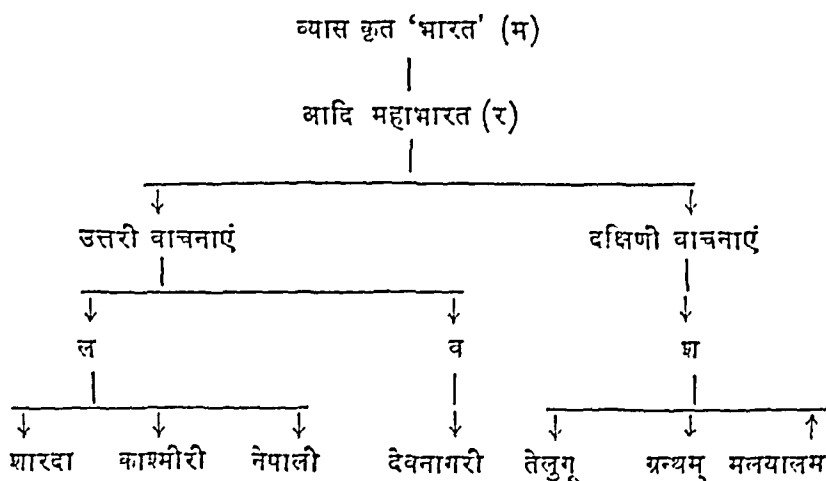
स्पष्टीकरण : डा० सुखथंकर की मान्यता है कि व्यासकृत 'भारत' ने ही धीरे-धीरे 'महाभारत' का रूप धारण किया। भारत तथा महाभारत की मूल प्रतियां आज उपलब्ध नहीं हैं। इन मूल एवं अनुपलब्ध प्रतियों को 'य' तथा 'र' वर्गों में रखा गया।

इन दोनों मूल प्रतियों का पाठ दो वाचनाओं में उपलब्ध है, उत्तरी तथा दक्षिणी वाचनाएँ (Recencions)। इन दोनों वाचनाओं की मूल प्रतियां भी आज अनुपलब्ध हैं। इन्हें 'ल' तथा 'व' वर्गों में रखा गया है। दक्षिणी वाचनाओं को 'श' वर्ग में रखा गया है। उत्तरी वाचना में शारदा, नेपाली, मैथिली बंगला आदि लिपियों तथा दक्षिणी वाचना में तेलुगू, ग्रन्थम्, मलयालम आदि लिपियों में प्रतिलिपित महाभारत आज प्रकाशित तथा अप्रकाशित रूप में विद्यमान है।

डा० सुखथंकर का विश्वास है कि शारदा आदि लिपियों में उपलब्ध पाठ के तुलनात्मक अध्ययन से उत्तरी वाचनाओं की मूल (आदर्श) प्रति का पाठ निर्धारित किया जा सकता है। इसी प्रकार तेलुगू आदि लिपियों में उपलब्ध

पाठ की तुलनात्मक समीक्षा से दक्षिणी पाठ का मूल रूप प्राप्त किया जा सकता है। इन दोनों वाचनाओ के तुलनात्मक अध्ययन को आधार बना कर 'आदि महाभारत' के पाठ का पुन निर्माण किया जा सकता है।

जटिल पद्धति

वश-वृक्ष पद्धति का एक जटिल (सकीर्ण) निदर्शन प्रो० एजटन ने 'पचतत्र रिकन्स्ट्रक्टेड मे दिया है[5]। पचतत्र भारत की उन अमर रचनाओ मे से है, जिन रचनाओ ने सपूण भारत तथा भारत से बाहर अनेक देशों मे विभिन्न वाचनाओं, रूपातरो तथा अनुवादो के माध्यम से अपूर्व लोकप्रियता अर्जित की है। पचतत्र की देश-विदेश की इन यात्राओ को रेखांकित करते हुए प्रो० एजर्टन ने पचतत्र के मूल रूप के पुन निर्माण की सभावना को इस वश-वृक्ष द्वारा प्रतिपादित किया है —
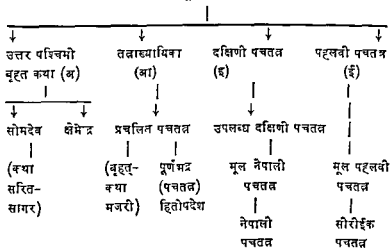
स्पष्टीकरण

प्रो० एजर्टन की मान्यता है कि पचतत्र की मूलत चार वाचनाए प्रचलित रही हैं, 1, वृहत कथा, 2 तत्राख्यायिका, 3 दक्षिणी पचतत्र तथा 4 पहलवी पचतत्र।

मूल पचतत्र की इन वाचनाओं की उत्तराधिकारिणी ये चार परपराए आज उपलब्ध हैं, कथा सरित् सागर, वृहत कथा मजरी, उत्तरी तथा दक्षिणी पचतत्र। बृहत् कथा तथा उत्तरी पचतत्र की परपरा का समन्वित (सकीर्ण)

रूप है, वहत कथा मंजरी। पूर्णभद्र कृत पंचतंत्र (हितोपदेश) उत्तरी पंचतंत्र के आधार पर तैयार किया गया है। दक्षिणी पंचतंत्र से नेपाली पंचतंत्र की आज अनुपलव्ध (मूल) प्रति तैयार की गई और इसके आधार पर नेपाली पंचतंत्र का वर्तमान रूप निर्मित हुआ।

पंचतंत्र के विदेशी अनुवादों में पहलवी (प्राचीन फारसी) तथा सीरीईक अनुवाद कदाचित् सर्वप्रथम है। इसके अनंतर पचतंत्र की कथाएं संसार की अनेक भाषाओं में अनूदित हुई। पंचतंत्र के वंश-वृक्ष की इन विभिन्न शाखाओं के आधार पर पंचतंत्र के मूल (पाठ) तक पहुचने का यह प्रशसनीय प्रयास कहा जा सकता है। प्रो० सुखथंकर तथा प्रो० एजर्टन ने अपनी वश-वृक्ष-पद्धति में रोमन अक्षरो तथा ग्रीक सकेतो का प्रयोग किया है। इनके स्थान पर नागरी अक्षरों को प्रयुक्त करने का मोह छोड पाना इन पक्तियो के लेखक के लिए सम्भव नही है।

कार्ल लैशमान :

इस शताब्दी के प्रारंभिक वर्षो में कार्ल लैशमान ने पाठ-अनुशासन संवंधी यूरोपी-चिंतन तथा पांडुलिपियों के वंश-वृक्ष संवंधी पश्चिमी संकल्प को संसार के समक्ष प्रस्तुत किया।[6] इस संकल्प के मूल में पाडुलिपियों के उत्तरोत्तर परिवर्तित होने की प्रक्रिया को रेखांकित करने का भाव था। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप कुछ प्रतिलिपियां-पाठ की दृष्टि से-समान तथा कुछ असमान हो जाती है।

प्रो० लैशमान के अनुसार समान पाठ वाली प्रतियों को एक वर्ग तथा असमान पाठ वाली प्रतियों को दूसरे वर्ग में रखा जा सकता है। इन वर्गो को सुविधा के लिए क्रमश: 'ए' तथा 'वी' कहा जा सकता है।

आदर्श प्रति : (आर्च टाइप)

इन दोनों वर्गो की प्रतियां दो भिन्न-भिन्न अज्ञात या ज्ञात या अनुपलव्ध प्रतियों पर आधारित होती है। ये दोनो प्रतिया चूकि अपने अपने वर्ग की उत्तरवर्ती प्रतियों के लिए आदर्श प्रति का काम करती है, इसलिए इन्हें अपने अपने वर्ग की आदर्श प्रति कहा जाता है। इनके लिए x, y, z आदि रोमन अक्षर प्रयुक्त किए जाते है। भारतीय संदर्भ में इन्हें क्ष, त्र, ज्ञ आदि नाम दिए जा सकते हैं। इन समान तथा असमान प्रतियो के पाठ का विवेचन विश्लेषण इन प्रतियों की आदर्श प्रतियों के पाठ तक पहुंचने मे सहायक होता है। दोनों आदर्श प्रतियों के पाठ से शुद्धतम (मूल) पाठ की उपलव्धि हो सकती है।

वस्तुत: अज्ञात-अनुपलव्ध प्रतियों के सम्भावना मूलक अस्तित्व के आधार

पर शुद्धतम (मूल) पाठ की खोज करना जोखिम का काम है। यही कारण है कि वश-वृक्ष सबधी मकलन-विवेचन इसकी प्रक्रिया के सबध मे पर्याप्त मतभेद रहा करता है।

जॉन ड्राइडन (1573-1631 ई) अग्रेजी के प्रसिद्ध कवि जान ड्राइडन के पाठ का सम्पादन करते समय ग्रिअर्सन गाडनर तथा रैंडपाथ ने अपने-अपने सस्करणो मे वश वृक्ष को आधार बनाकर पाठातर सबधी भिन्न-भिन्न (परस्पर विरोधी, निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। इतना ही नही, इन सभी अनुसधाताओ ने एक दूसरे की प्रक्रिया-विशेषत इस प्रक्रिया से पुनर्निमित पाठ-को 'असतुलित भी सिद्ध किया है। जान ड्राइडन की कविता Epilogue to the Man of Mode[7] का उदाहरण इस सबध मे बहुत रोचक है। मात्र 32 पक्तियो की इस कविता की एक प्रति मुद्रित थी तथा इस प्रति का मुद्रण काल भी निश्चित था। इसे ए प्रति कहा गया। शेष तीनो उपलब्ध प्रतियो की पाडुलिपिया को बी, सी, डी का नाम दिए गए। इनका लिपिकाल 'ए प्रति के मुद्रण काल के आस पास ही कल्पित किया गया। पश्चिम की पाडुलिपियो मे लिपिकाल प्राय नही दिया जाता।

जॉन ड्राइडन का समस्त लेखन पाठ अनुशासन की दृष्टि से पर्याप्त त्रुटि-पूर्ण है। ये महाशय अपनी पाडुलिपिया सावधानी से तैयार नही करते थे और न ही उनके प्रूफ ध्यान से पढते थे। फलत उनकी सभी उपलब्ध रचनाए-प्रथम पाडुलिपि से लेकर मुद्रित प्रति तक-अनेक विवादो-मशयो के घेरे मे रही हैं। यहा तक की ड्राईडन द्वारा स्वय तैयार किए गए तथा उनकी मुद्रित रचनाओ मे उपलब्ध शुद्धिपत्र भी विश्वसनीय नहीं हैं। इस प्रकार की पाठ सामग्री का सम्पादन प्रकाशन किसी भी पाठ-अनुशासन के विशेषज्ञ के लिए एक चुनौती बन सकता था और वह सचमुच बना भी।

उपर्युक्त चारो (ए बी सी डी) प्रतियो को-दो प्रतियो के परस्पर पाठ साम्य तथा दो के परस्पर पाठ वैषम्य के आधार पर-इन पाच उपवर्गों में विभा-जित किया गया

1 ए बी सी डी—ए, बी उपवर्गों की प्रतिया पाठ दृष्टि से परस्पर समान पर सी-डी से भिन्न हैं। पाठ साम्य के तीन तथा पाठ-वैषम्य के दो स्थल निर्दिष्ट किए गए।

2 बी ए सी डी —ए सी डी प्रतिया परस्पर समान हैं। परन्तु बी प्रति असमान है। पाठ साम्य 3 स्थल, पाठ वैषम्य 1 स्थल

3. सी : ए.वी.डी.—ए.वी.डी. प्रतियां परस्पर समान तथा सी असमान। पाठ साम्य 4, पाठ वैषम्य : 4

4. डी : ए.वी.सी.—ए.वी.सी. प्रतियां समान, डी असमान पाठ। साम्य 5, पाठ वैषम्य : 3

5. ए : वी. : सी.डी.—ए वी प्रतियां परस्पर समान, सीअसमान डी,अंशत: ए.ए.वी. सी. से भिन्न। पाठ साम्य 2 पाठ वैषम्य : ।

तात्पर्य यह है कि सूक्ष्म से साम्य-वैषम्य को लक्षित कर किसी भी रचना की विभिन्न प्रतियों को विभिन्न उपवर्गो मे विभाजित किया जा सकता है।

सर वाल्टर ग्रेग सर वाल्टर ग्रेग की पद्धति के अनुसार जान ड्राइडन की इस कविता के विभिन्न प्रतियों मे उपलब्ध पाठ सम्बन्धी साम्य-वैषम्य को आधार वनाकर ये-उपवर्ग वनाए जा सकते है :—

1. $\frac{X}{AB}, \frac{Y}{XD}, \frac{Z}{YC}$ अर्थात ए. वी. प्रतियां 'एक्स' अनुपलब्ध प्रति पर, एक्स-डी प्रतियां 'वाई' अनुपलब्ध प्रति पर तथा वाई-सी प्रतियां जैट अनुपलब्ध प्रति पर आधारित है। संभावित प्रति संख्या : 9

2. $\frac{X}{AB}, \frac{Y}{XD}, \frac{Z}{YC}$ संभावित प्रति संख्या : 9

3. $\frac{X}{AB}, \frac{Y}{XC\,D}$ संभावित प्रति संख्या : 7

4. $\frac{X}{AB}, \frac{Y}{CD}, \frac{Z}{XY}$ संभावित प्रति संख्या : 9

5. $\frac{X}{CD}, \frac{Y}{XAB}$ संभावित प्रति संख्या : 7

6. $\frac{X}{CD}, \frac{Y}{XB}, \frac{Z}{YA}$ संभावित प्रति संख्या : 9

7. $\frac{X}{CD}, \frac{Y}{XA}, \frac{Z}{YB}$ संभावित प्रति संख्या : 9

8. $\frac{X}{AB}, \frac{Y}{XC}, \frac{Z}{YB}$ संभावित प्रति संख्या : 9

सर ग्रेग ने अपनी इस गणितीय पद्धति से किसी प्रचीन पाठ का उद्धार किया या

न्ही, इसका पता नही चलता। परतु पाठ-अनुशासन के क्षेत्र में गणित के आधार पर कल्पना का यह विलास कदाचित अद्वितीय ही कहा जाएगा।

इसके अतिरिक्त महाभारत, रामायण, रासो अथवा इलियड या ओडिसी जैसी बृहत् आकार की किसी प्राचीन रचना का पाठ सरग्रेग स्वय कैसे तैयार करते, यह बताना कठिन है। उपलब्ध 60-70 प्रतियो के आधार पर महाभारत का पाठ निश्चित करने मे पूना-सस्थान को 70 वर्ष लगे हैं। सर ग्रेग की पद्धति से इस कार्य मे कितना समय लगता और इतना समय लगा कर पूना-सस्थान के महाभारत को कितने भिन्न रूप मे प्रस्तुत किया जाता, इसका अनुमान करना भी कठिन है।

विभिन्न प्रतियो के साम्य या वैषम्य मूलक सबधों की जाच पडताल करने की यह विधि डा० माता प्रसादगुप्त द्वारा सुझाई गई है [9]
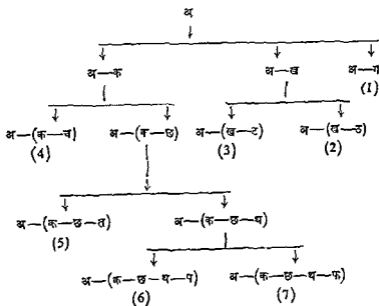
स्पष्टीकरण

कल्पना कीजिए कि मूल पाठ 'अ' था। उससे तीन प्रथम प्रतिलिपियां हुईं। एक मे कुछ विकृतियां आ गईं, जिन्हे 'क' कहा जाता है, इसी प्रकार दूसरी मे 'ख' विकृतिया आ गई, और तीसरी मे 'ग' विकृतिया आ गई। तीनों प्रतियां केवल मूल सबध से सम्बधित हैं, क्योंकि तीनों मे जो तत्व समान रूप से पाए जाते है वे मूल 'अ' के हैं, और जो विकृति तत्व या गौण तत्व पाए

जाते हैं वे तीनों के अपने और अलग-अलग 'क', 'ख' और 'ग' हैं। अब कल्पना कीजिए कि अ-क और अ-ख की दो-दो प्रतिलिपिया हुई, और इन प्रतिलिपियों में नवीन विकृति तत्व आए। अ-क की प्रतिलिपि मे 'च' विकृतिया आई तो दूसरी में 'छ'। फिर भी इनमे विकृति के कुछ तत्व समानरूप मे मिलते हैं, और वे हैं 'क' मूलक तत्व इसलिए ये प्रतियां मूल से 'अ' के शेषांश के द्वारा तथा अ-क से और परस्पर अ-क के विकृति-तत्वों के द्वारा संबंधित है। इसी प्रकार रेखा-चित्र की और प्रतियो के बारे मे भी समझा जा सकता है।

समीक्षा : इस रेखाचित्र में विभिन्न कल्पित-संभावित प्रतियां का नामकरण अनावश्यक विस्तार से किया गया है। अधिकाश विद्वान डा० गुप्त की 7वीं पांडुलिपि का नाम केवल फ देना ही उचित समझेंगे। अपनी मूल प्रति 'अ' तथा क, छ, थ प्रतियो के साथ फ प्रति का संबंध स्वत. सिद्ध है। अत इस प्रकार का विकट अभिधान असंगत ही कहा जाएगा। वस्तुत: पाडुलिपियों के वंश वृक्ष तथा एक ही पाडुलिपि की विभिन्न प्रतियो मे परस्पर साम्य वैषम्य को रेखांकित करते समय भारत तथा पश्चिम के विद्वानो ने अपनी कल्पना शक्ति का आवश्कता से अधिक उपयोग किया है। इस कल्पना को व्यावहारिक धरातल पर रूपायित करना अभी तक तो संभव नही हो सका।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि :

1. कार्ललैशमान के अनुसार प्रत्येक प्राचीन रचना का उपलब्ध रूप उसकी किसी अविद्यमान पांडुलिपि से संबद्ध होना चाहिए। वर्तमान (उपलब्ध) पाठ के मूल (शुद्ध) रूप की खोज किसी संभावित (कल्पित) आदर्श (आर्च टाइप) प्रति के आधार पर करने का आग्रह लैशमान का रहा है। इस आग्रह के कारण लैशमान पाठ-गत प्रत्येक वैषम्य के मूल में किसी अविद्यमान प्राचीन प्रति (पाठ) का अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

2. कार्ल लैशमान उपलब्ध पाठ की उन समानताओं का एक वर्ग बनाने का सुझाव भी देते हैं, जो समानताएं इस वर्ग की बहुसंख्यक प्रतियां में उपलब्ध हैं।

3. कार्ल लैशमान की स्थापना कि यदि समानताएं किसी प्रकार वर्गीकृत न की जा सकें तो समान त्रुटियो-विषमताओं तथा अन्य समान भ्रांतियों-के आधार पर पाठ को वर्गीकृत किया जाना चाहिए।[10]

4. कार्ल लैशमान की दृष्टि तथा विधि के प्रतिकूल सर वाल्टर ग्रेग पाठ की विभिन्न प्रतियों मे उपलब्ध साम्य को ही पाठ-निर्धारण के संदर्भ मे निर्णायक मानते हैं। पाठ-गत प्रत्येक साम्य किसी पूर्ववर्ती पाठ (विद्यमान या

अविद्यान) प्रति मे सबद्ध होता है। इसलिए सर ग्रेग प्रत्येक समानता के लिए पृथक-पृथक वास्तविक स्रोत का अनुसधान करने के पक्षधर हैं। यदि यह प्राचीन स्रोत न मिले तो इसे एक विकल्पित रूप भी दिया जा सकता है।

5 सर ग्रेग की इस दृष्टि-विशेषत इस पद्धति से उपलब्ध विस्तार से उत्तरवर्ती विद्वान सहमत न हो सके। विलिअर्ड थाप ने सर ग्रेग द्वारा सभावित ड्राइडन की 'एपिलाग' कविता के 11 पाठ-रूपों के स्थान पर केवल दो रूप ही स्वीकृत किए।

6 प्रो० आर्चिबाल्ड हिल ने भी 'एपिलाग' के केवल दो ही पाठ रूप स्वीकार किए। यद्यपि प्रो थॉप भी दो पाठ-रूपों के पक्ष मे थे। पर प्रो हिल द्वारा प्रस्तावित (स्वीकृत) दोनो पाठ-रूप प्रो हिल के पाठ रूपो से भि न हैं।[11] सक्षेप मे, कहा जा सकता है कि प्रति-सकलन-विशेषत वश वृक्ष के सबध में पाठ-गत साम्य अथवा वैषम्य-को आधार बना कर पश्चिम मे पर्याप्त ऊहापोह हुआ है। इस ऊहापोह से हिन्दी के पाठ-अनुसधान को भी एक नई सोच और एक नई पद्धति मिली है।

सगणक

पाठ अनुसधान के क्षेत्र मे कुछ दिन पहले साख्यिकी (स्टैटिस्टिक्स) की पद्धति अपनाने पर बल दिया जाता था। अब सगणक (कम्प्यूटर) की सहायता इस क्षेत्र मे ली जान लगी है। वैसे अभी तक सगणक पद्धति की सहायता से प्रस्तुत पाठ सबधी किसी नवीन धारणा की कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। परन्तु विगत 25 वर्षो से सगणक-पद्धति को पाठ-अनुशासन के विभिन्न क्षेत्रा म प्रयुक्त करने की बात चल रही है। भारत मे पाठ-अनुशासन के क्षेत्र मे काम करने वाले प्राय सभी विद्वानो ने पश्चिमी दृष्टि के कितने ही अश अपने विवेचन-विश्लेषण मे समाविष्ट किए हैं। डॉ० सुखथकर, मुनि जिन-विजय, पी एल वैद्य, डॉ० भायाणी प्रभृति अनुसधाताओ ने पश्चिम से आयातित दृष्टि-पद्धति को भारतीय पाडुलिपियो की विशिष्ट अपेक्षाओ के अनुरूप आवश्यक काट छाट के बाद ही स्वीकार किया है। विवेक मूलक यही पद्धति समीचीन है। पश्चिमी पद्धतियों का आख मूद कर अनुकरण कदापि श्रेयस्कर नहीं हो सकता।

पाद-टिप्पणियां

1 भवभूति कृत 'मालती माधव' के पाठ का अध्ययन करते समय विभिन्न पाडु-लिपियों के साक्ष्य पर भडारकर महोदय ने सिद्ध किया है कि भवभूति ने स्वय मालती माधव के पाठ को यत्रतत्र सशोधित किया है। देखिए मालती माधव सपादक डा। भडारकर 1905 (भूमिका)

डा टोडर मल ने भवभूति की एक अन्य रचना 'महावीर चरितम्' की 18

पांडुलिपियों का अध्ययन किया और डॉ. भंडारकर की इस मान्यता का समर्थन किया। महावीर चरितम् : सम्पादक : डॉ. टोडरमल : 1928 (भूमिका)। डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला तथा डॉ. कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचन्द के सम्बन्ध में भी इसी तथ्य को लक्षित किया है।

2. डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया है, देखिए तुलसीदास। परिशिष्ट : अ: 542-48
3. 'तुर्फान' अभियान मे प्राप्त ताड़पत्रों पर लिखित प्राचीनतम सामग्री (एक बौद्ध नाटक) का सम्पादन प्रो० लूडर्स ने किया था (1911), 'आर्किओलोजिकल सर्वे आफ इंडिया' ने भी विभिन्न रचनाओं का पाठ एक-एक प्रति के आधार पर तैयार करवाया था। 'भकशली'तथा वैबर संग्रह की पांडुलिपिया एक एक प्रति से ही संपादित प्रकाशित की गई थी।
4. देखिए महाभारत : संपादक डा० सुखथंकर/भूमिका। पृष्ठ : 31
5. Panchtantra Reconstructed : F Edgerton : American Oriental Series : 1924
6. F. W. Hall ने A Companion to Classical Texts (1913) में कार्ल लैशमैन की पाठ-सम्बन्धी मान्यताओं का विवरण दिया है। पृष्ठ : 5 – 8, 108—198 आदि।
7. जॉन ड्राइडन की विचाराधीन कविता Epilogue to the Man of Mode (Sir Flopping Fluter नामांतर) सन् 1676 में लिखी गई थी। इस कविता की 32 या 34 पंक्तियों में लगभग 77 पाठांतर उपलब्ध अथवा संभावित हैं।
8. सर वाल्टर ग्रेग ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक The calculus of variants (1927) में अपनी इस पद्धति का विवरण दिया है। सर ग्रेग की पुस्तक The Editorial Problems in Shakespeare (1951) भी इस संबंध में द्रष्टव्य है। The Rationale of Copy Text में भी सर ग्रेग ने अपनी दृष्टि-पद्धति का परिचय दिया हैं।
9. 'अनुसंधान की प्रक्रिया' : पृष्ठ : 127
10. कार्ल लैशमान की दृष्टि तथा पद्धति के विशेष विवरण के लिए देखिए :
    (क) Prof. K. Lake : The Text of the New Testament (1928)
    (ख) Prof J. P. Post-gate : Textual Criticism (A Companion to Latin studies : Editor : J. E. Sandyo : 1928)
11. विस्तार के लिए देखिए :
    (क) A. A. Hill : Postulates for Distributional study of Texts : 1950
    (ख) V A Dearing : A Mannual of Textual Analysis : 1959

अध्याय 5

पाठ संशोधन

'तिलतार', प० रामचद्र शुक्ल, सदेशरासक, जेणज्ज, चल्ल, साहित्यिक सम्पादन, पाट-सुधार, चादायन, डॉ० कात्रे, मुनि जिन विजय, पाठ-मशोधन, महाभारत पूना सम्करण, प्रो० मैकडॉनल्ड, वृहद देवता, प्रो० विर्तनित्स, आतरिक अन्विति, पाठ-अतरात्मा, मध्यम मार्ग,

पाद टिप्पणिया 1—21

सामान्यत यही समझा जाता है कि पाठ-आलोचन का अर्थ है, उपलब्ध पाठ का सशोधन। परन्तु पाठ-सशोधन इस अनुशासन की मात्र एक शाखा है। बिना किसी अपेक्षित अनुसधान, विवेचन-विश्लेषण के पाठ-सशोधन करना न केवल अनपेक्षित ही है, वरन् पाठ-अनुशासन के सर्व सम्मत सिद्धातो का अकारण प्रत्याख्यान करना भी है। वस्तुत पाठ-अनुशासन की प्राथमिक अपेक्षा है, शुद्ध-शुद्धतर-शुद्धतम पाठ की निरतर खोज। निश्चय ही यह खोज कार्य पाठ की विभिन्न प्रतियो के पर्यालोचन से ही सभव है। मनमाने ढग से उपलब्ध 'पाठ का सशोधन पाठ' को विकृततर रूप देने मे ही पर्यवसित होता है

'तिलतार'

हिन्दी के एक प्रसिद्ध विद्वान् ने हेमचन्द्र के एक पद्य मे उपलब्ध तिलतार' शब्द को फारसी के 'दिलदार' का मुलतानी रूपातर बताया। सयोग से दिलदार' की मूल शब्द के प्रसग मे सगति भी बैठ गई। रचयिता कदाचित् 'द' को 'त बोलने वाले भाषाई क्षेत्र (मुलतान) का निवासी था। द=त यह

समीकरण उस क्षेत्र में – आज भी-प्रचलित है। वदर को 'वातर' (वांदर: पंजाबी) वहा बोला जाता है।[1] इस प्रकार भाषाई परिवेश तथा प्रसंग-सगति को आधार बना कर 'तिलतार' शब्द का अर्थ 'दिलदार' किया गया। पंजाव की एक पाण्डुलिपि 'सुपमनी सहंमर नाम' (रचना काल : 1646 ई.) का यह अवतरण इस भाषाई प्रवृत्ति के सम्वन्ध मे द्रष्टव्य है :—

'जैसे तें रिछ अरु वंतरि अपणे सपा करि जाने है। तैसे ही मैं भी अणसमझणे करि करि रिछ वंतर हा जी' (पत्र 165)।

इस अनर्गल संशोधन-विधि को मात्र कल्पना-विलास ही कहा जा सकता है। इसे पाठ-अनुशासन की स्वीकृति नहीं मिल सकती। दुर्भाग्य से हिन्दी के अधिकाश विद्वानो ने पाठ-आलोचन को इसी कोटि की अपनी अनियमित कल्पना उड़ान का क्षेत्र समझ रखा है। इस सम्वन्ध मे कुछ उदाहरण देना आवश्यक जान पड़ता है।

पं॰ रामचंद्र शुक्ल

आधुनिक युग मे शुक्ल जी कदाचित् पहले विद्वान् थे जिन्होंने सूर, तुलसी तथा जायसी की रचनाओं का 'पाठ' सम्पादित किया। हिन्दी में पाठ अनुशासन की वैज्ञानिक पद्धति का प्रचलन उस समय नहीं हुआ था। फलतः शुक्ल जी के सामने यही एक रास्ता था कि उपलब्ध पाण्डुलिपियों अथवा प्रकाशित रचनाओं के आधार पर पाठ-प्रस्तुत किया जाए। विभिन्न प्रतियों में उपलब्ध पाठ पर तुलनात्मक दृष्टि मे विचार करने का अवसर अभी नहीं आया था। फलतः शुक्ल जी को जो पाठ मिला उसे ही उन्होंने संपादित कर डाला। निश्चय ही कठिन शब्दों की समस्या उनके सामने रही होगी। इसका सरल सा समाधान उन्होंने कर लिया। कठिन शब्द के स्थान पर सरल शब्द रख कर पाठ को सुवोध वना लिया। वस्तुतः यह समाधान पाठ की समस्या से जूझना नहीं, वरन पलायन है। पाठ-अनुशासन के क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्यवसायी लोग इस तथ्य से परिचित हैं कि पाठ मे उपलब्ध कठिन शब्द ही प्रायः लिपिकों—प्रतिलिपिकों-का कोपभाजन वना करता है। कठिन शब्द का अंगभग कर उसका विकृत रूप ही पाठ मे ठूंस देने को लिपिक अपना अधिकार समझते आए हैं। किसी प्राचीन कठिन शब्द के स्थान पर कोई आधुनिक सरल शब्द रख देने का मोह शुक्ल जी भी संवरण नही कर सके है। वस्तुतः कठिन शब्द ही प्रायः मूल अथवा शुद्ध शब्द हुआ करता है। शुद्ध शब्द की उपलब्धि कठिन के स्थान पर सरल शब्द रखने से नहीं, वरन् शुद्ध शब्द के अनुसंधान से ही संभव हो सकती है।

'डाडि'

एक उदाहरण के द्वारा इस प्रवृत्ति की बहुलता को लक्षित किया जा सकता है। शुक्ल जी ने पदमावत की एक पंक्ति में डाडि शब्द रखा

सास 'डाडि' मन मथनी गाढ़ी, हिए चोट बिनु फूटन साढ़ी'

(पदमावत 152/4)

शुक्ल जी ने 'डाडि' का स्रोत या आधार स्पष्ट नहीं किया। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इसके स्थान पर 'दहेंडि' शब्द रखा और इसके सामने प्रश्न सूचक चिन्ह भी लगा दिया। डॉ गुप्त ने भी इस परिवर्तन के लिए कोई आवश्यक प्रमाण या आधार नहीं बताया।

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस शब्द के उपलब्ध 9 पाठान्तरों पर विचार किया और 'दुआलि' (फारसी शब्द। अर्थ चमड़े की डोरी) पाठ को शुद्ध (मूल) शब्द सिद्ध किया।[2]

भाव यह है कि विभिन्न पाडुलिपियों में उपलब्ध पाठांतरों पर विचार किए बिना पाठ के संबंध में कोई निर्णय देना—कानूनी भाषा में 'एक तरफा फैसला देना'—है।

सदेश रासक मध्यकालीन रचनाओं में 'सदेश रासक' एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है। मुनि जिन विजय डॉ० भायाणी, डॉ० साडेसरा तथा डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे दिग्गज सदेश रासक के पाठ तथा इसके शब्द-अर्थ के साथ विगत लगभग 75 वर्षों से जूझते आ रहे हैं। हिन्दी में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने सदेशरासक के पाठ पर पर्याप्त ऊहापोह किया है। डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी ने सदेश रासक का हिन्दी रूपांतर भी तैयार किया। परन्तु यह समस्त प्रयास अधिकतर इन विद्वानों की उर्वरा कल्पना की ही उपज जान पड़ती है। कुछ उदाहरण देखिए

'जेणज्ज' सदेश रासक के पहले पद्य में 'अज्ज' यह कठिन शब्द प्रयुक्त हुआ है। द्विवेदी जी ने सदेश रासक के दोनों टीकाकारों द्वारा किए गए इस शब्द के 'इत्यादि' अर्थ को अस्वीकार करते हुए इसका अर्थ 'आर्या' सिद्ध किया।[3] आर्या का 'अज्ज' रूप भाषा-विकास-क्रम के अनुरूप है। डॉ० माता-प्रसाद गुप्त ने इस 'अज्ज' को अज्ज' रूप में स्वीकार किया और इसका अर्थ-किया 'यह'।[4]

आश्चर्य की बात यह कि इन दोनों विद्वानों ने 'अज्ज' के लिए पाडुलिपियों

से आवश्यक विवरण देने का कष्ट नहीं किया। शब्द का अर्थ निश्चित करने से पूर्व इस शब्द के पाठांतर संदर्भित किए जाने चाहिए थे।

इससे भी आश्चर्य की बात यह कि डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपने हिन्दी रूपांतर मे न तो 'आर्य' और न ही डॉ० गुप्त द्वारा प्रस्तावित शब्द 'यह' का उपयोग किया है। इस शब्द को टीका से गोल कर देना डॉ० त्रिपाठी को कदाचित् अधिक उचित प्रतीत हुआ।[5]

'मणुजणंमि' (संदेश रासक: प्रथम प्रक्रम: पद्य 19)

द्विवेदी जी ने 'अवचूरिका' (टीका) के आधार पर 'मणुजणमि' का अर्थ 'मनुष्य जन्म मे' किया है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त का सुझाव है कि मूल पाठ 'मणुज्जणंमि' था। इसकी विकास प्रक्रिया 'मनोज्ञ नर्मन > मणुज्जणमि' इस प्रकार बताई गई है।

परन्तु इस द्राविड़ी प्राणायाम से पूर्व पांडुलिपियो मे उपलब्ध पाठांतरों की कोई सूचना इन दोनों विद्वानो ने नही दी।

'चल्ल' (संदेश रासक : द्वितीय प्रक्रम पद्य 45) ; डॉ० द्विवेदी के अनुसार 'चल्ल' का अर्थ है 'कटि वस्त्र'[6]। डॉ० गुप्त ने 'अनुमान' भिड़ाया है कि यहां 'चल्लि' होना चाहिए।[7] 'चल्लि' का अर्थ डॉ० गुप्त ने 'नृत्य की एक गति' बताया है। वस्तुतः किसी शब्द के स्थान पर कोई अन्य शब्द रखने का इस कोटि का अनियंत्रित अधिकार किसी सम्पादक या टीकाकार को देने का अर्थ होगा 'पाठ' के क्षेत्र में अराजकता को प्रश्रय देना। शब्द के अर्थ का सधान पाडु-लिपियों मे उपलब्ध पाठान्तरो के माध्यम से ही किया जाना चाहिए। मात्र कल्पना अथवा अनुमान के सहारे पाठ का संशोधन करना पाठ की समस्या को अधिक जटिल बनाना होगा।

डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपने हिन्दी रूपान्तर में संदेश रासक की पांडुलिपियों में से एक भी पाठातर उद्धृत नही किया। पाठ-अनुशासन के सर्व सम्मत सिद्धान्तो की इससे अधिक उपेक्षा नही की जा सकती।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त आदि विद्वान प्रायः उपलब्ध शब्द का जैसे तैसे अर्थ करना ही पाठ-आलोचन का उद्देश्य मानते हैं। पांडुलिपियों के पाठांतरों पर ध्यान देना वे इतना आवश्यक नही समझते। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी संदेशरासक के 'पउहरि-दीहरि' (प्रक्रम 2/24) शब्दो पर विचार करते हुए लिखते है : 'यदि पाठ-निर्णय मे केवल पोथियों के अक्षरो को ही प्रमाण न मान कर साहित्यिक चारुता को भी प्रमाण माना जाए तो 'दयहर'

ही उचित पाठ होगा। 'पयहर' व्याकरण-सम्मत होने से उचित है, 'दयहर' काव्य-शास्त्र-सम्मत होने से (सदेश रासक प्रस्तावना पृष्ठ 20)

'पोथियो (पाडुलिपियों) के अक्षरों के प्रति अनास्था की क्षीण सी ध्वनि इन शब्दो मे सुनी जा सकती है। डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी ने 'पउहरि-दीहरि शब्दो को ही शुद्ध मान कर इनकी व्याख्या की है। पाठ-संशोधन सम्बन्धी इस काव्य-शास्त्र परक दृष्टि का स्पष्टीकरण प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस प्रकार किया है

साहित्यिक सम्पादन 'कोरी वैज्ञानिक प्रक्रिया से 'मानस क्या हिन्दी के किसी भी ग्रथ का ठीक सम्पादन नहीं हो सकता। उसके लिए साहित्यिक सम्पादन की सरणि का परित्याग अहितकर है। वैज्ञानिक प्रक्रिया . .. .. वैज्ञानिक होन से जड है। साहित्यिक प्रक्रिया दर्शन होन से चेतन। .. वैज्ञानिक प्रक्रिया शब्द पर ध्यान देती है जबकि साहित्यिक प्रक्रिया शब्द पर ध्यान देते हुए भी अर्थ पर विशेष दृष्टि रखती है। साहित्य शब्द और अर्थ का सपृक्त रूप होता है अत शब्द और अर्थ दोनो पर समान दृष्टि ही प्राचीन ग्रथों के सम्पादन मे उपयोगी हो सकती है।[8]

यह पूरा अवतरण 'साहित्यिक-सम्पादक' का पक्षधर प्रतीत होता है। मिश्र जी 'साहित्यिक-सम्पादक' को पाठ के सम्बन्ध मे अनियत्रित तथा अबाधित अधिकार देने की सस्तुति करते हैं। अत में, दबी जबान से वे वैज्ञानिक प्रक्रिया तथा साहित्यिक सम्पादन विधि का समन्वय भी हितकर मान लेते है। वस्तुत विभिन्न पाडुलिपियो मे उपलब्ध पाठान्तरों को ही पाठ-शुद्ध पाठ-की एकमात्र कसौटी माना जा सकता है। इस कसौटी को भले ही अनुदार कहा जाए, परन्तु 'पाठ के सम्बन्ध मे अतिरिक्त उदारता से विश्व भर मे 'पाठ का सहार हुआ है, इस तथ्य को नकारना भयावह होगा।

सिकन्दर महान के समकालीन या थोड़े उत्तरवर्ती जेनोडॉटस' द्वारा 'होमर' का पाठ, रिचर्ड बेंटले (1662-1742 ई०) द्वारा 'मिल्टन' का पाठ और 'ड्राइडन' की कृतियो का पाठ आधुनिक सपादकों द्वारा इसी स्वच्छन्दता के कारण बहुत क्षत-विक्षत किया गया। हिन्दी मे रासो[9], पदमावत,[10] मानस[11] तथा कबीर[12] के साथ भी इसी प्रकार का खिलवाड किया गया। निश्चय ही अनियत्रित पद्धति – चाहे वह आपातत कितनी भी सार्थक क्यो न प्रतीत हो-पाठ-अनुसधान की वैज्ञानिक प्रणाली की तुलना मे मात्र एक विकल्प से बढकर कुछ नहीं है। इस विकल्प को भी अतिम उपाय के रूप मे ही अपनाया जाना चाहिए।

पिछली पीढ़ी के हिन्दी साहित्य के सम्पादक प्राय उपलब्ध 'पाठ' को

यथा कथचित् संगति लगाने का प्रयास करते रहते थे। एक शब्द का अंगभग कर उसके विभिन्न अर्थ प्रतिपादित करना उन लोगों का साहित्यिक मनोरजन था। इस मनोरजन से मूल पाठ का चाहे कितना ही संहार क्यों न हो जाए, इसकी चिन्ता उन्हे नही सताती थी। इसी मनोवृत्ति की प्रतिध्वनि डॉ० माताप्रसाद गुप्त की इस मान्यता मे सुनी जा सकती है :

'सामान्यत: और अधिकाश मे पाठ-चयन से रचना का संतोपजनक मूल या प्राचीनतम पाठ उपलब्ध हो जाता है। किन्तु कभी-कभी ऐसी स्थिति सामने आ जाती है कि प्राप्त-पाठों मे से कोई भी दोनों (वाह्य तथा आनरिक) अनुसंगतियों द्वारा समर्थित नही होता है। ऐसी दशा में ऐसे पाठ की कल्पना करनी पडती है। जिससे विगड कर प्राप्त पाठ अथवा उनमे से किसी के वने होने की संभावना हो और जो रचना की आंतरिक प्रकृति से सर्वथा अनुमोदित हो।' इस प्रकार की 'पाठ कल्पना' को वे 'पाठ सुधार' कहते है।'

वे आगे लिखते हैं :

'पाठ-सुधार एक बड़े उत्तरदायित्व का कार्य है, और इसकी शरण तभी लेनी चाहिए जव पाठ-चयन से किसी प्रकार भी ऐसा पाठ न मिल रहा हो जो आंतरिक अनुसगतियुक्त हो। इस कार्य के लिए पाठानुसंधानकर्त्ता को रचयिता की ही समस्त रचनाओं का नहीं, उसकी काव्य-प्रणाली, उसके युग और उसकी विचार-धारा की अन्य रचनाओं का भी सम्यक् 'ज्ञान' होना चाहिए, जिन युगों और जिन क्षेत्रों में विवेच्य रचना का प्रचार रहा है, उनकी लिपि और लेखन-प्रणाली का ज्ञान होना चाहिए, मूल रचना और प्राप्त अंतिम प्रतिलिपि की विधियो के बीच जिन क्षेत्रों मे विवेच्य रचना का प्रचार रहा है, उन क्षेत्रों में उसकी और उन क्षेत्रों की भाषा ने कितनी करवटें वदली है—उसके लिए इन सब वातों का भी ज्ञान अपेक्षित है।'

(अनुसंधान की प्रक्रिया: पृष्ठ: 130)

अपनी इस संपादन-विधि से संपादित 'चांदायन' की भूमिका में डॉ० गुप्त लिखते हैं, 'कहना नही होगा कि दो-चार अपवादों के अतिरिक्त प्रस्तुत संस्करण के लिए पाठ-चयन इन्ही सिद्धान्तों के अनुसार किया गया है'। डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने अपनी पाठ-संपादन पद्धति का स्पष्टी-करण इस प्रकार किया है :—

'पाठ सुधार के लिए समस्त अन्तरंग और वहिरंग संभावनाओं (Intrinsic and Extrinsic probablitics) का साक्ष्य ग्रहण करते हुए

दो बातो का बराबर ध्यान रक्खा गया है एक तो यह कि रचयिता भाषा के एक ऐसे रूप मे रचना प्रस्तुत कर रहा था जो बाद मे परिवर्तित हुआ है और दूसरे यह कि रचना की पाठ-परपरा नागरी तथा फारसी-अरबी दोनो प्रकार की लिपियो मे चली है। इसीलिए प्रस्तुत सस्करण मे रचना का एक ऐसा पाठ प्रस्तुत किया जा सका है जो पहले नही प्रस्तुत किया जा सका था, और ऊपर दी हुई विधियो का अनुसरण कर हम रचना के एक ऐसे निर्भरता और विश्वास-योग्य पाठ पर पहुच सके हैं जो अन्यथा सभव नही था।'
(चादायन भूमिका पृष्ठ 60)

इसके विपरीत डॉ० सुखथकर ने अपनी सपादन विधि का अधिक निष्ठा से पालन किया है। आदिपर्व (महाभारत) के आठ हजार श्लोको मे से केवल 36 श्लोको मे ही आशिक सुधार किया गया है। ये सुधार भी केवल शब्दो तक ही सीमित रखे गए हैं। गणित या साख्यिकी के आधार पर डॉ० गुप्त तथा डॉ० सुखथकर के पाठ-सशोधन सबधी इन प्रयासो का आपेक्षिक मूल्य तथा भेद स्वय स्पष्ट हो जाता है।

चादायन

डॉ० गुप्त द्वारा सपादित 'चादायन' के पाठ पर डॉ० ज्ञानचन्द शर्मा की यह टिप्पणी भी पठनीय है

'चादायन के सम्पादन के समय डॉ० माताप्रसाद गुप्त के सम्मुख डॉ० परमेश्वरी लाल के 'चदायन' का सुव्यवस्थित पाठ था। इसके अतिरिक्त बीकानेर प्रति से भी उन्हें पर्याप्त सहायता मिली होगी। इस पर भी उन्होने जो पाठ प्रस्तुत किया है, वह पूरी तरह शुद्ध नही कहा जा सकता। डॉ० माता प्रसाद ने बीकानेर तथा अन्य प्रतियो से स्वेच्छा पूर्वक पाठ ग्रहण किए है। इससे समस्त पाठ थिगली-जडा सा प्रतीत होता है।'

इस समस्त विवेचन का फलितार्थ यही है कि पाठ की शुद्धता के लिए पाडुलिपियो मे उपलब्ध पाठान्तरो पर तुलनात्मक पद्धति से गभीर विचार करना चाहिए। ठीक उसी प्रकार जैसे न्यायालय मे सुयोग्य न्यायाधीश प्रस्तुत साक्ष्य को बार-बार पढता है और अनेक दृष्टियो से उसका मूल्याकन करता है। पाठ के अनुसधाता को भी पाडुलिपियो के साक्ष्य पर उतनी ही तटस्थता तथा तलस्पर्शी दृष्टि से विचार करना चाहिए। डॉ० कात्रे ने ठीक ही लिखा है,—

'In short, the doctrine is that all the trustworthy witnesses

to a text must be heard and heard continuously before a verdict is given'

वस्तुत: वस्तुनिष्ठ अनुसंधाता के लिए पाण्डुलिपियों में उपलब्ध पाठ सामग्री एक लक्ष्मण रेखा है। इसका उल्लंघन पाठ-अनुशासन के क्षेत्र में अनेक प्रकार की भ्रांतियों को जन्म देता है।

यदि पाण्डुलिपियों मे उपलब्ध पाठांतर शुद्धतर पाठ तक पहुंचने में सहायक न हो रहे हों तो अन्य पाण्डुलिपियों की खोज की जानी चाहिए। किसी कृति को हड़बड़ी में प्रकाशित-सपादित करने की भूल हिन्दी के कई सम्पादकों ने दुहराई है। पर्याप्त श्रम तथा समय के पश्चात् भी यदि शुद्ध 'पाठ' उपलब्ध न हो तभी -और केवल तभी-अनुमान से 'पाठ' सम्पादित करने की जोखिम उठानी चाहिए। उस स्थिति में पाठ सम्पादन की पूरी प्रक्रिया-पाठांतर के माध्यम से-स्पष्टत: निर्दिष्ट की जानी चाहिए।

'संदेश रासक' के प्रकाशन की प्रेरणाप्रद गाथा यहां देने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूं। मुनि जिनविजय जी को संदेश रासक की पहली प्रति सन 1912 मे मिली थी। छह वर्ष बाद (1918 में) पूना प्रति प्राप्त हुई। इसके बाद 'याकोबी' जैसे प्रतिभाशाली विद्वानो के साथ संदेशरासक सम्बन्धी चर्चा वे लगभग तीस वर्ष तक करते रहे। अनुसंधान और गंभीर चर्चा के बाद मुनि जी उपर्युक्त दोनों प्रतियों की सहायता से संदेश रासक के सम्पादन-प्रकाशन की योजना बनाने लगे (सन 1938)। इसी समय उन्हें संदेश रासक की तीसरी प्रति मिली। इस पर पर्याप्त विचार-विमर्श कर मुनि जी ने सात वर्ष बाद संदेश रासक का सम्पादन प्रकाशन किया (1945)। इस प्रकार तैंतीस वर्षों तक इस रचना पर चिंतन मनन करने के बाद मुनि जी ने इसे प्रकाशित कराया। निश्चय ही यह प्रकाशन मध्यकालीन साहित्य के सम्पादन के इतिहास में कीर्तिमान स्थापित करता है।

इसके विपरीत हिन्दी के पाठ अनुसंधाताओं ने तो 33 वर्षों में 33 रचनाएं सम्पादित करने का कीर्तिमान स्थापित कर रखा है। पृथ्वीराज रासो, सूरसागर पदमावत तथा बीसलदेव रासो जैसी विशाल काय तथा जटिल रचनाओं का शुद्ध पाठ तैयार करने में हमारे अध्यवसायी अनुसंधाता-प्राय: अकेले ही-20 वर्षों से भी कम समय लेते हैं।

पाठ-संशोधन : पाठ संशोधन पाठ अनुशासन का सबसे कठिन परन्तु साथ ही सबसे सरल कार्य भी है। सरल इसलिए कि रचयिता के सम्बन्ध मे सर्वज्ञ होने का दंभ पाल कर अपनी निरंकुश कल्पना के सहारे किसी भी शब्द

या पूरी पंक्ति को अनधिकृत रूप से सम्पादित कर देना या पाठ मे निर्वासित कर देना कदाचित् इस क्षेत्र का सरलतम कार्य है।

महाभारत पूना-संस्करण मुनि जिनविजय जी की भांति 'एकला चलो रे' के अनुसार अकेले ही किसी प्रति पर 33 वर्ष तक काम करना, या फिर जिस प्रकार 'पूना-महाभारत' के सम्पादक मडल ने अपने सहायकों के साथ महाभारत की 60-70 पाण्डुलिपियो, एकाधिक वाचनाओ, अनेक लिपियों तथा विविध अनुवादो मे उपलब्ध सामग्री की सहायता से महाभारत का जो पाठ सपादित किया उसे निष्ठा, लगन और बौद्धिक साहस का सीमांत निदर्शन कहा जा सकता है। पाठ अनुशासन के क्षेत्र मे पाठ-संशोधन आपातकालीन एक विशेषाधिकार है। इसका प्रयोग पूरे विवेक तथा केवल अनिवार्य स्थिति मे ही किया जाना चाहिए। कानूनी शब्दावली मे विकटतम स्थिति (Rarest of rare cases) मे ही इस विशेषाधिकार का प्रयोग होना चाहिए। पाठ सम्बन्धी विकटतम स्थितियो के ये निदर्शन विचारणीय हैं

1 प्रो० मैक्डॉनल्ड को 'बृहद् देवता' की पाच भिन्न-भिन्न पाडुलिपियो में एक स्थान पर रौशम, रौशनो, रौशनौ, शनौ तथा तदाशनौ ये पाठ मिले। खोज करने पर एक अन्य पुस्तक 'नीतिमजरी' मे रौशम' पाठ मिला। प्रकरण के अनुसार तथा विषय के अनुकूल यही पाठ शुद्ध पाठ प्रतीत हुआ। इसी रचना के कई अन्य पाठातरों पर विचार करने के पश्चात्, सायण भाष्य के आधार पर शुद्ध पाठ का निश्चय प्रो० मैक्डॉनल्ड ने किया। तात्पर्य यह कि किसी पाठ की असगति को किसी अन्य स्रोत-प्रामाणिक स्रोत-की सहायता से दूर किया जा सकता है।

2 'महाभारत' के एक प्रसग मे पर्याप्त ऊहापोह के पश्चात ऊढ, ऋद्ध तथा ऊर्ध्व ये तीन पाठ अधिक शुद्ध सिद्ध हुए। शेष पाठ रूपम, रम्य, श्रेष्ठ तथा उच्चं आदि थे। 'नेति नेति' की पद्धति से अशुद्ध पाठो को अस्वीकृत करते हुए अतत, 'ऊढ' पाठ को अधिक समीचीन तथा प्रसग एव महाभारत की प्रकृति के अनुकूल समझ कर मूल का निकटतम (शुद्ध) पाठ निश्चित किया गया।

3 बहुसख्यक पाडुलिपियो मे उपलब्ध समस्त पाठान्तरो का निषेध करते हुए विमी-पाठ विशेष की प्रस्तुति के कुछ उदारण डॉ० सुखथकर ने दिए हैं

महाभारत की सभी उत्तरी वाचनाओ मे उपलब्ध एक पाठ 'गगा स्त्री रूप धारिणी' के स्थान पर 'गगा श्रीरिव रूपिणी' यह पाठ डॉ० सुखथकर ने स्वीकार किया। उनका तर्क था कि प्रसग, शैली, तथा अभिव्यक्ति की

चारुता को ध्यान में रखकर बहुसंख्यक पांडुलिपियों के साक्ष्य को भी निरस्त करना पड़ा।

प्रो० वितर्नित्स ने इस पाठ पर आपत्ति की। परन्तु कालांतर में नेपाल से प्राप्त महाभारत की शुद्धतम तथा प्राचीनतम पाडुलिपि मे भी यही पाठ मिला। फलत. डॉ० सुखथंकर द्वारा स्वीकृत, महाभारत की शैली तथा अभिव्यक्ति सम्बन्धी पूरे परिवेश को ध्यान में रखकर किया गया यह पाठ-संशोधन विद्वानों को ग्राह्‌य हुआ। विशेषत: इसी पद्धति को भारत तथा पश्चिम मे भी मान्यता मिली। प्रो० वितर्नित्स. कीथ[18] एजर्टन[19] तथा बैनर्जी एवं शास्त्री[20] प्रभृति विद्वानों ने डॉ० सुखथंकर की इस पद्धति को सर्वोत्तम तथा भारतीय पाडुलिपियो में उपलब्ध पाठ के विशिष्ट सदर्भ मे सर्वाधिक उपयोगी स्वीकार किया। पाठ संशोधन के सम्बन्ध मे कर्तव्य अकर्तव्य को लेकर विश्वभर मे पर्याप्त ऊहापोह हुआ है। भारतीय पांडुलिपियों का संपादन करते समय विगत लगभग 200 वर्षो में अनुसंधाताओं ने जो अनुभव प्राप्त किए, उन महत्वपूर्ण अनुभवों को (उन विद्वानों को अपनी संपादित प्रकाशित पुस्तकों के आधार पर) पाठ अनुशासन -विशेषत: पाठ संशोधन के संदर्भ में-कतिपय-नियमों का रूप इस प्रकार दिया जा सकता है :

1. आंतरिक अन्विति. रचनातंत्र चूंकि प्रत्येक रचना अपनी आंतरिक (विचार) अन्विति, अपने बहिरंग रचना तन्त्र (भाषा:; छंद आदि) के साथ देश काल के एक विशिष्ट बिन्दु पर अवतरित होती है, इसलिए विचाराधीन रचना के अंतरंग तथा बहिरंग दोनों पक्षों का मंथन-आलोडन पूरी निष्ठा, गंभीरता तथा पूरे विवेक से करना चाहिए। पाठ-अनुशासन की यह प्राथमिक अपेक्षा है। इस नियम की थोड़ी सी भी उपेक्षा से पाठ 'अपपाठ' की कोटि में आ जाता है।

2. पाठ: अन्तरात्मा विचाराधीन 'पाठ' के अनवरत पारायण करते रहने से 'पाठ' की अन्तरात्मा से साक्षात्कार हो जाता है। वस्तुतः 'पाठ' की आत्मा के इस साक्षात्कार से रचना तथा रचयिता के समस्त भाव-जगत उनके सभी विधि निषेध उसके युग बोध तथा उसकी समूची रचना धर्मिता की अविकल उपलब्धि संभावित है। इस उपलब्धि के प्रकाश मे-किसी अनिवार्य स्थिति में ही असंगत शब्दों, वाक्यों तथा वाग्धाराओं की समुचित संगति पाठ-संशोधन द्वारा बिठाई जा सकती है। इस नियम का पालन करने से इस क्षेत्र में प्रचलित अनेक उच्छृंखलताओं पर अंकुश लगाया जा सकता है।

3. मध्यम मार्ग पिछली पीढ़ी के पाठ-सम्पादक प्राय: परम्परा प्राप्त पाठ में किसी प्रकार का परिवर्तन अनुचित समझते थे। जैसे कैसे उपलब्ध पाठ

का बचाव करना, इस निमित्त व्याख्या का अन्तहीन जाल-जजाल फैलाना तथा पाठ-सशोधन की दृष्टि से प्रस्तावित प्रत्येक सुझाव को निरस्त करना ही जैसे उनके सम्पादन का उद्देश्य था। इस दृष्टि का समर्थन करना आज के युग मे सभव नही है। इसके विपरीत कुछ आधुनिक पाठ-सम्पादक *'वैज्ञानिक व्याख्या' के व्यामोह मे-अवसर पाते ही पाठ के साथ छेडछाड करने लग* पडते हैं।

इन दोनों अतिवादी दृष्टियो से बचते हुए तथा प्राचीन पद्धति की पाठ सबधी पथराई दृष्टि तथा पदे पदे पाठ सशोधन की आधुनिक ललक के मध्य मे 'मध्यम-मार्ग' अपनाना पाठ अनुशासन की नीसरी अपेक्षा है। उपलब्ध पाठ मे प्रत्येक प्रस्तावित सशोधन के सभी कारणो का सप्रमाण प्रस्तवन ही पाठ अनुशासन को वैज्ञानिकता का सुदृढ आधार प्रदान कर सकता है।

पाठ-सशोधन की इन प्रमुख तीन अपेक्षाओ को डॉ० सुखथकर ने अपनी अद्वितीय समाहार शैली मे इस प्रकार प्रस्तुत किया है

'The best procedure is to apply scientific interpretation to the transmitted text on the basis of the variants available from the documents, and incase of absolutely vicious readings, *apoly scrupulously the two tests of documental* and intrinsical probablities to discover a focus towards which the discordant variants convergic, which may then be adopted in the text as a conjectnral emendation[21]

तात्पर्य यह है कि पाठ-सशोधन के लिए तथाकथित व्याख्या जाल *का द्राविडी प्राणायाम भी उतना ही घातक है, जितनी कि सशोधन की* अनर्गल प्रवृत्ति अवाछनीय।

पाद-टिप्पणियाँ

1 पाणिनि के अनुसार त — द सस्कृत भाषा मे प्रचलित समीकरण है। प्राकृत-विशेषत पैशाची प्राकृत मे इसके विपरीत द — त यह प्रवृत्ति भी हेमचद्र आदि आचार्यों ने लक्षित की है।

देखिए 1 प्राकृत शब्दानुशासन (शोलापुर सस्करण 1954) पृष्ठ 35, 37 आदि।

2 रिचर्ड पिशल कृत 'प्राकृत भाषाओ का व्याकरण' (अनुवाद डॉ० हेमचद्र जोशी पटना 1958) पृष्ठ 55-65

2. देखिए : पदमावत : सम्पादक : डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल (भूमिका)
3. देखिए : संदेशरासक/संपादक : डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी—डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी। पृष्ठ 10
4. डॉ० माता प्रसाद गुप्त कृत रासो-साहित्य-विमर्श पृष्ठ-15
5. संदेशरासक : पृष्ठ : 143
6. वही। पृष्ठ : 25, 26
7. रासो साहित्य विमर्श : पृष्ठ : 39
8. रामचरित मानस : संपादक : पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र : भूमिका : पृष्ठ : 10
9. पृथ्वीराज रासो का पहला सम्पादन-प्रकाशन 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' द्वारा सन् 1883 में शुरू हुआ। परन्तु उसे वीच में ही रोकना उचित समझा गया। नागरी प्रचारिणी सभा ने डॉ० श्यामसुन्दर दास के सम्पादकत्व में इसे फिर प्रकाशित किया (सन् 1905) 'रासो' का यह संस्करण अपने अपपाठ के लिए कुख्यात रहा है।
10. पदमावत का पहला संस्करण संभवत: नवलकिशोर प्रैस, लखनऊ से प्रकाशित हुआ (सन् 1881)। काशी से भी पदमावत के प्रकाशन की सूचना मिली है (प्रकाशन काल : 1884 ई०)। इसके पश्चात् ग्रिअर्सन तथा सुधाकर द्विवेदी का संस्करण प्रकाशित हुआ (सन् 1910)। पं० रामचंद्र शुक्ल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल आदि विद्वानों ने अपने पूर्ववर्ती पदमावत के संस्करणों की 'पाठ' की दृष्टि से विस्तृत समीक्षाएं की हैं।
11. प्राचीन पांडुलिपियों के आधार पर 'मानस' तथा तुलसी की अन्य रचनाओं का सम्पादन 'भागवत प्रसाद खत्री' ने सम्भवत: सबसे पहले किया। कहा जाता है 'कि इस संस्करण में 'पाठ-विकृति' तथा 'प्रक्षेप' प्राय: कम ही आ पाए हैं'। (श्री कन्हैया सिंह : हिन्दी पाठालोचन और संपादन का इतिहास सम्मेलन पत्रिका भाग 44-संख्या।)
ग्रिअर्सन, पं० रामचंद्र शुक्ल तथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त प्रभृति विद्वानों ने मानस के पाठ पर पर्याप्त काम किया है। डॉ० माता प्रसाद ने अपने संस्करण को सर्वाधिक प्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयास किया है। 'मानस' पृष्ठ 15-21
12. कबीर के 'पाठ' पर काम करने वालों में डॉ० श्यामसुन्दर दास, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० रामकुमार वर्मा तथा डॉ० पारसनाथ तिवारी के नाम उल्लेखनीय है। प्रामाणिक पाठ के अनुसंधान की दृष्टि से इन सभी संस्करणों मे प्राय: वस्तुनिष्ठता तथा वैज्ञानिक दृष्टि का उत्तरोत्तर विकास दृष्टिगोचर होता है।
13. चांदायन : सम्पादक : डॉ० माताप्रसाद गुप्त : भूमिका : पृष्ठ : 60
14. आदिपर्व : सम्पादक : डॉ० सुखथंकर : भूमिका : पृष्ठ 51, 56 आदि

15 डा० ज्ञानचद शर्मा च दायन रचना तथा शिल्प पृष्ठ 35
16 Dr S M Katre, Indian textual criticism, p, 36
17 Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute, Part 15 page-169
18 Journal of Royal Asiatic Society-III, p-768
19 Journal of American Oriental Society, 48, page-188
20 Journal of Bhandarkar Oriental Research Society, 1929 p 283
21 Indian Textual Criticism p 71

—o—

द्वितीय पर्व

अध्याय : 6

पंजाब की पांडुलिपियां

गुरुमुखी लिपी 35 अक्षर, सस्कृत ध्वनिया, श—स, प=ख, द्वित्त अक्षर, लिपि कर्म, पक्ति बद्धता, मिलित शब्दावली, सशोधन, पारगभाग—पाडुलिपिया-मुद्रित प्रतिया, गुरुमुखी वाचना, क, ख, ग, घ, ङ प्रतिया। पारसभाग ग्रिथ ली 1, वर्तनी, विभक्ति चिह्न। मु 1। पारसभाग नागरी वाचना (नावा 1), योग वासिष्ठ भाषा, गीता माहात्म्य गर्भगीता, श्रीमदभागवत भाषा, पारस मणि (नावा 2), सपादन-पद्धति, भाषा-शैली, आतरिक विभाजन, 'पूर्वाभास', पजावी शब्दावली, पारस-भाग वश वृक्ष।

पाद टिप्पणिया 1—10

पजाब की प्राचीन पाण्डुलिपिया मुख्य रूप से गुरुमुखी लिपि मे उपलब्ध होती हैं। इन पाण्डुलिपियो की विशाल सख्या, इनके प्रतिपाद्य विषय की विविधता तथा इनका विधागत वैविध्य सचमुच आश्चयजनक है। किसी भी अन्य अहिन्दी भाषी क्षेत्र मे खडी-बोली गद्य तथा व्रजभाषा काव्य की इतनी सम्पन्न तथा प्राचीन परम्परा नागरी लिपि से भिन्न किसी अन्य लिपि मे उपलब्ध नहीं है।

विशाल सख्या पजाब की पाण्डुलिपियो की ठीक सख्या बतलाना सम्भव नहीं है। विभिन्न पुस्तकालयों, व्यक्तिगत सग्रहो तथा अन्य सग्रहालयो मे

उपलब्ध इन पाण्डुलिपियों की संख्या चार-पांच हजार के बीच में बताई जाती है।

प्रतिपाद्य की दृष्टि से इन पाण्डुलिपियों की विविधता चकित कर देती है। धर्म, दर्शन, इतिहास, पुराण, जीवनी, आइन-ए-अकबरी जैसी कृतियों के भाषानुवाद, गुप्तचरों की कूट सूचनाएं, समाचार-पत्र तथा उपयोगी साहित्य (फोटोग्राफी, फौजी शिक्षा आदि) विषयक विपुल हस्तलिखित साहित्य पंजाब में उपलब्ध है।[2]

पंजाब में उपलब्ध इस विशाल साहित्य का अनुसधान इस तथ्य का समर्थन करता है कि इस उच्च कोटि के साहित्य का निर्माण एक पर्याप्त शिक्षित तथा जागरूक समाज के लिए किया गया होगा। डॉ० लाइटनर ने 19 वी शताब्दी के मध्य में अम्बाला से अटक (अब पाकिस्तान) और डेरा गाज़ीखान (पाकिस्तान) से दिल्ली (तत्कालीन पंजाब की अंतिम सीमा) तक फैली हुए पंजाब की शिक्षण-संस्थाओं, शिक्षण-पद्धति, वहां प्रचलित पाठ्यक्रम तथा प्रसिद्ध शिक्षकों का विवरण दिया है। डॉ० लाइटनर ने पंजाब के गांव-गाव कस्बे-कस्बे तथा नगर-नगर घूमकर पंजाब मे प्राचीन समय से चली आ रही शिक्षा-पद्धति का आंखों देखा विवरण प्रस्तुत किया है। हिन्दू, मुसलमान और सिख आदि समाज के सभी घटक इस शिक्षण-पद्धति के अनुसार अपने-अपने केन्द्रों मे शिक्षा की उत्तम व्यवस्था करते थे। यह पद्धति जहां नितांत व्यावहारिक थी, वहां इसका उद्देश्य प्रबुद्ध, शिक्षित एवं जागरूक समाज की संरचना भी था।[3]

इस प्रबुद्ध समाज की ज्ञान-पिपासा को तृप्त करने के लिए सैकड़ों ग्रंथ लिखे गए, हजारों लिपिकों ने न ग्रंथों की प्रतिलिपियां तैयार की तथा इनसे भी कही अधिक पाठक इन ग्रंथों से शताब्दियो तक लाभान्वित होते रहे। इस तथ्य के प्रकाश में इस साहित्य का मूल्य और महत्व अकल्पनीय है।

गुरुमुखी लिपि

गुरुमुखी लिपि शारदा से विकसित एक क्षेत्रीय लिपि है[4]। इसके कितने ही रूपांतर पंजाब, सिंध तथा डुग्गर (जम्मू) आदि प्रदेशों में प्रचलित रहे है। इस लिपि का सम्बंध किसी धार्मिक संगठन से नही रहा। पंजाबी तथा इसके आस-पास की क्षेत्रीय बोलियों—पंजाबी से प्रभावित क्षेत्रों—की ध्वनियों को यथावत् अंकित करने में गुरुमुखी लिपि ही सक्षम है, इसलिए पंजाब के अनेक प्रतिष्ठित लेखकों—खड़ी बोली के गद्य-पद्य लेखकों—ने इसी लिपि को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया।[5]

35 अक्षर : गुरुमुखी लिपि में 35 अक्षर है और इसकी वर्णमाला का

पहला अक्षर है,'उ' । यह शायद 'ओ' का सक्षिप्त रूप है । इसके बाद अ तथा इ ये दो स्वर हैं । अ के साथ भिन्न भिन्न मात्राए लगाकर आ, ओ, औ तथा इ के ऊपर मात्राए लगाकर ए ऐ का काम लिया जाता है । चौथा अक्षर है, 'स' । इसी स को एक विशेष चिह्न के साथ श भी बना लिया जाता है । पाचवा अक्षर है, 'ह'[7] ।

इसके बाद क वर्ग (ख के लिए ष') च वर्ग, ट वर्ग त वग, प वग के पाच पाच वर्ण हैं । अन्त मे चार अतस्थ (य,र,ल व) हैं । इस प्रकार चौंतीस अक्षर नागरी तथा गुरमुखी लिपि में समान हैं । पैंतीसवा अक्षर 'ड़+ह' का सयुक्त ध्वनि रूप है । इसे गुरमुखी लिपि का विशेष अक्षर कह सकते हैं ।

गुरमुखी लिपि के प्राचीनतम शिलालेखो, हस्तलेखो तथा मुद्रालेखो का विवरण भाई कान्हसिंह ने दिया है । भाई साहेब के अनुसार गुरमुखी लिपि का प्रचलन आदिगुरु नानकदेव जी (15 वी शती) से भी प्राचीन है ।[6]

गुरमुखी लिपि के अक्षरो का तुलनात्मक रेखाचित्र (फलक 1-4 परिशिष्ट) मे दिया गया है ।

सस्कृत ध्वनिया सस्कृत-मूलक शब्दावली को यथावत् प्रस्तुत करते समय गुरमुखी के लेखको को कई कठिनाइयो का सामना करना पडा । क्योकि सस्कृत की बहुत-सी ध्वनिया गुरमुखी लिपि में नहीं थीं । प्रतिपाद्य विषय के अनुरोध पर इन ध्वनियो का अकन इन लेखको को अनिवार्य जान पडता था । फलत गुरमुखी लिपि के लेखको ने कुछ विशिष्ट चिह्नो की सहायता से मूल सस्कृत ध्वनियो को अकित करने का प्रयास किया ।

स्वर-ध्वनिया अपने दो मूल स्वरो—अ, इ—से ही विभिन्न मात्राओ के साथ 12 स्वरो का काम गुरमुखी के लेखक चला लिया करते थे । 'ऋ' तथा 'लृ' की आवश्यकता नहीं थी । इसी प्रकार 'अ' भी अनपेक्षित ही था । कुछ लेखक अ के साथ ऋ की मात्रा (ृ) लगाकर ऋ की सूचना दिया करते थे[7] । परन्तु ऐसे प्रयास कम ही हुए हैं ।

व्यजन-ध्वनिया गुरमुखी लिपि मे व्यजन वर्ण नागरी के वर्ण-क्रम के अनुसार है । केवल महाप्राण वर्णों का उच्चारण थोडा भिन्न है ।[8]

श—स गुरमुखी लिपि में श की व्यवस्था नहीं है । फलत श के लिए विभिन्न चिह्न लिपिको ने प्रयुक्त किए हैं । पारसभाग की सबसे प्रामाणिक तथा पूर्ण प्रति (प्रति क) मे श के लिए स की खडी पाई को बाई ओर थोडा सा घुमा दिया गया है । सामान्यत लिपिक श के स्थान पर स का ही प्रयोग

करते हैं। आधुनिक लेखक स के नीचे विन्दु लगाकर श की सूचना देते है। 'क' प्रति के कुछ पत्रों के फोटोचित्र परिशिष्ट में दिए गए हैं। इनमें 'श' का रूप कई जगह देखा जा सकता है।

ष=ख : गद्यकाल मे मूर्धन्य 'ष' का स्थान उच्चारण के स्तर पर 'ख' ने ले लिया था।[9] फलत: वंगला, मैथिली और राजस्थानी आदि भाषाओं के लिपिक ख के लिए ष ही प्रयुक्त करते है। गुरुमुखी लिपि मे भी ष=ख यह समीकरण मान्य है।

क्ष: ख्य,ख : क्ष के लिए गुरमुखी लिपि में कोई चिह्न नहीं है फलत: लिपिक (लेखक भी) इसके स्थान पर ख्य, ख और कभी-कभी पूर्वी प्रभाव से छ का प्रयोग करते हैं। पक्ष के स्थान पर पख्य, पख्ख या पछ्छ लिखा मिलता है। भाई कान्हसिंह ने क्ष के लिए क की पहली घुंडी में एक आड़ी रेखा लगाकर एक नया अक्षर वनाया तथा इसे अपने 'महान् कोश' (लिपिः गुरुमुखी) में प्रयुक्त भी किया। क्षपणक, क्षितीश आदि शव्द इसी नवीन अक्षर के द्वारा लिखे गए। परन्तु यह पद्धति चल नहीं सकी।

त्र: त्त, त्तर : पुत्त, पुत्तर, पंजावी मे प्रचलित है। कभी कभी त में र लगाकर त्र की सूचना दी जाती है।

ज्ञ: ग्य,ग: ज्ञ के लिए गुरुमुखी लिपि में कोई चिह्न नहीं है। सामान्यत: ग्य से ही ज्ञ का काम लिया जाता है। ग्ग भी ज्ञ के लिए प्रयोग किया जाता है, अलपग्ग (अल्पज्ञ)।

संयुक्त अक्षर : गुरमुखी लिपि में सयुक्त अक्षरों की भी व्यवस्था नहीं है। प्राय: 'स्वर भक्ति' की सहायता से संयुक्त अक्षरों का सरलीकरण किया जाता है। भक्त<भगत, संयुक्त<संजुगत तथा प्राप्त<परापत रूप में लिखे तथा वोले जाते हैं।

द्वित्त-अक्षर : द्वित्त अक्षरों को एक विशेष चिह्न 'अधक' (अधिक) के साथ लिखा जाता है। इस विशेष चिह्न का आकार विन्दु रहित अर्धचन्द्र (˘) जैसा होता है। परन्तु वहुत से लेखक शीघ्रता या असावधानी के कारण इस विशेष चिह्न का प्रयोग नहीं करते। फलत. अनुमान या अभ्यास से ही द्वित्त अक्षरों को पढा जाता है।

विंदी टिप्पी : गुरुमुखी लिपि में नासिक्य वर्णो का घुलंत रूप विंदी-टिप्पी द्वारा सूचित किया जाता है। प्राचीन लेखक अनुस्वार की सूचना 'विंदी' से देते थे और अनुनासिक के लिए 'टिप्पी' का प्रयोग करते थे। परन्तु अव यह

सूक्ष्म भेद प्राय देखने को नहीं मिलता। आज केवल टिप्पी का ही प्रयोग होता है।[10]

नागरी आदि अन्य लिपियों में भी अनुस्वार अनुनासिक का सूक्ष्म भेद समाप्त हो चुका है।

वस्तुत ध्वनि अकन के स्तर पर गुरमुखी लिपि तदभव शब्द-प्रधान पजाबी, ब्रज और राजस्थानी आदि भाषाओं की ध्वनियों को सफलतापूर्वक अकित करती आ रही है।

लिपि कर्म पजाब मे लिपिकर्म की एक निश्चित प्रक्रिया रही है। लिपि कर्म से पूर्व कई विधि विधान प्रचलित थे। दिन-तिथि-नक्षत्र का विचार किया जाता था। लेखनी-स्याही के सम्बन्ध मे कितने ही विधि निषेध प्रचलित थे। पजाब के समूचे लिपि-कर्म की प्रमुख विशेषताए ये हैं

1 पक्ति बद्धता
2 मिलित शब्दावली
3 विराम चिह्नों का प्रयोग
4 सशोधन की विविध विधिया

1 **पक्ति-बद्धता** प्रत्येक जागरूक लिपिक लिपिकर्म से पूर्व अपने लिप्यासन पर बहुत सीधी साथ ही अदृश्य-सी लाइनें लगा लेता था। तत्पश्चात इन लाइनो पर लिखना शुरू करता था। प्रत्येक अक्षर तथा मात्रा की लम्बाई चौडाई एक समान रखी जाती थी। फलस्वरूप आज भी यह लिपि कर्म एक साचें मे ढला-सा दिखाई देता है। लिपि-कर्म की यह प्रारभिक सफलता गिनी जाती थी। पारसभाग की 'क' प्रति में पक्तिबद्धता की प्रक्रिया का बहुत सुन्दर निर्वाह किया गया है। (देखिए फलक 10-14 परिशिष्ट)।

2 **मिलित शब्दावली** वाक्य के विभिन्न शब्द-खण्डो को अविभाजित रूप मे ही लिखा जाता था। वाक्य के अन्त मे लिपिक पूर्ण विराम के लिए *एक या कभी-कभी दो खडी पाइयो का प्रयोग करता था। पजाब की* पाण्डुलिपियो में मिलित शब्दावली के कारण लेख की निरतरता का आभास होता है।

3 **विराम चिह्न** प्राचीन लिपिक वाक्य के अन्त मे खडी पाई लगाकर पूर्ण विराम की सूचना देते थे। इसके अतिरिक्त कोई विराम चिह्न उस समय प्रचलित नही था। पद्य के प्रत्येक चरण की समाप्ति पर एक तथा अत मे दो विराम चिह्न लगाए जाते थे। प्राचीन पाडुलिपियो मे पूर्ण विराम के

प्रयोग को लेकर लगभग अराजकता-सी दिखाई पड़ती है । सामान्यत: गद्य अवतरणों मे समापिका क्रिया 'है', के बाद पूर्ण विराम पाया जाता है कभी कभी संयोजक 'अरु' से पूर्व भी पूर्ण विराम लगा दिया जाता है ।

खड़ी बोली की असश्लिष्ट वाक्य पद्धति के लिए इतना पर्याप्त था । परन्तु पारसभाग जैसी फारसी से अनूदित रचना में कुछ अधिक विराम चिह्न अपेक्षित थे । 'मूल धर्म का त्याग है' (अर्थात् धर्म का मूल त्याग है) जैसे वाक्य विराम चिह्नों के अभाव मे अस्पष्ट तथा भ्रामक बन जाते है । पारस भाग (क: प्रति) के पत्रों मे विराम चिह्नों का प्रयोग निरन्तर मिलता है । वाक्य संरचना की आंतरिक अन्विति के साथ विरामचिह्नों की संगति प्राय: कम ही मिलती है ।

4. **संशोधन** : लिपि कर्म में किसी भी समय कोई त्रुटि हो सकती है । इस त्रुटि का परिहार पंजाब के लिपिक इस प्रकार करते थे :

(अ) पूरे पाठ पर हड़ताल फेरकर उस पर शुद्ध पाठ लिख देते थे । यदि मूल से एक शब्द दुबारा लिखा गया हो तो इस शब्द पर भी हड़ताल फेर दी जाती थी ।

(आ) यथास्थान आड़ी रेखा लगाकर त्रुटित पाठ को हाशिए पर लिखा जाता था। ।

(इ) गोल बिन्दु (0) लगाकर त्रुटित मात्रा की सूचना दी जाती थी । 'र । 0 जा' से तात्पर्य था राजा । पारस भाग (क: प्रति) के पत्रों मे संशोधन के भी कुछ उदाहरण मिलते है देखिए, फलक 10-14 परिशिष्ट

पंजाब की पांडुलिपियों की परम्परा में 'पारसभाग' एक महत्वपूर्ण कृति है । इस कृति का इतिहास इस क्षेत्र की रचनाधर्मिता के क्षेत्र में एक कीर्तिमान स्थापित करता है ।

पारसभाग : (पांडुलिपियां, मुद्रित प्रतियां) :

पारसभाग खड़ी बोली गद्य की एक अद्वितीय रचना है । सम्भवत: 17वी शती के अंतिम दशकों या 18वी शती के प्रारम्भिक दशकों में अल-गजाली की एक विश्व-विश्रुत फारसी कृति 'कीमिआ-ए-सआदत' का हिन्दी रूपान्तरण अथवा अनुवाद पंजाब के किसी अज्ञातनामा लेखक ने सेवापंथ के तत्त्वावधान मे 'पारस-भाग' नाम से प्रस्तुत किया । (कीमिया = पारस, सआदत — भाग्य, भाग अर्थात् भाग्य का पारस) इस क्षेत्र की प्राचीन साहित्यिक परम्पराओं के

अनुरूप इस ग्रथरत्न को गुरमुखी लिपि मे लिखा गया। कालांतर मे इस ग्रथ की अनेक प्रतिलिपिया-लिपिको-प्रतिलिपिको-ने तैयार की। सेवापथ के तत्वावधान मे चलने वाली शिक्षा-सस्थाओ मे एक पाठय पुस्तक के रूप मे इसे स्थान मिला। सेवापथी डेरो मे 'विचारवान साध' इस का दैनिक पारायण करते थे। इस प्रकार पारसभाग को अपने युग मे अभूतपूर्व लोकप्रियता मिली।

इस लोकप्रियता ने पारसभाग को जहा एक महनीय कृति के रूप मे प्रतिष्ठित किया वहा इसके प्राचीन भाषाई रूपो को भी स्थान स्थान पर *निममता से (प्राय अनजाने ही) क्षतिग्रस्त किया। उत्तरोत्तर रूप मे लिपिको* की पीढिया पारसभाग के मूल रूप को अपनी अपनी भाषाई सोच तथा पकड के अनुसार सशोधित (?) करती रही।

पारसभाग अपपाठ

इससे भी आगे बढकर लिपिको का एक पूरा वर्ग पारस भाग के पाठ मे प्रक्षिप्त अश डालने का काम बडे मनोयोग से कर रहा था। वेदान्त-वचन, आदिग्रथ की पक्तिया जैसी सामग्री पारस भाग मे प्रक्षिप्त रूप से भरी जाती रही। कई बार कुछ 'विचारवान साध' अपने दैनिक पाठ के 'गुटको' मे हाशियो पर कुछ वचन या इसी प्रकार की सामग्री लिख लेते थे। उत्तरवर्ती लिपिक इस प्रक्षिप्त सामग्री को भी मूल-पाठ के साथ मिला देते थे। यहा तक कि सेवापथी-पाठशाला की एक उपलब्ध पाठ्य-पुस्तक (पारस भाग) के हाशियो पर स्थान-स्थान पर 'याद को' (करो) लिखा मिला। लिपिक ने इस वाक्य को इसी रूप मे पारसभाग का पाठ मान लिया। फलत पृथ्वीराज रासो जैसा 'भट्ट-भणत' पारसभाग के सदर्भ में 'लिपिक लिखत' भी तैयार होता गया।

कुछ लिपिक अपनी वैयक्तिक मान्यताओ के कारण भी पारसभाग के पाठ के साथ मनमानी करते रहे। सूफी सतों, यहूदी, ईसाई तथा इस्लामी पीरो फकीरो-पैगम्बरो तथा सैमेटिक विचारधारा की प्रामाणिक कृतियो के नाम यहा तक की उनके वचन भी मूल पाठ मे से निकाल दिए गए। इस प्रकार पारस भाग का मूलपाठ अपने मौलिक रूप से निरतर वचित होता रहा।

1850 ई० के बाद पजाब में लीथो पर पुस्तकें छपने लगी। पारस-भाग, योगवाशिष्ठ भाषा तथा हनुमान नाटक (रचियता हृदयराम भल्ला) *जैसी रचनाए लीथो मे छपी मिलती हैं।* लीथो प्रतियो के सम्पादक मुद्रक पाठ सबधी समस्याओ से अनभिज्ञ थे। फलत इन प्रतियो मे उपलब्ध पाठ प्राय विकृत तथा पर्याप्त असतोषजनक है।

गुरमुखी लिपि मे उपलब्ध पारसभाग की क, ख, ग, घ तथा ङ (5)

पांडुलिपियों, दो लीथो प्रतियों, एक मुद्रित प्रति तथा नागरी अक्षरों में प्रकाशित दो (कुल दस) प्रतियों का संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है।

पारसभाग : पांडुलिपियां : विगत 30 वर्षों में इन पंक्तियों के लेखक को पारसभाग की अनेक पूर्ण तथा अपूर्ण पाण्डुलिपियां पंजाब में मिली है। इन प्रतियों की लिपि गुरुमुखी है। पारसभाग की पाण्डुलिपियों की इस विपुलता से पारसभाग की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। पारसभाग का शुद्ध पाठ इन पाच महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियों के माध्यम से निर्धारित किया जा सकता है :—

1. क प्रति पारसभाग : गुरुमुखी वाचना (पाण्डुलिपियां)

पारसभाग की यह पाण्डुलिपि 865 क्रमांक पर पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ के पुस्तकालय मे संकलित है। इसमें 12" × 9" आकार के 590 पत्र (1180 पृष्ठ) हैं। प्रत्येक पत्र के दोनों ओर दो दो रेखाओं का रंगीन हाशिया लगाया गया है। पत्रांक पत्र के दूसरी ओर दाईं तरफ हाशिए के बाहर दिया गया है। प्रत्येक पत्र पर 15 पंक्तियां हैं। अक्षर सुवाच्य, नयनाभिराम लिपि-कर्म, विराम चिह्नों (दो खड़ी पाइयों) का सर्वत्र प्रयोग इस प्रति की उल्लेख-नीय विशेषताएं हैं।

पारसभाग की इस प्रति का पाठ प्राय: शुद्ध तथा सभी दृष्टियों से पूर्ण है। यत्र तत्र हाशिए से बाहर संशोधन भी किए गए हैं। संशोधन के लिए मूलपाठ के त्रुटित अंश से लेकर एक वक्र रेखा हाशिए के बाहर तक प्राय: लगाई गई है। हाशिए को छूती हुई एक गोल बिंदी लगाकर छूटी हुई मात्रा की सूचना भी आवश्यकतानुसार दी गई है। इस प्रति के कुछ सर्गों का शुद्ध पाठ-विभिन्न पांडुलिपियों तथा मुद्रित प्रतियों (गुरुमुखी एवं नागरी वाचनाओं) के आधार पर इस पुस्तक में यथास्थान प्रस्तुत किया गया है। सुविधा के लिए इस प्रति को 'क' प्रति नाम दिया गया है। इस प्रति के कुछ पत्रों के चित्र परि-शिष्ट में दिए गए हैं।

2. ख प्रति : 7" × 5" आकार के 526 पत्र (1052 पृष्ठ) इस प्रति में है। यह प्रति सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला में 2916 क्रमांक पर संकलित है। लिपि वर्तनी, मसी तथा लिप्यासन (कागज़) आदि की दृष्टि से क प्रति से यह प्रति पर्याप्त अर्वाचीन प्रतीत होती है।

इस प्रति में पाठ क प्रति की अपेक्षा अपूर्ण है। पारसभाग में उपलब्ध सूफी (इस्लामी) साधकों के नाम इसमें से प्राय: निकाल दिए गए हैं। परन्तु इसमें उपलब्ध पाठ पारसभाग की भाषा-शैली के प्राय: अनुरूप है। पारसभाग

मे शुद्ध पाठ के अनुसधान मे इस प्रति से पर्याप्त सहायता मिली है।

3 ग प्रति यह प्रति पजाब विश्वविद्यालय, चडीगढ के पुस्तकालय मे 1600 क्रमाक पर सकलित है। 5"×4" के आकार के 800 पत्र (1600 पृष्ठ) इस प्रति मे हैं। लिपि, वर्तनी, मसी आदि की दृष्टि से यह प्रति 50-60 साल पुरानी जान पडती है। पारसभाग के मूल पाठ को पर्याप्त काट-छाट के बाद इसमे रखा गया है। इस प्रति मे लिपि स्पष्ट, अक्षर छोटे तथा वर्तनी प्राय शुद्ध पाई जाती है।

हाशिया दो काली रेखाओ से लगाया गया है। लिपिक अथवा रचनाकाल की सूचना इसमे नही दी गई।

4 घ-प्रति सिक्ख रैफरेन्स लाइब्रेरी (स्वर्ण मदिर अमृतसर मे) यह प्रति 733 क्रमाक पर सकलित है। इसमे 7×5 आकार के 510 पत्र (1050 पृष्ठ) हैं। प्रतिलिपि काल इस प्रकार दिया है

'सवतसर उन्नीस सत, उत्तम आस्वन मास,
विजयादसमी थित कउ, लिख्यौ ग्र थ सुपरास"

अर्थात् सवत 1900 (1843 ई०) मे आश्विन की विजयदशमी तिथि को यह ग्रथ लिखा गया।

पारसभाग के सूफी (इस्लामी) अशों को इस प्रति मे सकलित नही किया गया। फलत, इस प्रति का पाठ अधूरा है।

5. ङ-प्रति कीट भक्षित, अधूरी परतु सुवाच्य अक्षरो मे लिखी इस पाडुलिपि मे पारसभाग के चारो प्रकरणो के लगभग 150 पत्र मिले। यह प्रति गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर मे 'गुमनाम' (रद्दी) पुस्तको के ढेर मे पडी मिली। लिपिक तथा लिपिकाल आदि विवरण इसमे नही था। आदि अत के लगभग सभी पत्र नष्ट हो चुके थे। पाठ की दृष्टि से-विशेषत अभारतीय अशों की अविकल उपलब्धि की दृष्टि से-इस प्रति की उपलब्धि महत्वपूर्ण सिद्ध हुई।

पारस भाग लीथो प्रतिया (लिपि गुरुमुखी)

सर्वप्रथम पारस भाग को पूर्ण अथवा अपूर्ण रूप मे प्रकाशित करने का श्रेय सभवत पजाब के लीथो छापेखाने वालो को है। इन छापेखाने वालो ने पारस भाग को गुरमुखी लिपि मे कई बार प्रकाशित किया। यहा पारस भाग की इन दो भिन्न-भिन्न लीथो प्रतियो का विवरण देना आवश्यक जान पडता है—

अ पारस भाग ग्रिथ (लीथो)

यह प्रति सिक्ख रैफरेंस लाइब्रेरी, (स्वर्ण मदिर) अमृतसर मे 740 क्रमाक

पर संकलित है। इसमें 18 × 22 आकार के 284 पृष्ठ है। मुद्रण तिथि 'मिती फगणे (फाल्गुण) 11 संवत 1983' (1876 ई०) दी गई है। संभवतः पारस भाग की यह प्राचीनतम मुद्रित (लीथो) प्रति है। इस प्रति के अन्त में लिखा है— 'सरदार जगजीत सिंह साहिब पुत्र कौर (कंवर)पिसौरा सिंघ साहिब पोत्रा (पौत्र) महाराजा रणजीत सिंह साहिब बहादरकी मरजी से यह पुस्तक छपी'।

सरदार जगजीत सिंह पंजाब केसरी महाराजा रणजीत सिंह के पौत्र थे। और बाराबंकी (उत्तर प्रदेश) में रहते हुए उन्होंने पंजाब के कई ग्रंथों को प्रकाशित करवाया। इस प्रति को 'लीथो प्रति' (ली-1) नाम दिया गया है।

इस प्रति के मुख पत्र पर लिखा है—

'अथ पारसभाग ग्रिथ लिप्यते। क्रित बाबा अड्डण साह साई लोक की। जो सब विदिया मे प्रवीन हुए हैं। अबि येह ग्रिथ सरदार जगजीतसिंघ साहिब जी आगिया अनुसारु से बहुत सुध छपकर समापत हुआ है। मैं आपणी बुध प्रमाण करि कहिता हौं। के इहु ग्रिथ सब सासत्रों का सार और वेदों का सिरोमण है प्रमारथ साधन और जगत के कारज बिवहारों की प्रवीणता और उत्तम बातों का ब्रनन अत सुगमता और सूपमता के सहित कीआ है। इस रीती का और कोई ग्रिथ गुरुमुखी मे नही है। चारों ब्रनों (वर्णों) के मानुषों कउं इसका पढना और अपणी संतान कउ पढावना उचत है। और जिस मांनुप कउं गुरुमुखी अषरों का कछुक बोध भी होगा वहु इसकी सार वसत कउं समझ सकेगा। इस ग्रिथ विषे बहुत धिआई और स्रग (सर्ग) हैं। पहिले धिआइ विषे अपणी पछाण का वरनन है।'' इत आदक और धिआइ और स्रग हैं। सरदार साहिब ने बहुत प्र (पर) उपकार का काम कीआ है जो ऐसे ग्रिथ छपवाई करिकै इस पंजाब देश विषे प्रविरत कीए हैं। निमसकार है उस प्रमातमां कउं जिसने हमारी सुआमी की अभिलाषा संपूरण करी। और यिह ग्रिथ ब इहतमाम किसनसिंह छापेखाना नानकप्रकाश सहर सिआल-कोटि मे छपकर समापत हूआ।'

इस संदर्भ से ये तथ्य सामने आते हैं :—

(क) इस लीथो प्रति के प्रकाशन समय (1876 ई०) तक पंजाब में हिन्दी (खड़ी बोली) गद्य की परम्परा अबाध रूप से चली आ रही थी।

(ख) इस गद्य में प्राचीन शब्द रूप और विभक्तियों का प्रयोग होता आ रहा था, उद्धृत संदर्भ के अनुसारू, एहु कउं, वहु, करि, हौं आदि शब्द इसी कोटि के हैं।

(ग) उद्धृत सदर्भ मे वर्तनी की एकरूपता नही है। वरनन, ब्रनन, चिह्न, यह आदि शब्दो मे यह विषमता देखी जा सकती है।

(घ) इस समस्त सदभ मे तद्भव शब्दो का व्यापक प्रयोग हुआ है। शब्दो के ध्वन्यात्मक उच्चरित रूप इसमे सुरक्षित हैं। कारज विवहार, सूषमता, सिरोमण, वसत (वस्तु) आदि शब्द इस दृष्टि से बहुत रोचक हैं।

(ङ) पाठ की दृष्टि से पारसभाग का पाठ इसमे बहुत शुद्ध नही है। पारसभाग के अभारतीय अवतरण इसमे प्राय विद्यमान हैं।

सारपारस भाग (लीथो)

सिक्ख रैफरेंस लाइब्रेरी (स्वर्ण मदिर) अमृतसर मे क्रमाक 4870 पर सकलित। सपादक चन्दा सिंघ दफेदार। इस प्रति को लीथो प्रति (ली-2) कहा जा सकता है।

इसमे मुखपत्र पर लिखा है—'पारस भाग जिस विच स्रीगुरुग्रंथ साहिब जी के प्रमाण भी किसी किसी अवसर पर दीए गए हैं' इससे स्पष्ट है कि इस प्रति से पारस भाग के अध्ययन मे कोई सहायता नही मिल सकती। क्योकि इसमे मूल पाठ प्रक्षिप्ताश डालकर विकृत किया गया है। पारस भाग का सक्षिप्त रूप इसे कहा गया है। मूल पारस भाग के अभारतीय अश इसमे नही है।

मूल्याकन इन लीथो प्रतियो मे पाठ सम्बन्धी बहुत विषमता है। लिपिको-मुद्रको के प्रमाद से बहुत सी प्रतियो मे प्राचीन शब्दरूप और विभक्तियो के स्थान पर आधुनिक शब्द आ गए हैं और प्राचीन शब्द-सम्पत्ति नष्ट हो गई है। इन दोनो प्रतियो के प्रारभिक सदर्भों की तुलना से पता चलता है —

(क) लीथो प्रतिया मे शब्दरूपों की प्राचीनता जानबूझ कर नष्ट की गई है और उनके स्थान पर आधुनिक शब्द रखे गए हैं।

(ख) लीथो प्रतियो मे यत्र तत्र प्रक्षिप्त अश डाल दिए गए हैं। 'एकोह दुतीउ नासती, (एक मेवाद्वितीयम्) जैसे वचन अमर्यादित रूप से इसमे डाल दिए गए हैं।

(ग) दोनो सदर्भ फारसी वाक्य विन्यास की छाया ग्रहण किए हैं।

मु-1 इन दो लीथो प्रतियो के अतिरिक्त पारस भाग को आधुनिक युग मे अनेक प्रकाशको ने गुरुमुखी अक्षरो मे कई बार सपादित-प्रकाशित किया। पारसभाग के प्रकाशित सस्करणो मे से प्रो० प्रीतम सिंह द्वारा सपादित-प्रकाशित पारस

भाग विशेष उल्लेखनीय है। पारसभाग की इस प्रति को 'मुद्रित प्रति, (मु. 1) कहा जा सकता है।

पारस भाग के प्रारम्भिक अवतरण की 15 पंक्तियों मे ली । ली 2 तथा मु० । प्रतियां 47 पाठांतर प्रस्तुत करती है।

इन तीनों प्रतियों मे अतिरिक्त शब्दों का प्रयोग चौंका देने वाला है। यदि प्रारम्भिक वचन जैसे 'पहला प्रकरण', 'मगलाचरण' मु० । मे शीर्षक मात्र मान लिए जाएं, क्योंकि शेप दो प्रतियो मे ये शीर्षक नही है, तो भी समस्या का समाधान नही होता।

लीथो प्रति 2 का 'एकोहं दुतीओ नासती' वाक्य प्रक्षिप्त जान पड़ता है। क्योंकि प्रति 1 मे इसके स्थान पर केवल 'अद्वैत' शब्द आया है। मु० 1 में इस वाक्य को और भी विकृत किया गया है। 'एको है, दुतीए नासती' इस पाठान्तर के साथ वाक्य पहेली सा बना दिया गया है। इस वाक्यांश का 'जिसको उचत है' के साथ कोई सम्बंध ही नही बनता। खेंच तान कर इसे विशेपण बनाने की चेष्टा की गई है। इसके स्थान पर ली । का अद्वैत शब्द एक प्रशस्त एवं समीचीन प्रयोग है।

इसी प्रकार 'अर सति चित अनंद जिसके गुण हैं' यह वाक्य लीथो प्रति : 1 में नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी वेदान्ती महाशय ने 'एकमेवाद्वितीयम्' ओर 'सच्चिदानंद' जैसे बहुप्रचलित वाक्यों और विशेपणों को इस संदर्भ में जानबूझकर डाल दिया है।

प्रक्षिप्त वाक्यों, वाक्यांशों और शब्दों के अतिरिक्त प्राचीन वर्तनी और शब्दरूपों के स्थान पर अर्वाचीन वर्तनी और शब्दरूपों की स्थापना ली 1, ली 2 तथा मु 1 इन तीनो प्रतियों मे प्राय: सर्वत्र हुई है।

वर्तनी : वर्तनी की एकरूपता में ली 2 का तो मानो विश्वास ही नहीं है। 'अरु' 'अर' दोनों का मुक्त प्रयोग इस प्रति में हुआ है। यही हाल 'कउ' और 'को' का है। अपणी, आपणी, आपुणी ये तीन रूप हैं एक शब्द के !

ली 1 इस दृष्टि से संतोपप्रद है। इसमें प्राचीन भाषा सामग्री पर्याप्त सुरक्षित है। वर्तनी अठारवी शती के साहित्य की परम्पराओं के अनुरूप है। उसतति (स्तुति) धिआउ, (अध्याय), ईस्वरज (ऐश्वर्य) पूरणताई (पूर्णता) आदि शब्दों में वर्तनी और शब्दों का लोकोच्चरित ध्वन्यात्मक रूप सुरक्षित रह गया है।

विभिक्त चिह्न : ली 1 में प्राचीन विभक्ति चिह्न अनेकश: मिलते हैं।

18वी शती के शेष साहित्य मे उपलब्ध ये विभिन्न चिह्न अपभ्रशो के ध्वसावशेष हैं। खडी बोली के गद्य मे इन चिह्नो से चिह्नित सदर्भ बहुत कम हैं। अत इन चिह्नो का ऐतिहासिक महत्व है और जब कभी इन चिह्नो को मिटा कर इन के स्थान पर दूसरे आधुनिक चिह्न रख दिए जाते हैं तो भाषा और साहित्य के पारखियो को मानसिक क्षोभ होना स्वाभाविक ही है। प्रस्तुत सदभ मे 'अणहुते', 'बहु', 'अतु', 'बुध्धिवानु' आदि शब्दो मे अपभ्र श विभक्तियो के अवशेष हैं।

मु 1 वतनी और विभक्ति चिह्नो की दृष्टि से बहुत दरिद्र है। प्राचीन विभक्तियो को तो इसमे से चुन-चुन कर निकाल दिया गया है। इसके अतिरिक्त *वाक्य-योजना की दृष्टि से भी इस प्रति के अधिकाश वाक्य 18वी शती के* नही अपितु 19वी और 20वी के प्रतीत होते हैं। पा सकता है' 'चल सकना, आदि सयुक्त क्रियाए इस शती के साहित्य मे इतनी सुलभ नही हैं। परन्तु मु 1 मे अनेकश इनका प्रयोग हुआ है। फलत पारस भाग के शुद्ध पाठ का निर्धारण करने म इस प्रति से पर्याप्त सहायता नही मिलती।

इसके अतिरिक्त लो 1 के मुख पृष्ठ पर छप अवतरण को प्रो० प्रीतम सिंघ ने अपने पारस भाग के 83-84 पृष्ठो पर उद्धृत किया है। प्रो० सिंघ ने इस छोटे से अवतरण को उद्धृत करते समय पाठ व्यत्यय इस प्रकार किया है —

लीथो 1	प्रो प्रीतम सिंघ
अनुमारु	अनुमार
मानुषो	मनुषों
अपणी	आपणी
काम	काम
सपूरण	सपूरन
पुत्र	सपुत्र
पिसौरा सिंघ	पिशोर सिंघ
बहाद्र	बहादर
पोत्रा	पोतरा

यदि ये पाठ व्यत्यय प्रो० प्रीतम सिंघ जी जैसे अनुभवी एव जागरूक सम्पादक के सस्करण मे भी मिल जाते हैं, तो 18वी शती के लिपिका की तो बात ही छोडिए।

हो सकता है, प्रो० सिंघ के संस्करण में ये पाठ-व्यत्यय 'प्रैस के भूतों की लीला' मात्र हों और प्रो० सिंघ जैसा कि उन्होंने लिखा भी है, लम्बी बीमारी के कारण प्रूफ आदि न देख सके हों। परन्तु प्रतिलिपि करते समय थोड़ी सी भी असावधानी से भाषा का रूप कितना विकृत हो जाता है, इसका अच्छा उदाहरण हमें प्रो० सिंघ के इस उद्धरण में मिल जाता है। यह भी याद रखना चाहिए कि यह संदर्भ लीथो प्रति में से उद्धृत है और लीथो से यथावत् उद्धृत करना पाण्डुलिपि से उद्धृत करने की अपेक्षा अधिक सरल है।

4. पारस भाग : (नागरी वाचना)

गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध पंजाब की कई प्राचीन पाण्डुलिपियों अथवा मुद्रित (लीथो) प्रतियों को खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई और नवलकिशोर प्रैस, लखनऊ जैसे अनेक प्रकाशकों ने कई-कई बार नागरी अक्षरों में छाप डाला। इस प्रकार की छपी पुस्तकों की संख्या बहुत अधिक है। इनमें से प्रमुख पुस्तकें ये हैं :

1. योगवासिष्ठभाषा
2. पारसभाग
3. गीता माहात्म्य
4. गर्भ गीता
6. श्रीमद्भागवत भाषा आदि।

इनके अतिरिक्त पंजाब के स्वामी चिद्घनानंद तथा सुदर्शनाचार्य पंजाबी आदि लेखकों की कितनी ही कृतियां हिन्दी के प्रमुख प्रकाशक नागरी अक्षरों में छापते रहे हैं। वस्तुत: 19वीं शती के अन्तिम तथा 20वीं शती के प्रारंभिक दो दशकों तक इस प्रकार की बहुत सी पुस्तकें गुरुमुखी लिपि से नागरी अक्षरों में लिप्यंतरित होकर हिन्दी के केन्द्रों से प्रकाशित होती रहीं।

पारस भाग का प्रथम नागरी संस्करण मुंशी नवल किशोर प्रैस, लखनऊ ने छापा (1883 ई०)। गुरुमुखी लिपि में लीथो प्रति इससे सात वर्ष पूर्व (1876 ई० में) छप चुकी थी। इससे पूर्व अथवा इसी समय नवल किशोर प्रैस से 'योग वासिष्ठभाषा' का भी प्रकाशन हो चुका था। वस्तुतः यह प्रकाशन भी खेमराज श्रीकृष्णदास के योगवासिष्ठ का पुन: मुद्रण मात्र था। क्योंकि इन दोनों प्रकाशन-संस्थानों से छपे योगवासिष्ठभाषा में आश्चर्यजनक समानताएं हैं। अस्तु।

योगवासिष्ठ के सम्बन्ध में इन दोनों प्रकाशकों ने योगवासिष्ठभाषा का पंजाब में रचित होना स्वीकार किया है। यद्यपि योगवासिष्ठ के लेखक—राम प्रसाद निरंजनी-सम्बन्धी विवरण केवल काल्पनिक ही नहीं बल्कि भ्रामक भी हैं।

परन्तु बेचारे पारसभाग के साथ तो इतना सौजन्य भी दिखाने की आवश्यकता नहीं समझी गई। पारसभाग को तो बिल्कुल हड़प कर जाना चाहते थे ये प्रकाशक।

इन संस्करणों में न तो कहीं पारसभाग का पंजाब प्रान्त में प्रचलित होना और न ही गुरुमुखी से इसका रूपान्तरित होना ही बताया गया है। और तो और मूल लेखक इमाम ग़ज़ाली का नामोल्लेख भी ये प्रकाशक न कर सके। फलस्वरूप नाम-धाम आदि ज्ञातव्य तथ्यों को छिपा कर इन प्रकाशकों ने पारस भाग को किसी 'श्रीमद् विद्वद्वृन्द शिरोमणि महात्मा युगलानन्द शरण जी वैकुण्ठ वासी अयोध्यानिवासी ने बड़े प्रयत्न से निज पुस्तकालय में संचित किया था' इतना मात्र लिखा है।

सौभाग्य समझिए कि इन वैकुण्ठवासी महात्माजी ने पारस भाग नाम यथावत् रहने दिया। न जाने क्यों यह सूत्र इस प्रकार खुले में छोड़ दिया? पारस भाग का यह नागरी संस्करण पंजाब के लीथो संस्करण से केवल सात वर्ष पीछे मुंशी नवल किशोर ने लखनऊ से प्रकाशित किया (1883 ई०)। साथ ही साथ इसकी रजिस्टरी भी करवा ली गई और सर्वसाधारण को यह सूचना दे दी गई

'कोई साहिब बिना इजाज़त इस मतबे के छापने का इरादा न करें' इस पारस भाग के पांच संस्करण 1913 ई० तक वहां छपे। इस संस्करण में 10 × 7 आकार के 617 पृष्ठ हैं।

इन पांच संस्करणों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि इस रचना का पर्याप्त आदर हिन्दी जगत् में हुआ। पारसभाग के इन लखनौआ संस्करण से दो तथ्य सामने आते हैं —

(क) पारसभाग का दृष्टिकोण और प्रतिपाद्य इतना व्यापक और सार्वभौम है कि सभी धर्मों, सम्प्रदायों और वर्गों में थोड़े से परिवर्तन के साथ अपनाया जाता रहा है। सूफी, ईसाई, सिक्ख और अयोध्यावासी वैष्णव सभी ने इसे अपने अपने दृष्टिकोण से अपनाया। सम्भवत पारस भाग की यह अद्वितीय विशेषता है।

(ख) गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध एकाधिक गद्यकृतियों ने खड़ी बोली के गद्य साहित्य को प्रौढ़ विचारों और सशक्त गद्य की अनुपम भेंट दी है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पारसभाग की किसी पाण्डुलिपि अथवा मुद्रित

प्रति को नागरी में लिप्यंतरित करने के अनंतर लखनऊ से प्रकाशित किया गया। इस प्रकाशन का प्रथम संस्करण किस वर्ष प्रकाशित हुआ, इस संस्करण के सम्पादक ने मूल पारसभाग के पाठ एवं उसके आन्तरिक विभाजन मे कितना परिवर्तन किया और इस परिवर्तन का कारण क्या था, आदि अनेक प्रश्नों का समाधान न तो प्रकाशित पारसभाग से होता है और न ही मुशी नवल किशोर प्रैस, लखनऊ से ही इस सम्बन्ध में कोई सूचना मिल सकी।

पारसभाग के इस नागरी संस्करण का गम्भीरता से अध्ययन करने पर पता चला है कि :

1. इस सस्करण में मूल पारसभाग का पाठ बहुत विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

2. मूल पारसभाग की प्राचीन भाषाई सम्पत्ति, उसमें सुरक्षित प्राचीन विभक्ति चिह्न तथा प्राकृत-अपभ्रंश युगों से चली आई ध्वनि सम्पदा का निर्मम-संहार नागरी पारसभाग में किया गया।

3. पारसभाग की मूल भावना-सार्वभौम आध्यात्मिक भावना-को एक संकुचित तथा साम्प्रदायिक रूप इस नागरी पारसभाग में देने का कुचक्र किया गया। मूल पारसभाग में उपलब्ध इस्लामी (सूफी) परम्पराओं, ग्रीक-दर्शन तथा सैमेटिक दृष्टि को नागरी पारस भाग में से प्रायः निकाल दिया गया। इसी संकुचित दृष्टि के कारण हजरत मूसा, हजरत नूह, ईसा मसीह, हजरत मुहम्मद के साथ साथ अफलातूनी दर्शन, प्रसिद्ध सूफी (इस्लामी) विचारकों के नामों तथा उनके विचारों को भी नागरी पारसभाग मे से प्रायः निकाल दिया गया। इस सामग्री के स्थान पर 'गणेश वंदना', 'राघव जू', श्री राम जी' आदि वैष्णव सामग्री अवैष्णव दृष्टि से नागरी पारसभाग मे स्थान स्थान पर डाल दी गई।

4. मूल पारसभाग के आन्तरिक विभाजन के साथ भी छेड़-छाड़ की गई। कही कही दृष्टिकोण के कारण प्रकरण के अन्तर्गत दो दो सर्गों को एक ही सर्ग में भी ठूंसने की भी अनधिकृत चेष्टा की गई।

5. पारसभाग की मूल उपजीव्य कृति कीमिआ-ए-सआदत या इह्या-उल-उलूम या इन कालजयी कृतियों के लेखक अल-ग़ज़ाली का उल्लेख नागरी पारस भाग में नहीं मिलता। इसके विपरीत मूल पारस भाग की प्रामाणिक प्रतियों में यह उल्लेख प्रायः मिलता है।

6. 'कीमिआ सआदत' को पारसभाग नाम से सेवापंथी साधकों ने अनूदित किया, इस तथ्य को छिपाने का पूरा प्रयास नागरी पारसभाग में

किया गया। मूल पारसभाग की रचना पजाब तथा गुरमुखी लिपि मे हुई, इस तथ्य की भी जान बूझ कर उपेक्षा की गई।

इस कृति को नागरी वाचना की प्रति (नावा 1) कहा जा सकता है।

पारसमणि (नावा 2)

पारसभाग के लखनऊ सस्करण को स्वामी सनातन देव ने पारसमणि ('अर्थात् पारसभाग का सशोधित सस्करण') नाम से प्रकाशित किया। पारसमणि का प्रथम सस्करण दिल्ली से निकला (सवत् 2009)।

स्वामी सनातन देव पारसमणि के 'निवेदन' मे लिखते हैं, 'प्राय पचास वर्ष हुए इस अमूल्य ग्रथ (कीमिआ-ए-सआदत) का ही हिन्दी भाषान्तर कराकर लखनऊ के सुप्रसिद्ध प्रकाशक मुन्शी नवल किशोर जी ने उसे (कीमिआ को) पारसभाग नाम से प्रकाशित किया था। पारसभाग की भूमिका मे उसे हिन्दू धर्म पुस्तकों का सार के आधार पर लिखा हुआ बताया गया है। इसमे सदेह नही, इसका हिन्दी अनुवाद हिन्दू साधको की हित दृष्टि से ही कराया गया होगा। यह नीति क्षम्य भी कही जा सकती है। किन्तु फिर भी साहित्यिक और ऐतिहासिक दृष्टि से तो इस ग्रथरत्न के मौलिक आधार और उसके लेखक का उल्लेख रहना ही अधिक उपयुक्त होता।' (पृष्ठ 2)

खेद है कि पारस मणि के सपादक ने पारसभाग के साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा इसके मौलिक आधार का उल्लेख स्वय भी नही किया है। वस्तुत पारसभाग की रचना सेवापथी केन्द्रो मे हुई, इस ऐतिहासिक सत्य से पारसमणि के विद्वान् सपादक परिचित न थे। न ही उन्हे यह पता था कि पारसभाग की अनक प्राचीन पाण्डुलिपिया गुरुमुखी लिपि मे उपलब्ध हैं। गुरुमुखी लिपि मे मुद्रित पारसभाग के एकाधिक सस्करणों से भी स्वामी सनातन देव अपरिचित थे।

पारसभाग की लोकप्रियता के सबध मे स्वामी सनातन देव का यह साक्ष्य निश्चय ही महत्वपूर्ण है

'बहुत लोग तो अन्य धर्म ग्रन्थों के समान ही इस (पारस भाग) का नित्य पाठ और मनन करने लगे। किन्ही किन्ही आश्रमों मे नित्य प्रति इसका प्रवचन होता है। अनेको सत और साधक इसका नियमपूर्वक स्वाध्याय एव मनन भी करते है।' (पारसमणि निवेदन पृष्ठ 2)

सपादन पद्धति अपनी सम्पादन पद्धति का स्पष्टीकरण स्वामी सनातन देव ने इस प्रकार किया है —

'इसे (पारसमणि) लिखते समय मैंने प्राय: वाक्यश: पारस भाग का अनुसरण किया है, तथापि कही-कही अनावश्यक समझ कर कोई वाक्य छोड़ भी दिए हैं और प्रसंग को स्पष्ट करने के लिए कोई-कोई नवीन वाक्य भी लिख दिया है। किन्तु भाव में कही किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नही किया।' (पारसमणि : निवेदन : पृष्ठ : 3)

आज पाठ संपादन की वैज्ञानिक विधियों के परिप्रेक्ष्य में इस संपादन नीति का समर्थन करना सम्भव नही है।

मूल ग्रंथ 'कीमिया' तथा इसके रचयिता 'मियां मुहम्मद गजाली साहब' की जीवनी तथा उनके कृतित्व का संक्षिप्त परिचय स्वामी सनातन देव ने पारसमणि में दिया है। निश्चय ही नागरी पारसभाग की अपेक्षा पारसमणि के संपादक की दृष्टि अधिक तथ्यग्राही है। इसके साथ साथ पारसमणि के संपादक यह भी जानते है कि 'कीमिया' का एक उर्दू अनुवाद-भावानुवाद-मियां फख्र-उद्दीन साहब ने किया था और यह अनुवाद भी मुन्शी नवलकिशोर प्रैस से 'अक्सीर हिदायत' (सही नाम :अकसीर-ए-हिदायत) नाम से छपा था।

किन्तु अकसीर-ए-हिदायत लाहौर के मौलाना शिबली कृत कीमिआ के उर्दू अनुवाद (गंजीन-ए-हिदाय्त) का ही रूपान्तर है, इस तथ्य से भी स्वामी सनातन देव परिचित नही हैं।

भाषा शैली : स्वामी सनातन देव के अनुसार,'जिस समय यह ग्रंथ (नागरी पारसभाग) लिखा गया था, तबसे अब तक भाषा एवं लेखन शैली मे बड़ा अन्तर पड़ गया है। अत:...वर्तमान जनता के लिए इसकी भाषा रुचिकर नहीं रही। इसी से कुछ मित्रों के आग्रह से मैंने इसकी भाषा का संशोधन करके इसे आधुनिक शैली से लिख दिया है'। (पारसमणि/निवेदन: पृष्ठ 2-3)

पारस मणि की भाषा-व्याकरण तथा प्रयोग की दृष्टि से-काफी गड़बड़ है। 'कराकर', 'नीति बरती गई है', 'कोई वाक्य...छोड भी दिए हैं' आदि प्रयोग साधु प्रयोग नहीं कहे जा सकते। इस प्रकार के कई प्रयोग 'निवेदन' में ही लक्षित किए जा सकते हैं।

फलत: नागरी पारस भाग की भाषा के संशोधन का स्तर तथा स्वर पारसमणि में न विशुद्ध आधुनिक ही रह सका है और न ही पारसभाग की प्राचीन पाडुंलिपियों के अनुसार पारसमणि की भाषा को मध्यकालीन खड़ी बोली गद्य के अनुरूप ही रखा जा सका है।

साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि नागरी पारसभाग की वह भाषाई

सम्पदा जो मूल पारसभाग की गुरमुखी पाण्डुलिपियो से ली गई है, पारस मणि मे भी यत्र तत्र मिल जाती है। 'पाथेय' के अर्थ मे फारसी 'तोशा' शब्द का प्रयोग पारसभाग की गुरमुखी प्रतियो के अनुरोध पर 'नागरी पारसभाग' तथा फिर पारसमणि मे किया गया है। इसी प्रकार 'करतूत या 'करतूति' आदि शब्द भी मूल पाण्डुलिपियों के आधार पर ही पारसमणि मे आए हैं। स्पष्ट है कि पारसमणि की भाषा-शैली से सपादक के भाषाई विवेक का पता नही चलता।

पारसमणि आन्तरिक विभाजन पारसमणि के सम्पादक ने नागरी पारसभाग के आन्तरिक विभाजन मे भी पर्याप्त 'फेर-फार' किया है। 'निवेदन' मे लिखा है कि 'इस ग्रथ के खड और उपखडो के विभाजन मे भी यत्किंचित् फेर फार किया है। मूल ग्रथकार (अल-गजाली) ने इसे चार 'उनवान' और चार 'रुक्नो' मे विभक्त किया है तथा उनमे से प्रत्येक 'उनवान और रुक्न' मे अनेको 'अस्लें' हैं। इसी तरह पारसभाग के लेखक ने भी इसमे चार प्रकरण रखे हैं तथा इनमे से प्रत्येक अध्याय और प्रकरण में अनेको सर्ग हैं। इसके चार अध्यायों को ग्रथ की भूमिका कह सकते हैं। (निवेदन पृष्ठ 3)

नागरी पारसभाग के इस आतरिक विभाजन को पारसमणि के सपादक ने इस प्रकार पुर्नविभाजित किया है —

'पारसमणि मे अध्याय और प्रकरणो का भेद न रख कर समान रूप से आठो विभागो को आठ उल्लासो के रूप मे रखा गया है तथा सर्गों की सज्ञा किरण रखी गई है।' (निवेदन पृष्ठ 4)

पारसमणि मे पुर्नविभाजन के इस अतर की ओर भी पाठक का ध्यान आकृष्ट किया गया है 'पारस भाग के प्रथम अध्याय मे जो दूसरे, तीसरे और चौथे सर्ग है उन तीनो को सम्मिलित करके दूसरी किरण लिखी गई है। जहा पारस भाग के प्रथम अध्याय मे दस सर्ग हैं वहा इस ग्रथ के प्रथम उल्लास मे आठ किरणें हैं।' (निवेदन पृष्ठ 4)

मूल ग्रथ मे इस प्रकार का परिवर्तन करना निश्चय ही अनुचित है।

पूर्वाभास पारसमणि के लेखक ने पूर्वाभास शीर्षक देकर नागरी पारस भाग के प्रारभिक अश को सपादित किया है (पृष्ठ 1-11)। 'पूर्वाभास' शब्द सपादन तथा प्रकाशन के क्षेत्र मे अश्रुतपूर्व शब्द है।

शीर्षक अनुच्छेद पारसमणि मे नागरी पारसभाग के पाठ को विभिन्न शीर्षकों-अनुच्छेदो मे विभाजित किया गया है। निश्चय ही इस व्यवस्था से

पारसभाग के पाठ को सरल-सुवोध वनाने का प्रयास किया गया है। अन्ततः यह कहना उचित जान पड़ता है कि पारसमणि नाम से प्रकाशित नागरी पारस भाग सम्पादन की दृष्टि से कोई विशेप महत्वपूर्ण रचना नहीं जान पड़ती। एक प्राचीन कृति को अनपेक्षित रूप से भाषा का आधुनिक रूप देकर पारस मणि के विद्वान् संशोधक ने पारसभाग के सम्बंध में 'लखनोआ' संस्करणों द्वारा फैलाई गई भ्रान्ति को और गहराया है।

इस प्रति को नागरी वाचना की प्रति 2 (नावा 2) कहा जा सकता है।

पंजावी शब्दावली : नागरी वाचना की दोनों मुद्रित प्रतियों में मूल पारसभाग की पंजावी (स्थानीय) शब्दावली यत्र तत्र पाई जाती है। अयोध्या तथा लखनऊ से प्रकाशित होने वाली किसी पुस्तक में पंजावी शब्दावली का मिलना लगभग एक अनहोनी सी घटना है। उदाहरण के लिए, नागरी पारस भाग के इन पंजावी शब्दों को देखा जा सकता है :

1. कुठारी : 'जव इस (जीव स्वभाव) को यत्न की कुठारी विपे डालिए'। (नागरी पारसभागः पृष्ठ 2)

पंजावी में कठौती को कुठाली कहा जाता है। इस कुठाली (काठ-थाली) को पूर्वी उच्चारण के अनुरूप कुठारी लिखा गया जान पड़ता है। ल तथा र का यह विपर्यय पूर्वी उच्चारण की विशेपता है। शब्द का अर्थ न समझते हुए संपादक ने ल को र वनाकर शब्द को कुरूप वना दिया।

पारसभाग के एक अन्य हिन्दी रूपांतर 'पारसमणि' में कुठारी शब्द निकाल कर वाक्य को इस प्रकार अनपेक्षित विस्तार दिया है :

'जव इसे प्रयत्न की आंच लगाकर ढाला जाता है।' (पूर्वाभासः पृष्ठ 3)

2 मनमती : 'यह जो मनमती झूठे लोग हैं, तिनकों अनुभव विद्या नही प्राप्त हुई।' (नागरी पारसभाग : पृष्ठ 26)

पंजावी में मन (वासनाओं) के दास को 'मनमतीआ' कहा जाता है। इसी अर्थ में गुरुमुख के विपरीत मनमुख शब्द भी प्रयुक्त होता है।

पारसमणि में इस शब्द का स्पष्टीकरण इस प्रकार से किया गया है :

'जो मनमाने चलने वाले मिथ्याभिमानी लोग हैं, उन्हें यह विद्या प्राप्त नहीं है।' (किरणः 7 पृष्ठ : 43)

वाक्य का यह अनघड़ रूप न तो नागरी पारसभाग के और न ही मूल पारसभाग के अनुरूप है।

3 सिरोपाव पजाबी मे सिर से पाव तक ओढाये जाने वाला सम्मान सूचक लबादा ('चोगा') 'सिरोपाव' कहा जाता है। पजाब में आज इस लबादे को एक उत्तरीय वस्त्र का रूप मिल चुका है। नागरी पारसभाग मे इस शब्द का सपादन-मूल पारसभाग के अनुरोध पर, सभवत इसका अर्थ, मूल्य या महत्व जाने बिना ही इस प्रकार किया है

बहुरि किसी को सुखरूपी सिरोपाव देते हैं' (पृष्ठ 46)

पारसमणि मे भी सिरोपाव को 'शिरोपाव' लिखकर मक्खी पर मक्खी मारी गई है

शिरोपाव तो सिरोपाव की मूल भावना के भी विपरीत जा पडता है।

4 लिखारी लेखक के लिए लिखारी शब्द पजाबी मे प्रचलित है। नागरी पारसभाग मे यह शब्द इसी अर्थ मे प्रयुक्त पाया जाता है 'यह अक्षर विद्यावान और समर्थ लिखारी बिना आप ही करके लिखे हुए हैं।' (पृष्ठ 50)

लिखारी के अतिरिक्त विद्यावान आप ही करके (स्वत, अपने आप) आदि प्रयोग पजाबी के ठेठ प्रयोग हैं।

पारसमणि में इस वाक्य को इस प्रकार सपादित किया गया है 'यह अक्षर तो किसी विद्वान और समर्थ लेखक के बिना स्वय ही लिखे गए है,' (किरण 6, पृष्ठ 85)

5-सयाणप (सज्ञान > सिञाणा), सिआणा आदि शब्द पजाबी के ठेठ शब्द हैं। खडी बोली मैं भी 'सयाना' प्रयोग मिलता है। परन्तु सिआन+प यह भाव वाचक रूप केवल पजाबी मे ही प्रचलित है। नागरी पारसभाग में इस शब्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ है। 'और जब अपणी सयानप और चतुराई करके निर्दोष हुआ चाहे।' (पृष्ठ 54)

पारसमणि में 'सयानप' के स्थान पर 'सयानपन' रखा गया है — 'जो पुरुष अपने सयानपन और चतुराई से निर्दोष बनना चाहता है।' (किरण 6 पृष्ठ 88)

सयानपन जैसे अप्रयुक्त शब्द तथा वाक्यगत 'अपने के साथ' चतुराई की व्याकरणिक असगति की और पारसमणि के सम्पादक का ध्यान नही गया।

6-पाधा उपाध्याय से विकसित पाधा या पाधा शब्द पजाबी का अपना शब्द है। नागरी पारसभाग मे इसका प्रयोग मूल पारसभाग के अनुरोध पर इस प्रकार हुआ है 'जैसे विद्या के न पढने करके पाधा की ताडना भी सत्य है।' (पृष्ठ 95)

पारसमणि में :

'विद्या न पढ़ने पर अध्यापक जी के द्वारा ताडित होने का दुख भी सत्य है।' (किरण : 8 पृष्ठ : 150)

पाधा के स्थान पर 'अध्यापक जी' रखा गया है।

7-सुचेत : सावधान, होशियार आदि अर्थो में सुचेत (सु-चेत) शब्द पंजावी का अपना शब्द है । नागरी पारसभाग मे इसका प्रयोग इस प्रकार मिलता है : 'तब वह श्रवण करके सुचेत होते है।' (पृष्ठ 127)

वे के स्थान पर वह का प्रयोग लेखक के सदोष वाक्य विन्यास का सूचक है।

पारसमणि में !

'उसे सुन कर वे सावधान हो जाते हैं।' (किरण : 5 पृष्ठ : 201) सुचेत के स्थान पर सावधान शब्द रखा गया है।

8-स्वादी : स्वादु के अर्थ में स्वादी शब्द पंजावी का अपना शब्द है। नागरी पारसभाग मे इसका प्रयोग इस प्रकार हुआ है :

'वादामों की गिरीवत् अधिक स्वादी है।' (पृष्ठ : 546)
पारसमणि में स्वादी के स्थान पर 'स्वादिप्ट' शब्द रख दिया गया है :

'वादाम की मीग के समान वहुत स्वादिप्ट होती है।' (किरण : 8 पृष्ठ : 802)

गिरी जैसे सरल शब्द के स्थान पर मीग एक फूहड़ प्रयोग है। स्वादिप्ठ के स्थान पर 'स्वादिप्ट' भी एक असाधु प्रयोग है।

9-इकल्ले : एकल से वना इकल्ला (अकेला) शब्द पंजावी का अपना शब्द है। इकल्ले इसका वहुवचन रूप है और इसका प्रयोग नागरी पारसभाग मे इस प्रकार हुआ है, 'एक भरोसवान का यही स्वभाव था कि इकल्ले ही वन विपे अटन करते थे' (पृष्ठ : 558)

भरोसवान शब्द मूल पारस भाग के 'भरोसेवान' शब्द के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है। मूलतः यह शब्द इस्लामी मान्यताओ पर ईमान लाने वाले 'मोमिन' का वोधक है।

पारसमणि मे इस वाक्य को इस प्रकार सम्पादित किया गया है, 'एक भगवदाश्रित भक्त का यही स्वभाव था कि वे अकेले ही वन में विचरते थे।' (किरण : 8, पृष्ठ : 819)

10-बर्जा 'वज' (त्याग) धातु का यह भूतकालिक रूप पजाबी की धातु रूपावली का अपना विशिष्ट रूप है। नागरी पारसभाग मे इसका प्रयोग इस प्रकार हुआ है 'महाराज ने व्यवहार से प्रसिद्ध बर्जा है— इस प्रकार नही वर्जा। (पृष्ठ 52)

पारसमणि मे इस वाक्य का सम्पादित रूप इस प्रकार है 'प्रभु ने स्पष्ट ही जीव को व्यावहारिक प्रवृत्ति मे पड़ने से रोका है— प्रयत्न करने से नही रोका।' (किरण 6 पृष्ठ 86)

पारसभाग की पाण्डुलिपियो मे बरजना, बरजा आदि शब्द आए हैं। उनका स्पष्टीकरण रोकना या मना करना आदि शब्दो से पारसमणि के सम्पादक ने ठीक ही किया है। परन्तु सम्पादन की दृष्टि से यहा गभीर त्रुटि विद्यमान है ही। पजाब के खडी बोली साहित्य में प्रायश प्रयुक्त इस प्रकार के अनेक पजाबी शब्दो तथा मुहावरो का उन्मुक्त प्रयोग पारसभाग की नागरी वाचना मे पाया जाता है। इस प्रयोग का कारण मूल पारसभाग (लिपि गुरुमुखी) का नागरीकरण करना मात्र है। इस तथ्य को छिपाने या झुठलाने का कोई भी प्रयत्न असफल ही रहेगा।

अतत यह अनुमान लगा लेना कदाचित उचित ही होगा कि नागरी पारसभाग के अयोध्यावासी सग्रहकर्ताओ या इसके लखनौआ प्रकाशको के पास मूल पारसभाग की कोई पाण्डुलिपि या 'ली 1' अथवा ली 2 प्रतियों मे से कोई एक प्रति अवश्य रही होगी। निश्चय ही यह प्रति बहुत शुद्ध प्रति रही होगी। अन्यथा नागरी पारस भाग के पाठ का मौलिक साम्य उपर्युक्त प्राचीन पाण्डुलिपियो अथवा लीथो प्रतियो मे उपलब्ध शब्दों, मूलपाठ, अध्याय, सर्ग एव इनके शीर्षको (आतरिक विभाजन) के साथ कभी न हो पाता।

नागरी पारसभाग के प्रकाशन से 200-250 साल पुरानी गुरुमुखी पाण्डुलिपिया पजाब मे विद्यमान हैं। कुछ लीथो प्रतिया भी नागरी पारसभाग से सात आठ वष पुरानी मिलती हैं।

स्पष्ट है कि विचार तथा भाषा से लेकर प्रकाशन तक नागरी पारस भाग पजाब की प्राचीन पाण्डुलिपिया का ही नागरीकरण मात्र है।

पारसभाग वश वृक्ष

पारसभाग की उपलब्ध पाडुलिपियो, लीथो तथा मुद्रित प्रतियो—विशेषत इन प्रतियो मे विद्यमान पाठ, अपपाठ, पाठ लोप तथा अतिरिक्त पाठ—आदि साम्य-वैषम्य को ध्यान मे रख कर पारस भाग का वशवृक्ष इस प्रकार बनाया जा सकता है
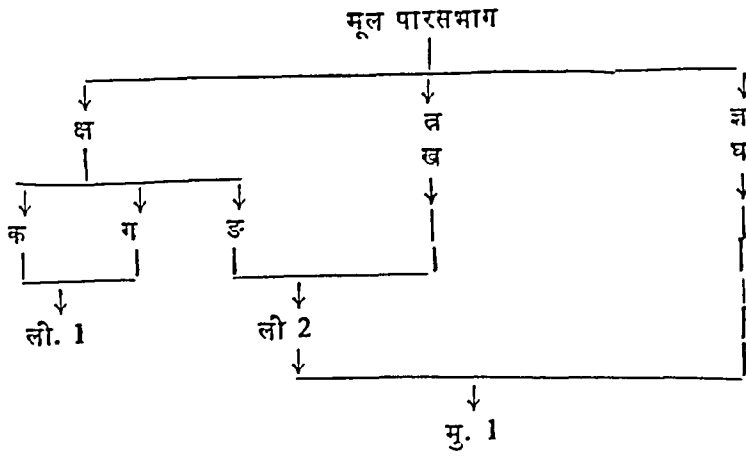
स्पष्टीकरण :

1. कीमिआ-ए-सआदत की प्रथम भाषा प्रस्तुति को 'मूल पारसभाग' कहा जा सकता है। मूल पारसभाग की यह प्रति आज संभवतः विद्यमान नहीं है।

2. इस मूल प्रति के आधार पर पारसभाग के पाठ की तीन परम्पराएं उत्तरोत्तर विकसित हुईं :

क्ष : अविकल पाठ तथा समूची प्राचीन भाषाई सम्पदा सम्पन्न प्रति-परम्परा (प्रतिनिधि प्रतियां : क ग ङ)

त्र : यत् किंचित् पाठ लोप, अतिरिक्त पाठ तथा अपपाठ के साथ पारस भाग की भाषा के मूल रूप को थोड़े-बहुत सुरक्षित रूप में प्रस्तुत करने वाली प्रति परम्परा (प्रतिनिधि प्रति ख)

ज्ञ : मूल भाषा के साथ-साथ मूल पाठ को अतिरिक्त पाठ तथा पाठ लोप की प्रणाली से (सचेष्ट) विकृत रूप में प्रस्तुत करने वाली प्रति परंपरा (प्रतिनिधि प्रति : घ)

इन तीनों परम्पराओं की मूल प्रतियां क्ष, त्र, ज्ञ कल्पित की गई हैं। ये प्रतियां उपलब्ध नहीं है। इनकी वंश परम्परा में पारस भाग की आज उपलब्ध प्रतियों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

3. क्ष प्रति से सर्वाधिक प्रामाणिक तथा अविकल पाठ-सम्पन्न 'क' 'ग' तथा 'ङ' प्रतियों के लिपित तथा प्रतिलिपित होने की संभावना है। मूल पारसभाग के शुद्ध पाठ तथा प्राचीन भाषाई रूपों (संज्ञा, क्रिया वर्तनी आदि) की यथावत् प्रस्तुति की दृष्टि से 'क' प्रति सर्वोत्तम कही जा सकती है। ग तथा ङ प्रतियों की प्रामाणिकता 'क' प्रति के साक्ष्य पर ही निर्भर है।

4. मूल पारसभाग की त्र तथा ज्ञ शाखाओं से सम्बद्ध 'ख' तथा 'घ'

प्रतिया प्रक्षिप्त सामग्री, अनधिकृत अधिक शब्द-पद अवाछनीय पाठ-लोप तथा अपपाठ के विविध प्रकारो की उत्तरोत्तर बहुलता के कारण पारसभाग-विशेषत पारसभाग की केन्द्रीय दृष्टि से निरतर हटती चली गई। चूकि अधूरे पाठ वाली इन खडित प्रतियो को छोटे आकार (गुटका रूप) में लिपित प्रति-लिपित करना अधिक सरल तथा श्रम एव समय की दृष्टि से भी अधिक सुकर था, इसलिए इन प्रतियों की वशज प्रतिया ही सर्वाधिक प्रचलित रही। वस्तुत ये खडित प्रतियाँ ही आधुनिक युग के प्रकाशकों-सपादकों को उत्तराधिकार में मिली।

5 18वीं शताब्दी के छठे-सातवें दशकों में पारसभाग की अधिकतर उपलब्ध ख तथा ध प्रतियो के आधार पर पाठ-अनुशासन सबधी किसी विवेक के बिना ही लीथो छापेखाने वालो ने पारसभाग को प्रकाशित किया। इस वग की दो प्रतिनिधि प्रतिया ली 1 तथा ली 2 हैं।

6 ली 2 के पश्चात पारसभाग को कई प्रकाशको ने आधुनिक प्रैस प्रणाली से प्रकाशित किया। इन प्रकाशनो का प्रतिनिधित्व मु० 1 प्रति करती है। स्पष्ट है कि मूल प्रति से अधिकाधिक दूर रहने के कारण तथा शुद्ध-पाठ-प्रस्तुति के प्रति पर्याप्त निष्ठा न रखने के कारण इन मुद्रित प्रतियो की विश्वसनीयता अधिक नही है। पाठ-सशोधन के लिए तो इन प्रतियों की उपयोगिता लगभग नहीं है।

पाद-टिप्पणिया

1 विवरण के लिए देखिए हथलिखता दी सूची, भाग 1-2, लेखक शमशेर सिंघ अशोक।
2 विस्तार के लिए देखिए गुरमुखी लिपि मे हिन्दी गद्य डॉ० गोविन्द नाथ राजगुरु। भूमिका।
3 विवरण के लिए देखिए हिस्ट्री आफ इडिजीनस सिस्टम आफ एजुकेशन इन दी पजाब सिन्स ऐनेक्सेशन एड इन 1882 डॉ० लाइटनर 1882। इस पुस्तक का दूसरा सस्करण भाषा विभाग, पटियाला से प्रकाशित हुआ है। 1965
4 देखिए वही भाग 3 पृष्ठ 44-45
5 देखिए गुरमुखी लिपि दा जन्म अते विकास। डॉ० गुरबख्श सिंघ। पजाब विश्वविद्यालय प्रकाशन। 1950
6 देखिए गुरुशबद रत्नाकर (महान कोश) गुरमुखी लिपि की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो के चित्र भी इस कोश मे दिए गए हैं। मुद्रण यत्रालयो द्वारा तैयार गुरमुखी अक्षरो का विवरण भी इस कोश मे दिया गया है।

7. साहिव सिंध (19 वी शती) ने लघुसिद्धांत कौमुदी का भापानुवाद किया। साथ ही कौमुदी का मूलपाठ भी गुरुमुखी अक्षरों में प्रस्तुत किया। ऋ, ॠ, ऌ, ॡ इन चारों स्वर ध्वनियों के लिए उन्होंने विशेष चिह्न वनाए। विवरण के लिए देखिए : गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य : डॉ० गोविन्दनाथ राजगुरु, पृष्ठ 205-208
8. डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा के अनुसार ये महाप्राण ध्वनियां पंजाब में 'चढती उतरती सुर' के साथ बोली जाती हैं। डॉ० सुनीतिकुमार चैटर्जी इस प्रवृत्ति को असाधारण मानते हैं। देखिए : दी ओरिजिन एंड डैवलपमेंट आफ वंगाली लैंग्वेंज : प्रथम भाग। पृष्ठ: 388
9. याज्ञवल्क्य शिक्षा में यह प्रवृत्ति लक्षित की गई है। देखिए :
   (क) मैथिली डायलेक्ट। ग्रिअर्सन। पृष्ठ 12-15
   (ख) कीर्तिलता और अवहट्ट भापा : डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृष्ठ 7-11
10. विस्तार के लिए देखिए : महान कोश। भाई कान्ह सिंघ। टिप्पी विंदी।

अध्याय 7

पारसभाग

पारसभाग, सामान्य परिचय, अज्ञात या उपेक्षित रचना, विशिष्ट उपलब्धि, अरबी यहूदी-यूनानी स्रोत, फारसी-स्रोत, भारतीय स्रोत, रचना ससार, पारसभाग प्रतिपाद्य, अनुवाद, आचार सहिता, जुहुद, तौबह, विभूतिपाद, विभूति वर्गीकरण, इस्लाम मे पूर्ववर्ती विभूतिया, इस्लामी विभूतिया, पैगबरी परम्परा, कुर्आन-हदीस-वचनामृत, सेवापथ । *कीमिआ-ए-सआदत, इह्या-उल-उलूम*, व्यावहारिक दृष्टि, इह्या आतरिक सरचना, रूब क्वाटर्स, रुक्न, अस्ल, 'ततकरा,' उर्दू अनुवाद, गजीन-ए-हिदायत, सर्ग, सर्ग वैषम्य, ।

(क) समान्य परिचय

सस्कृत मे एक कहावत है —

'ज्ञानम भार क्रिया बिना'

अर्थात यदि ज्ञान सभार को व्यावहारिक धरातल पर—उपयोगी बनाकर—प्रस्तुत न किया जाए तो ज्ञान केवल (मन-मस्तिष्क पर) एक अनपेक्षित भार ही है। इसलिए मात्र ज्ञान-सचय को 'चर्वित चर्वण', तथा 'केवल व्यसन' माना गया है और 'क्रियावान्' को ही 'पण्डित' पद से विभूषित किया गया है । पाठ-अनुशासन सबधी सैद्धान्तिक (शास्त्रीय) चर्चा के उपरात इन सिद्धानो के प्रयोग तथा विनियोग को ध्यान में रखकर 'पारस भाग' की पाठ-सबधी विभिन्न समस्याओ पर विचार किया जा रहा है। सिद्धात कथन को व्यावहारिक सदर्भ देना इस विचार चर्चा का उद्देश्य है। पाठ अनुशासन की दृष्टि से पारस भाग की प्रमुख विशेषताए इस प्रकार रेखाकित की जा सकती हैं

1. अज्ञात या उपेक्षित रचना :

नागरी तथा गुरुमुखी लिपियों में पारस भाग के प्रकाशित संस्करणों का इतिहास सौ वर्षों से भी अधिक पुराना है। इसे पारस भाग का सौभाग्य कहा जा सकता है। परन्तु इस प्रकाशित पारस भाग का दुर्भाग्य यह रहा है कि हिन्दी साहित्य के सभी इतिहास लेखक—निरपवाद रूप से—इसके सम्बंध में मौन हैं। फलतः हिन्दी के क्षेत्रों में पारस भाग लगभग एक अज्ञात रचना है।

गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध होने के कारण, पारस भाग को पंजाबी क्षेत्रों मे—हिन्दी क्षेत्रों से अधिक—जाना पहचाना गया। परन्तु वहा भी पारसभाग संबंधी अध्ययन अभी अपनी प्रारंभिक स्थिति मे ही है। अज्ञान तथा उपेक्षा की की शिकार इस महनीय रचना के महिमामंडित रूप का प्रस्तवन पाठ-अनुशासन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण जान पड़ता है।

2. वंश-वृक्ष : विभिन्न पांडुलिपियों, दो वाचनाओं तथा मुद्रित प्रतियों की सहायता से वंश-वृक्ष पद्धति पर-पारस भाग के शुद्धतम (मूल) पाठ की उपलब्धि संबंधी संभावनाएं पारस भाग मे अधिक हैं।

3. प्राचीन संदर्भ : पारस भाग की भाषा, पद-वाक्य संरचना संबंधी आनुषंगिक प्रश्नों पर विचार-अवतारणा से हिन्दी को प्राचीनतम संदर्भ दे पाना भी संभव हो सकता है।

4. उत्तरी भारत की पांडुलिपि परम्परा : उत्तरी भारत की पाडु-लिपि परम्परा, तथा लिपिकर्म संबंधी अनेक तथ्यों के प्रकाश में आने की संभावना भी पारसभाग के अध्ययन के साथ संबद्ध है।

5. फारसी से अनूदित प्रथम कृति : हिन्दी में फारसी से अनूदित सर्वप्रथम कृति होने के कारण अनुवाद की विभिन्न समस्याएं भी पारस भाग के साथ जुडी हुई है। रचयिता से संबंधित विभिन्न समस्याओं को पाण्डुलिपि-विज्ञान तथा पाठ-अनुशासन के प्रकाश में सुलझा पाने की क्षीण सी प्रकाश रेखा भी पारस भाग के विधिवत् अध्ययन मे ही निहित है।

फलतः

1. पारसभाग : परिचय तथा प्रतिपाद्य,
2. पांडुलिपियों : मुद्रित प्रतियों तथा दो नागरी वाचनाओं के आलोक में पारसभाग का पाठ,
3. पारसभाग : पाठ संबंधी प्रमुख समस्याएं
4. पारसभाग : प्रमुख सर्गों की प्रस्तुति

इन शीर्षकों के अन्तर्गत पाठ-अनुशासन के विभिन्न मानदण्डों का विनियोग पारसभाग के पाठ के संबंध में सर्वप्रथम यहां किया जा रहा है।

पारसभाग विषयक प्रस्तुत अध्ययन विगत 30 वर्षों की सतत संलग्न साधना का परिणाम है। पारसभाग की प्रामाणिक तथा प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतियों की खोज तथा तत्सम्बन्धी अन्तहीन भटकन, पारसभाग के शुद्ध-पाठ का निर्धारण, पारसभाग के उत्तरोत्तर परिवर्तित-परिवर्धित भाषा-रूपों के अम्बार में से मूल भाषा का उद्धार, अरबी फारसी-उर्दू से पूर्णत अनभिज्ञ होते हुए भी अंग्रेजी के माध्यम से पारसभाग के इस्लामी (सूफी) स्रोतों का अध्ययन, पारसभाग के उपजीव्य अरबी-फारसी के मूल ग्रंथों का अनुसंधान, पारसभाग के अज्ञात लेखक (लेखकों-अनुवादकों) के संबंध में अनेक ऊहापोह, पारसभाग के सम्बन्ध में पंजाबी, हिन्दी, उर्दू में उपलब्ध या संकेतित प्रकाशित-अप्रकाशित सामग्री का विवेचन-विश्लेषण तथा पारसभाग के प्रणयन सम्बन्धी समूचे परिवेश की समग्र प्रस्तुति जैसी अनेक कोटिक विकट समस्याओं से जूझते हुए पारसभाग के 'पारस' का साक्षात्कार इन पंक्तियों के लेखक को हुआ है।

पारसभाग का प्रतिपाद्य कालक्रम की दृष्टि से सात-आठ सौ वर्षों में फैला हुआ है। पारसभाग एक ओर तो ईसा की 11वीं-12वीं शती तक विकसित इस्लामी (सूफी) चिन्तन तथा साधना पद्धति से जुड़ा हुआ है तो दूसरी ओर इसमें 17वीं-18वीं शती तक भारत विशेषत पंजाब में विकसित अनेक आध्यात्मिक सरणियां तथा साधना पद्धतियां भी समाहित हुई हैं। स्पष्ट है कि चिन्तन तथा साधना के क्षेत्र में इस्लाम तथा भारतीय चिन्तन एवं साधना के सर्वश्रेष्ठ तत्वों से पारसभाग की विचार भूमि का निर्माण हुआ है।

सांस्कृतिक आयाम की दृष्टि से पारसभाग एक ओर तो पूर्व-इस्लामी, यूनानी, यहूदी, ईसाई तथा इस्लामी चिन्तन तथा साधना के सर्वोच्च बिन्दु को आत्मसात् किए हुए है तो दूसरी ओर पारसभाग भारतीय चिन्तन के सर्वोत्तम धरातल पर भी प्रतिष्ठित है। वस्तुत भारतीय साधना पद्धति की अन्तःसलिला पारसभाग के आयातित चिन्तन के अन्तराल में कहीं भी लक्षित की जा सकती है।

हिन्दी के विगत भाषाई वैभव को रूपायित करती हुई पारसभाग की भाषा आधुनिक हिन्दी की अनेक भाषाई उलझनों, वर्तनी-रूप-प्रयोग की अनेक समस्याओं पर ऐतिहासिक प्रकाश प्रस्तुत करती है।

पारसभाग क्या है ?

पारसभाग शब्द का अर्थ है भाग्य का पारस। मूल फारसी पुस्तक[4] 'कीमिआ-ए-सआदत' का यह केवल शाब्दिक अनुवाद ही नहीं है, वरन् फारसी

की अपनी विशिष्ट समास-संरचना-पद्धति का अनुसरण करते हुए पारस (कीमिआ—पारस, सआदत—भाग्य) यह नामकरण किया गया है।' कीमिआ' के बगला देश मे हुए बंगला अनुवाद को 'सौभाग्य-स्पर्श-मणि' यह नाम दिया गया है। पंजाब और बंगला देश के बीच भौगोलिक तथा काल-गत अन्तराल को पार कर 'भाग' तथा 'सौभाग्य' शब्दों के इस प्रयोग-साम्य से पारसभाग के प्रतिपाद्य ने भूगोल तथा इतिहास की दूरियों को मानों विजित कर लिया है। मानवीय चिन्तन की इससे उदात्त भूमि कौन सी हो सकती है ?

पारसभाग के सम्बन्ध में प्रारम्भिक जिज्ञासा इसके स्वरूप, इसके प्रतिपाद्य तथा इसके रचनातंत्र के सम्बन्ध में ही सम्भावित है। परन्तु पारसभाग के व्यापक परिवेश, इसके अन्तहीन आयाम तथा इसके चिन्तन की अतल गहराइयों को ध्यान में रखकर यह जिज्ञासा अधिक सार्थक हो सकती है कि पारसभाग क्या नहीं है ? आकाशीय ग्रह-नक्षत्र तथा सौरमंडल की समूची विभूतियों से लेकर समुद्रतल में छिपी रत्नराशि तक तथा भौतिक शरीर के स्थूल अवयव संस्थान से लेकर मानवीय मन-हृदय-आत्मा के आध्यात्मिक तत्वों तक पारसभाग की गति अप्रतिहत है। जीव-जन्तु-जगत अर्थात जैविकी, फल-फूल आदि वानस्पतिकी एवं हीरा, पन्ना, लाल आदि खनिज सम्पदा के अनेक ज्योतिकणों से पारसभाग का प्रतिपाद्य उद्भासित है।

राजदरबारों के कूट-चक्रों तथा वहां की रक्त-रंजित राजनीति से लेकर सूफी दरवेशों तथा इस्लामी साधकों के साधना-कक्षों तक, व्यापार के घोर भौतिकवादी वातावरण, मुहम्मदी शरह के कट्टर समर्थकों, 11वीं-12वी शती के इस्लामी शिक्षा केन्द्रों (बग़दाद, काहिरा के विश्वविद्यालयों) से लेकर ज़िक्र (नाम-जप-कीर्तन आदि) शुक्र, सब्र और तोबह (तिआग : पारसभाग) की कठोर साधना में लीन दरवेशों की जीवनचर्या तक पारसभाग का लेखक—मूल के अनुरोध पर—अनेक महनीय तथ्य संकलित करता चलता है।

मानवीय ज्ञान-विज्ञान तथा युगों युगों से साधकों द्वारा अनुभूत जीवन-सत्य के इतने विपुल सम्भार को आत्मसात् कर हिन्दी जगत के समक्ष अद्भुत ज्ञान-राशि प्रस्तुत करने वाली एक विशिष्ट रचना का नाम है, पारसभाग। वस्तुतः ज्ञान विज्ञान के इस अपूर्व भण्डार के सम्बन्ध में यह कहना अधिक संगत होगा कि मानव की सर्वोत्तम बौद्धिक उपलब्धियों के साथ साथ सार्वभौम आध्यात्मिक साधना के भी अनेक तत्व पारसभाग में समाहित हुए हैं। वस्तुतः पारसभाग एक बहुआयामी रचना है। इस महान् कृति के चाहे किसी भी आयाम को लें, इसकी उदात्त गम्भीरता चकित कर देती है। अनेक बार ऐसा हुआ है कि जब पारसभाग के प्रतिपाद्य को पकड़ने का प्रयास किया तो इसका भाषाई वैभव हाथ

से फिसलता रहा और इस वैभव को समेटते समेटते कई बार पारसभाग की विचार-सम्पदा आखो से ओझल होती रही।

अनुवाद

मूल (इह्या-कीमिया) के साथ पारसभाग की अक्षरश तुलना करना सम्भव न हो सका। परन्तु मूल ग्रन्थ के सम्बन्ध मे जितना कुछ विवरण अंग्रेजी भाषा मे उपलब्ध हो सका तथा अधिकारी विद्वानों की कृपा से जो कुछ मिल सका उसका पारायण करते समय पारसभाग के अनुवाद कौशल का साक्षात्कार हुआ।

विशिष्ट उपलब्धि

सूफी मत की सैद्धांतिक शब्दावली को रूप तथा योनि परिवतन कर विशुद्ध भारतीय परिवेश में प्रस्तुत करना, पारसभाग की एक विशिष्ट उपलब्धि है। फरिश्ता के लिए देवता, शैतान के लिए 'माइआ' (माया) आरिफ के लिए 'जगिआसी' (जिज्ञासु), तौबह के लिए तिआग (त्याग), तवक्कुल के लिए भरोसा (भरोसेवान), मारिफ के लिए 'बूझ' ईमान के लिए प्रतीति एव 'मन्शा' के लिए 'मनसा' जैसे शब्दो का बहुरगा निर्माण पारसभाग की अपूर्व भाषाई क्षमता का प्रमाण है। अल्लाह, खुदा और रब्ब जैसे इस्लामी शब्दो के स्थान पर भारतीय परिवेश तथा भारतीय सस्कारो के अनुरूप महाराज भगवत और साईं, हजरत मुहम्मद के लिए महापुरुष दरवेश के लिए साईंलोक, नमाज के लिए भजन जैसा शब्द प्रयोग पारसभाग को यात्रिक विधि से अनूदित पुस्तक के स्तर से ऊचे उठाकर एक मौलिक रचना के पद पर प्रतिष्ठित कर देता है। पारसभाग के रचनातत्व का यह कलात्मक आयाम पारसभाग के अध्ययन की एक नई दिशा की ओर सकेत करता है।

पारसभाग रचना के तीन स्रोत

अरबी-यहूदी-यूनानी-स्रोत

पारसभाग ही हिन्दी की एक मात्र ऐसी कृति है, जिसका मूल 'इह्या-उल उलूम' (अरबी-भाषा) मे है। 'इह्या, के रचयिता हैं स्वनाम-धन्य अबू हामिद मुहम्मद अल-गज़ाली[5] (जन्म 1059 ई)। इस कृति को विचारो के क्षेत्र मे विगत सात-आठ सौ वर्षों से विश्व स्तर का अद्वितीय सम्मान मिलता आ रहा है।

फारसी स्रोत

मूल ग्रंथ 'इह्या' को पारसी मे अनूदित किया स्वय ग्रथकार अल गज़ाली ने। इस अनूदित कृति का नाम है कीमिआ-ए सआदत। कीमिआ (रसायन) एक प्रतीक शब्द है। मानव के समस्त शारीरिक तथा मानसिक विकारो का उदात्ती-करण कर मानव मन तथा मस्तिष्क को निर्विकार बना कर 'सौ टच सोना'

बनाने का उपक्रम इस आध्यात्मिक रसायन से किया गया है ! निर्विकार भाव की प्राप्ति को'सआदत' भाग्य-सौभाग्य माना गया है । क्योंकि आध्यात्मिक साधना के सर्वोच्च सौभाग्य की उपलब्धि इस मानसिक रसायन विधि से ही सम्भव है । यही कारण है कि कीमिआ तथा इसके अनुरोध पर पारसभाग में मन की गहराइयों में पनपने वाले सूक्ष्मतम विकारो को भी लक्षित किया गया है । इन विकारो के शमन-निमित्त शम-दम आदि विविध उपचारो की एक विस्तृत व्यवस्था भी अल-गजाली ने की है ।

भारतीय स्रोत :

पारसभाग का लेखक – मूल के अनुरोध पर—'भाग्य का रसायन' इस नामकरण से सतुष्ट प्रतीत नही होता । उसने स्थूल रसायन के स्थान पर पारस शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट दृष्टि से किया है । रसायन की अपेक्षा पारस भारतीय आध्यात्मिक साधना के परिवेश में अधिक प्रचलित एवं बहुशः प्रयुक्त शब्द है । विशेषत पजाब की साहित्यिक परम्पराएं रसायन की अपेक्षा पारस की महिमा को विशेष रूप से स्वीकारती है ।

पंचम गुरु अर्जुन देव जी के शब्दों में :

'लोहा हिरन होवै संगि पारस'

(आदि ग्रंथ । कान्हड़ा । महल्ला : 5)

अर्थात लोहा पारस के सम्पर्क से हिरन (हिरण्य : सोना) बन जाता है ।

वस्तुत: स्थूल तथा दृश्यमान रसायन के स्थान पर पारस के सूक्ष्म तथा स्थूल रसायन से कही अधिक प्रभावी शक्तिपुंज को ध्यान में रखकर 'पारस' यह अन्वर्थक नाम 'रसायन' (कीमीआ) के स्थान पर रखा गया है । कीमिआ-ए-सआदत का यह नया नाम एक ओर तो पारसभाग के लेखक (अनुवादक) की स्वतन्त्र प्रवृत्ति की सूचना देता है तो दूसरी ओर उसकी कल्पना शक्ति के अपूर्व ऊर्जा-स्रोत का भी परिचायक है । वस्तुत: कीमिआ के भाषानुवाद (पारसभाग) में अरबी-फारसी (इस्लाम) की पौराणिक तथा अध्यात्मिक साधना से सम्बन्धित विशाल शब्दावली को प्रायः भारतीय परिवेश के अधिकाधिक निकट रखा गया है ।

इस प्रकार पारसभाग मूलतः मानवीय चिन्तन के तीन विशिष्ट सांस्कृतिक आयामों से जुड़ी हुई रचना सिद्ध होती है । इतने महान सांस्कृतिक दाय से सम्पन्न अन्य कोई रचना कदाचित् हिन्दी में नहीं है । पारसभाग इस सांस्कृतिक संगम की गौरव गाथा का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है । स्पष्ट है कि विभिन्न युगों में मानव ने सार्वभौम स्तर पर जिन बहुआयामीय सांस्कृतिक तत्वों का साक्षात्कार किया, उन तत्वों के प्रति सक्रिय भावनात्मक निष्ठा पारसभाग में पाई जाती है ।

रचना ससार

पारसभाग के माध्यम से अल-गजाली के रचना ससार को पढते-परखते लगभग तीन दशक का युग बीत चुका है। पर अभी भी यही लगता है कि इस रचना-ससार की समूची रचनाधर्मिता को पूरी तरह पकड पाना सम्भव नही हो सका।

वस्तुत गजाली के इस रचना ससार से परिचित होना अपने आप मे एक उपलब्धि है। गजाली की अपूर्व मेधा शक्ति, विवेचन-विश्लेषण प्रधान उसका अप्रतिम लेखन, उसकी महनीय आध्यात्मिक अनुभूतिया तथा उसका काव्योपम गद्य पारसभाग के झीने आवरण मे से भी मानो छलक पडता है। निश्चय ही गजाली के साधना मडित इस महान कृतित्व तथा अनन्त श्री सम्पन्न उसके लेखन के प्रति मात्र आभार प्रदर्शित कर उरिण नही हुआ जा सकता।

(ख) पारसभाग प्रतिपाद्य

जाति, धर्म, सम्प्रदाय, रग, नस्ल, भूगोल तथा इतिहास की सकीर्णताओ का परिहार कर सार्वभौम मानव की प्रतिष्ठा करने वाली विश्व की महनीय रचनाओं मे पारसभाग का नाम प्रथम पक्ति मे रखा जा सकता है। अरबी तथा फारसी भाषाओ मे इसका मूल रूप तैयार हुआ तथा कालातर मे पारसभाग की उपजीव्य कृतिया 'इह्या' और 'कीमिआ' मानवीय चिन्तन को गम्भीरता से प्रभावित करने वाली महान् रचनाए सिद्ध हुईं। अपने प्रारम्भिक क्षणो से ही ये रचनाए मानव मन को इस प्रकार भा गईं कि अपनी रचनाभूमि से बाहर दूर-दूर तक इन ग्रथ रत्नो की तेजस्विता चिन्तन तथा साधना के क्षेत्रो मे अनुभव की जाने लगी।

अनुवाद

अल-गजाली का लेखन विशेषत उसकी अप्रतिम-कृति कीमिआ-ए-सआदत को सार्वभौम स्तर का सम्मान मिला। यही कारण है कि विश्व की प्राय सभी सम्पन्न भाषाओ मे कीमिआ के विभिन्न अनुवाद हुए। अग्रेजी तथा उर्दू आदि भाषाओं मे तो कीमिआ के एक से अधिक पूर्ण या आशिक अनुवाद उपलब्ध हैं।

नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता की एक सूचना के अनुसार कीमिआ को यूरोप की अनेक भाषाओ—लैटिन, जर्मन, फ्रैंच, इतालवी, पुर्तगाली, स्पेनिश, डच आदि—मे अनूदित किया गया। तमिल, तेलुगु, बगला, मराठी आदि भारतीय भाषाओं मे भी कीमिआ के अनुवाद विद्यमान हैं। 'कीमिआ' के चीनी अनुवाद कैंटन, शघाई तथा पेईचिंग के पुस्तकालयो मे स्वय देखने का सौभाग्य मुझे मिला।

इस चीनी अनुवाद के कुछ अंश चीन सरकार ने मुझे भेंट भी किए थे।

आश्चर्य की बात यह है कि इन अनुवादों में कालक्रम की दृष्टि से सबसे पहला अनुवाद पंजाब के सेवापंथी साधकों ने 18वी शती में तैयार किया। विश्व स्तर की इस कृति की महिमा को सबसे पहले पहचान कर इसके अज्ञात अनुवादक ने मानव चिन्तन धारा के कई विन्दुओं को एक भावनात्मक अन्विति प्रदान की है। इस भावनात्मक अन्विति के प्रमुख विन्दु ये हैं :

1-आचार संहिता :

कीमिआ-ए-सआदत के रूप में कोई आचार संहिता तैयार करना न तो ग़ज़ाली को ही अभीष्ट था और न ही 'कीमिआ' का हिन्दी अनुवादक ही पारसभाग में कोई विशिष्ट साम्प्रदायिक आचार संहिता प्रस्तुत करने जा रहा था। परंतु ग़ज़ाली ने अपनी विशाल एवं गंभीर अनुभूतियों को अपनी आध्यात्मिक साधना की पृष्ठभूमि में अवश्य रखा है। फलस्वरूप आध्यात्मिक साधना के मार्ग में आने वाले सभी सम्भावित विघ्नों से साधकों को सावधान करते हुए कीमिआ के लेखक तथा उसके हिन्दी अनुवादक ने पारसभाग मे अनेक उपयोगी सुझाव दिए हैं और यथावसर उन्हें इस मार्ग के ख़तरों की ज़रूरी जानकारी भी दी है।

परिणामतः पारसभाग में एक ऐसी 'आचार-संहिता' संकलित हो गई है जिसका सम्बंध किसी विशिष्ट धर्म-सम्प्रदाय या मत-मतान्तरों की किसी संकीर्णता के साथ नहीं है। वाह्य तथा स्थूल कर्मकाण्डों के धरातल से ऊपर उठकर पारसभाग – कीमिआ के अनुरोध पर—एक ऐसी आचार संहिता प्रस्तुत कर सका है जिस आचार संहिता में मानवीय आचार विचारों का सार्वभौम रूप देखने को मिलता है। यही कारण है कि पारसभाग की आचार संहिता थोड़े बहुत परिवर्तन परिवर्धन के साथ यहूदियों, ईसाइयों, भारतीय वैष्णवों तथा पंजाब के सेवापंथियों को समानरूप से ग्राह्य हो सकी। वस्तुतः देश-काल, वर्ण-नस्ल, द्वीप-महाद्वीप, धर्म-जाति की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर विभिन्न भाषाओं के माध्यम से कीमिआ ने विश्व-मानवता के अवदात संकल्प को रूपायित करने मे सफलता प्राप्त की है। पारसभाग में भी मूल के आधार पर—जड़-परम्पराओं तथा तर्कशून्य स्थूल कर्मकाण्ड के स्थान पर—बौद्धिक परन्तु पूर्णतः सात्विक जीवनचर्या का विधान किया गया है। इस जीवन-चर्या की धुरी है 'ज़ुहद' कठोर-तपश्चर्या की भावना।

ज़ुहद :

हज़रत मुहम्मद (महापुरुष : पारसभाग) का जीवन कठोर तपश्चर्या का जीवन था। उनके समकालीन लेखक तथा हदीसकार उन्हें नमाज़ (भजन : पारसभाग) के

पाबद एक महान साधक के रूप मे चित्रित करते हैं। युद्ध भूमि मे भी नमाज का समय आने पर वे 'सिजदे' की स्थिति मे आ जाते थे (अबू बकर का कथन उद्धृत *पारसभाग पत्र 355)*।

सब्र

हजरत मुहम्मद की पत्नी-आयशा-के अनुसार वे रात-रात भर खडे रह कर-कई बार रो रो कर भी-प्रभु का स्मरण किया करते थे (पारसभाग पत्र 402)। उनकी तपश्चर्या का केन्द्र बिन्दु था सब्र'। 'अल-कुरान' मे उन्होंने सत्तर बार सब्र का विधान किया है। जीवन की विभिन्न विषम स्थितियो मे वे स्वय सब्र करते थे तथा अपने अनुयायियो को भी सब्र करने का उपदेश दिया करते थे। पारसभाग मे ईसा का वह प्रसिद्ध कथन प्रस्तुत किया गया है, जिसमे उन्होंने दाए गाल पर चपत लगाने वाले के सामने बाया गाल कर देने की बात कही है।

रोजह (व्रत पारसभाग) 'जुहद' 'सब्र' के अतिरिक्त नितात अल्पाहार तथा सात्विक भोजन उनकी तपश्चर्या का अग था। जीवन भर अनिकेत रहकर उन्होने अपने अनुयायियो को घर-बार की माया-ममता से बचाने का प्रयास किया था। वस्तुत अपरिग्रह उसकी जीवन व्यापी साधना का अग था। *अनिकेतनता तथा अपरिग्रह की इस कठोर चर्या के साथ वे सर्वदा प्रभु का शुक्र* (सुकरु पारसभाग) किया करते थे।

तौबह (तिआग पारसभाग)

रोजह, सब्र और शुक्र की भावना के साथ पापो से तौबह (तिआग पारसभाग) करना जुहद की एक अनिवार्य स्थिति मानी गई है।

त्याग 'तौबह' की मूल भावना है। इसीलिए पारसभाग मे तौबह को 'तिआग' शब्द के साथ अनूदित किया गया है। हजरत मुहम्मद तथा उनके उत्तरवर्ती अनेक इस्लामी विचारको-साधको-की 'तिआग' भावना को पारसभाग के विभिन्न प्रसगों-अवतरणो मे निर्दिष्ट किया गया है।

निश्चय ही यह आध्यात्मिक साधना किसी भी धर्म या सम्प्रदाय में मान्य हो सकती है। इस्लाम या हजरत मुहम्मद का नाम लिए बिना ही पारसभाग में इस्लाम की पूरी साधना पद्धति समाहित हुई है। साथ ही इस्लामी भावना का मूल रूप भी पारसभाग मे यथावत सुरक्षित रखा गया है। इस प्रकार पारसभाग की साधना पद्धति इस्लामी 'जुहद' को भारतीय परिवेश मे प्रत्यारोपित करने मे सफल होती है।

2-विभूति-पाद :

योग साधना द्वारा प्राप्त ऋद्धि-सिद्धियों का विवरण महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन के विभूति-पाद में दिया है। पारसभाग मे साधना-रत, नाम-परायण तथा सात्विक जीवन बिताने वाली अभारतीय मानव-विभूतियों के अनेक विवरण उपलब्ध है। मानव विभूतियों के इस विवरण को सुविधा के लिए पारसभाग का 'विभूति-पाद' कहा जा सकता है। योग दर्शन तथा पारसभाग में विभूति संबंधी एक मौलिक अंतर विद्यमान है। योग दर्शन के अनुसार, यद्यपि ऋद्धि-सिद्धियों को योग साधना का अंतिम उद्देश्य नही माना जा सकता, परन्तु इन ऋद्धि-सिद्धियों का विस्तृत विवरण योग दर्शन मे दिया गया है। पारसभाग का लेखक 'बायाजीद बिस्टामी' जैसे साधकों के माध्यम से सिद्धि व्यर्थता का बोध अपने पाठकों को अनेक स्थलों पर कराता चलता है। इस प्रकार पारसभाग दो विभिन्न सांस्कृतिक केन्द्रों मे बिखरी पड़ी विभूतियो को भावनात्मक अन्विति प्रदान करता है।

वस्तुत: शम, दम, इन्द्रिय निग्रह तथा ध्यान में लीन एवं सिद्धियों अथवा चमत्कारों की छाया से भी दूर रहने वाले अनेक अभारतीय विचारकों, साधकों तथा दरवेशों की अमित मेधा शक्ति, उनकी तितिक्षा एवं उनकी मानवीय करुणा को वास्तविक विभूति कहना संगत जान पड़ता है। इन विभूतियों के वचन, उनकी निष्ठा तथा उनकी जीवन चर्या को 'विभूति पाद' कहने का पर्याप्त औचित्य है।

विभूति वर्गीकरण :

पारसभाग मे—मूल के अनुरोध पर—अनेक मानव विभूतियों का विवरण मिलता है। इन विभूतियों को दो वर्गों में रखा जा सकता है :

अ-इस्लाम से पूर्ववर्ती विभूतियां

इ-इस्लामी विभूतियां

अ—इस्लाम से पूर्ववर्ती विभूतियां

क यूनानी फलसफ़ा : इस्लाम मूलत: अपनी पूर्ववर्ती, यहूदी और ईसाई परम्पराओं से जुड़ा हुआ है। यूनानी फिलसफे के प्रसिद्ध हकीमों—सुकरात (सोक्रेटीज) अरस्तू (अरिस्टॉटल) और अफलातून (प्लेटो) की गवेषणा मूलक तथा तर्क-प्रमाण-निरीक्षण पर आधारित दृष्टि ने इस्लाम के चिन्तन को गम्भीरता से प्रभावित किया था।

यह यूनानी दृष्टि इस्लाम की मूलभूत कतिपय मान्यताओं के अनुकूल नहीं थी। फलत: ऐसी मान्यताओं का खण्डन करना अल-ग़ज़ाली जैसे मुस्लिम

विचारको को आवश्यक जान पड़ा। अल-गज़ाली ने मुकरान के बौद्धिक नेतृत्व मे पनप रहे निरीश्वरवादी परन्तु अनेक देवी देवताओ पर आस्था रखने वाले नास्तिको का प्रबल खण्डन किया था। पारसभाग मे इन बहुदेववादी यूनानी हकीमो मे से अरस्तू और अफलातून का खण्डन नाम लेकर किया गया।

गज़ाली ने यूनानी फलसफे का खण्डन करने के लिए एक स्वतन्त्र पुस्तक 'तहाफुत-अल-फलसफा' (शब्दार्थ फलसफे का ध्वस) भी लिखी। यूनानी फलसफे के एक प्रबल समर्थक, इस्लामी विचारक और प्रसिद्ध विद्वान—'इब्न-रश्द' (एवरोस नामातर)—ने गज़ाली के 'तहाफुत' का खण्डन करने के लिए भी एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक का नाम है—तहाफुत-अत-तहाफत' (शब्दार्थ ध्वस का ध्वस)।

तात्पर्य यह कि पारसभाग मे यूनानी तत्व दृष्टि, युक्ति तर्क प्रमाण मूलक चिन्तन पद्धति तथा अनवरत जिज्ञासा स्थान स्थान पर प्रतिबिंबित हुई है। यूनानी फलसफे के कुछ अशो की हिन्दी में प्रथम प्रस्तुति पारसभाग मे ही हुई है। इस प्रस्तुति के भीतर यूनान के तत्वज्ञानियो की मानसिक उपलब्धिया तथा मेधा सम्बन्धी अनुपम विभूतिया प्रतिबिम्बित हैं।

पैगम्बरी परम्परा

इस्लाम अपने पूर्ववर्ती पैगबरो—हज़रत आदम, हज़रत नूह, हज़रत मूसा तथा हज़रत ईसा मसीह आदि हज़रात—की पैगबरी परम्पराओ से जुड़ा रहा है। इस्लामी साधना तथा चिन्तन पद्धति पर भी इस पैगबरी परम्परा का गभीर प्रभाव विद्यमान है।

पारसभाग के विभूति पाद मे—मूल के अनुरोध पर—अल्लाह का शुक्र करने वाले हज़रत आदम और इस शुक्र की गवाही देते हुए हज़रत मूसा, अकिंचन बने रहने तथा देह अभिमान को छोड़ने की प्रेरणा खुदा से पाने वाले हज़रत नूह तथा अनन्त अपणामय हज़रत ईसा जैसी विभूतियो के शब्द-चित्र पारसभाग म कही भी मिल सकते हैं। कहना न होगा कि पैगबरी विभूतियो से सबधित विविध विवरणो से भरपूर इस कोटि के प्राचीन शब्द-चित्र हिन्दी मे केवल पारसभाग ही प्रस्तुत कर सका है।

इ—इस्लामी विभूतियाँ

गज़ाली ने इस्लाम की पहली शती से लेकर अपने युग (10वी-11वी शती) तक के अनेक इस्लामी विधिवेत्ताओ, तत्वज्ञानियो, सूफी साधको के विचारों तथा उनकी साधना तपश्चर्या का प्रामाणिक विवरण दिया है।

इस्लामी 'हनाफी विधि' के प्रवर्तक 'अबू हनीफ़ा' (7वीं-8वीं शती) तथा 'जुनैद' सांई लोक (अबुल कासिम अल जुनैद : 10वीं शती) जैसे इस्लामी विधिवेत्ताओं तथा धर्म शास्त्रियों के विचार पारसभाग में संकलित है। अवैस करनी (उवैस-ए-करानी : छठी सातवीं शती) जैसे धर्म प्रचारकों, नून-अल-मिस्री (8वीं-9वीं शती) जैसे उद्भट विचारकों, बसर हाफी (बहर-इब्न-अल-हैरात-अल-हाफी (8वीं-9वीं शती) जैसे तपस्वियों, इब्राहीम बिन अदहम (8वीं शती) जैसे राजपाट को ठोकर मारकर दरवेश बनने वाले राजकुमारों, बायाजीद बिस्तामी (9वीं शती) जैसे तत्वज्ञानियों, फुजैल सांई लोक (फुजैल-इब्न-इयाज) जैसे साधकों से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण तथ्य पारसभाग में संकलित हैं।

'महापुरुष' (हज़रत मुहम्मद) की रातदिन सेवा करने वाली पत्नी तथा अत्यन्त प्रतिभाशालिनी आयशा एवं प्रसिद्ध महिला दरवेश राबिआ (राबिआ-अल-अदाविया) के अनेक वचन भी पारसभाग में संकलित हैं। वस्तुतः पारसभाग का यह 'दरवेश दर्शन' हिन्दी साहित्य में इस्लामी इतिहास, दर्शन तथा आचार संहिताओं का एकमात्र स्रोत है।

3— क़ुर्आन-हदीस-वचनामृत :

पारसभाग में चिन्तन तथा साधना सम्बन्धी विवेचन की अवतारणा हदीस साहित्य की इस मान्यता के साथ हुई है :—

'अपने आप को पहचानो'

अपनी पहचान की इस प्रक्रिया से साधक क्रमशः 'माया की पहचान', 'भगवंत की पहचान', और अन्ततः 'परलोक की पहचान' से सम्बन्धित अनेक मंजिलें पार करता है।

पारसभाग में—मूल के अनुरोध पर—भगवंत(अल्लाह)की आज्ञाएं,महापुरुष (हज़रत मुहम्मद) के अनेक विधि-निषेध परक वचन तथा इन वचनों की पूरी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—हदीस साहित्य के आधार पर—प्रस्तुत की गई है।

क़ुर्आन, हदीस तथा अन्य अनेक प्रामाणिक स्रोतों से संकलित इस्लामी दृष्टि एवं चर्या का इतना विराट् संकलन हिन्दी में पारसभाग के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है।

4 — सेवापंथ[6] :

प्राणी मात्र की सेवा के प्रति पूर्णतः समर्पित, नाम परायण तथा सबसे बढ़कर शारीरिक परिश्रम-कठोर श्रम-से जीविका उपार्जित करने वाले कर्मठ,

अकिंचन, अनिकेत, शम दम आदि सम्पदा से सम्पन्न पञ्जाब के एक विशिष्ट साधु-सघ का नाम है सेवापथ।

अपनी लोक-मगल-भावना, अध्ययन-अध्यापन के प्रति अपनी पूर्ण निष्ठा, सस्कृत-फारसी के प्राचीन ग्रन्थो की सुबोध भाषा मे प्रस्तुति, 'भाषा मे प्रेरणाप्रद गद्य-पद्यमयी अनेक पुस्तको की रचना तथा इस रचना-धर्मिता के साथ साथ लोक कल्याण मूलक एक व्यापक तथा सक्रिय समन्वय भावना सेवापथी साधना की एक उल्लेनीय विशेषता कही जा सकती है।

मूज बटकर बनाई गई रस्सी बेचकर अपना जीवन यापन करने वाले महान साधक 'अड्डणशाह', गुरुवाणी के अदभुत व्याख्याता भाई सहज राम, इस्लामी परम्पराओ के ममज्ञ तथा फारसी ग्रथों के भाषानुवादक 'भाई मगू 'भाई-गाहडू', और उद्भट लेखक साधु सदानद आदि कितने ही सेवापथी साधको ने साधना तथा साहित्य के क्षेत्र मे अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है।

'नाम' और 'दाम' की कामना से दूर रह कर इन सेवापथी लेखकों ने 'कीमिआ' जैसी महनीय कृति का अनुवाद भारत की सारस्वत परम्पराओ के अनुरूप मात्र मानव कल्याण के लिए प्रस्तुत किया।'कीमिआ के इस अज्ञातनामा अनुवादक ने 600 पत्रों की अपनी अनूदित कृति—पारसभाग-मे अपने सम्बन्ध मे एक पक्ति तो क्या एक अक्षर भी नही लिखा। यश तथा धन की स्थूल एषणाओ से ऊपर उठकर सारस्वत साधना का यह अप्रतिम उदाहरण है।

पारसभाग के प्रतिपाद्य का परिचय लेखक 'अनुवादक ने इस प्रकार दिया है

'अपने आप कउ पछाणै।भगवत कउ पछाणै।

माइआ (माया) कउ पछाणै। परलोक कउ पछाणै'

पारसभाग की 'प्रस्तावना' के अन्तर्गत चार अध्यायो के ये शीर्षक हैं। इनमे आगे चार प्रकरण सर्गो मे विभाजित है

1 नेम (नियम) प्रकरण सर्ग 6

2 विवहार प्रकरण (व्यवहार आचरण) सर्ग 3

3 विकार-निषेध प्रकरण सर्ग 10

4 मोष (मोक्ष) प्रकरण सर्ग 8

इस सामग्री का पूरा विस्तार 12"×9" आकार के 590 पत्रा (1180) पृष्ठो मे दिया गया है (प्रति क)

पारसभाग (अरबी-फारसी-स्रोत)

कीमिआ-ए-सआदत : पारस भाग की अनेक पाण्डुलिपियों तथा पारसभाग के एकाधिक लीथो तथा मुद्रित गुरुमुखी संस्करणों मे पारस भाग को 'कीमिआ-ए-सआदत की भाषा' कहा गया है। इन उल्लखों से पारस भाग का अल-ग़जाली कृत 'कीमिआ-ए-सआदत' (फारसी) के साथ घनिष्ठ सम्वध सिद्ध हो जाता है।

इसके अतिरिक्त पारसभाग की विषय वस्तु तथा इस विषय वस्तु का आंतरिक विभाजन कीमिआ-ए-सआदत के साथ आश्चर्यजनक रूप से एक जैसा सिद्ध होता है ; विषय वस्तु से लेकर आंतरिक विभाजन तक सभी स्तरों पर दृष्टि तथा भाषागत व्यापक एवं गम्भीर साम्य पारस भाग और 'कीमिआ' के घनिष्ठ सम्वन्धों को रेखांकित करता है।

इह्या-उल-उलूम : पारस भाग तथा 'कीमिआ' के इन घनिष्ठ सम्वन्धों पर विचार करने से पूर्व अल-ग़ज़ाली कृत कीमिआ के मूल अरबी रूप इह्या-उल-उलूम (इह्या-उल-उलूम-अद-दीन : नामांतर) पर विचार कर लेना उचित जान पड़ता है। क्योंकि यह ग्रंथत्रयी-इह्या, कीमिआ तथा पारस भाग-प्रतिपाद्य के स्तर पर समान रूपा है।

'इह्या' को अल-ग़ज़ाली की सर्वश्रेष्ठ कृति माना गया। विश्व भर मे इस कृति ने अक्षय कीर्ति अर्जित की है। इस महिमामयी कृति का फारसी अनुवाद (रूपातर) कीमिआ-ए-सआदत नाम से अल-ग़जाली ने स्वयं प्रस्तुत किया। इसी फारसी रूपांतर को 'भाषा-रूप' पंजाब में दिया गया और पारस भाग (भाग्य का पारस) यह अन्वर्थक संज्ञा इस भाषा कृति को प्रदान की गई।

इह्या : इह्या-उल-उलूम का शाब्दिक अर्थ है, विद्याओं की संजीवनी। इह्या को चार खण्डों 'रूब' में विभाजित किया गया है। इसे अल गजाली के लेखन की विशिष्ट उपलब्धि माना गया है। क्योंकि मानवीय चिन्तन के सार्वभौम रूप को इस कृति मे रूपायित किया गया है।

'इह्या' प्रतिपाद्य : 'इह्या' के पहले दो खण्डों में सर्वसाधारण के लिए धार्मिक विधि-विधान की व्यवस्था की गई है। किन्तु गज़ाली की दृष्टि स्थूल कर्म-काण्ड के धरातल से ऊपर उठकर आध्यात्मिक तत्वों की भी प्रतिष्ठा करती है। प्रार्थना (नमाज)' व्रत (रोजह), तीर्थयात्रा (हज़) तथा पवित्रता (तिहारत) के संबंध में ग़ज़ाली ने अधिक गहराई से बात की है। 'इह्या' के तीसरे और चौथे खडों में इस्लामी (सूफी) साधना (चर्या) के प्रमुख-प्रमुख ग्रंथों से महत्वपूर्ण सामग्री संकलित की गई है।

व्यावहारिक दृष्टि व्रत के संबध मे सामान्य विश्वास तथा व्यवहार से ऊपर उठने और पच-इन्द्रियो के आकर्षण से मुक्त होने की विधि 'इह्या' मे बताई गई है। अन्तत जगत् के प्रति वितृष्णा-भाव की प्राप्ति तथा प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम भाव की स्थिति मानव मात्र के लिए काम्य सिद्ध की गई है। 'इह्या' मे यह व्यावहारिक दृष्टि सवत्र पाई जाती है। कोरी अव्यावहारिक चर्चा-गजाली की रूचि-प्रकृति के प्रतिकूल है।

इह्या का मूल स्वर सन्यास-मूलक है। तपस्या (जुहद) इह्या की मूल भित्ति है। परतु इस कठिन तपश्चर्या को गजाली ने साधक भेद से विभिन्न स्तरो पर प्रतिपादित किया है। उदाहरण के लिए, ब्रह्मचय का विधान इह्या मे है। परन्तु इस विधान से बहुपत्नीक 'रसूल-ए-पाक' और ब्रह्मचारी ईसा मसीह के चरित्रो मे बहुत तारतम्य आने की आशका होती है। गजाली ने साधना (साधक) भेद से इस आपत्ति का परिहार किया है। कुल मिलाकर गजाली की दृष्टि इह्या मे अधिक से अधिक व्यावहारिक और साथ ही आदर्शोन्मुख भी बनी रही।

इस प्रकार की सीमात दृष्टियो का सामजस्य प्रस्तुत करना सरल नही है। परतु गजाली ने यहूदी, ईसाई तथा रोमन विचारको के नीति ग्रथो तथा धर्म-शास्त्रो से आवश्यक सामग्री तथा प्रेरणा लेकर प्राय सभी दृष्टियो का समाहार 'इह्या मे किया है। यही कारण है कि 'इह्या' धर्म मत की सीमाओ से ऊपर उठकर मानव मात्र के मम को छू सका है।

'इह्या' को जब फारसी मे रूपातरित किया गया तो अनेक गैर मुस्लिम पाठको ने इस रचना की मार्मिकता को अनुभव किया और जब 'इह्या' के फारसी रूपातर-कीमिआ- को भाषा (पारसभाग) मे प्रस्तुत किया गया तो पजाब मे—विशेषत सेवापथी क्षेत्रो मे—इसे एक पवित्र पोथी के रूप मे स्वीकृत किया गया। आगे चलकर पजाब की इस पोथी को जब नागरी अक्षरो मे प्रकाशित किया गया तब इस पोथी ने वैष्णव-क्षेत्रो मे भी पर्याप्त लोकप्रियता अर्जित की।

इसी प्रकार अनेक ईसाई विचारको ने भी 'इह्या' को अपने धार्मिक आग्रहो से ऊपर उठकर अपनाया। अपने पूरे परिवेश मे कटकर भी किसी रूपातरित या अनूदित कृति को इतना सम्मान मिलना 'इह्या' जैसी किसी विशिष्ट रचना का ही सौभाग्य हो सकता है। यही कारण है कि 'इह्या' को कुर्आन के बाद दूसरा स्थान दिया गया और अल-गजाली को हजरत मुहम्मद के बाद दूसरा पैगबर मानने की पेशकश तक की गई।

इह्या : आंतरिक संरचना : पारसभाग की उपजीव्य कृतियों-इह्या तथा कीमिआ-के प्रतिपाद्य तथा इन दोनों कृतियों की आंतरिक संरचना के साथ पारस भाग का साम्य मात्र एक संयोग नही है। इस साम्य का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :

रूब ('क्वार्टर्स')

आरबेरी के अनुसार इह्या-उल-उलूम चार खंडों (रूब/अरबी : क्वार्टस : अंग्रेजी/सर्ग : पारसभाग) में विभक्त है। प्रत्येक खण्ड अध्यायों में इस प्रकार विभाजित है :

खण्ड-1 उपासना ('रूब-अल-इबादात'। 'नेम प्रकरण' : पारसभाग)
खण्ड-2 वैयक्तिक आचार ('रूब-अल-आदात'/'बिवहार प्रकरणः' पारसभाग)
खण्ड-3 भयंकर पाप ('मुहलिकात'। 'विकार निषेध प्रकरण:' पारसभाग)
खण्ड-4 मुक्ति का मार्ग ('रूब-अल-मूजिआत'। 'मोपः ममोप : प्रकरण' पारस-भाग)

इह्या की इस आंतरिक संरचना पर 'हदीस' तथा 'फिक़' वर्ग की कृतियों का प्रभाव बताया गया है।

'कीमिआ' : आंतरिक संरचना :—कीमिआ की कितनी ही मुद्रित अथवा हस्तलिखित प्रतियां मिलती हैं। पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के पुस्तकालय में उपलब्ध 'कीमिया' की एक पाण्डुलिपि (एम०एस० 892) के अनुसार इस कृति की आंतरिक संरचना का परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है :

(क) पूरी रचना चार खण्डों (रुक्नों) में विभक्त है।

(ख) प्रत्येक खण्ड दस दस अस्ल (सर्ग : पारसभाग) में विभाजित है। पहले खण्ड (रुक्न) की दस 'अस्लों' में :

1. सिनाख्त-ने-खीशस्त ('धिआउ अपणी पछाण का' : पारसभाग)
2. मारिफत-ए-हकीकत ('धिआउ भगवंत की पछाण का' : पारसभाग)

आदि विषय तथा चौथे खण्ड की दस अस्लों में :

(क) 'तौबह' ('सरग पाप के तिआग विषे' : पारसभाग)
(ख) 'सब्र, शुक्र' ('सरग सबर और सुकर विषे' पारसभाग)
(ग) 'खौफ, रजा' ('सरग भै अर आसा विषे' पारसभाग)
(घ) 'फक्र जुह्द' ('निहकामता और मुचता विषे' पारसभाग)

(ङ) 'तौहीद ओ-तवक्कुल,' 'मुहब्बत-ओ-शौक' , जिक्र-ए आखिरत । ('*सरग प्रीत अरू प्रेम अरू महाराज की रजाइ (रज़ा) विषे'* पारसभाग) आदि विषयो पर गभीर चर्चा की अवतारणा की गई है ।

'कीमिआ' की इस पाण्डुलिपि के आतरिक विभाजन की तुलना कीमिआ की एक प्रकाशित परन्तु अधूरी प्रति (प्रकाशक करीमी प्रैस, बम्बई-1, सन् 1321 हिजरी) के साथ इस प्रकार की जा सकती है

1 इस प्रति के प्रारम्भ मे —

(क) सिनाख्त-ने-खोशस्न (धिआउ अपणी पछाण का' पारसभाग)

(ख) सिनाख्त-ए-हक्तालह (धिआउ भगवत की पछाण का पारसभाग)

(ग) सिनाख्त-ए-दुनिया (धिआउ माइआ की पछाण का पारसभाग)

(घ) हकीकत-ए-आखिरत (धिआउ परलोक की पछाण का पारसभाग)

ये 'उनवान' (शीर्षक) भूमिका के रूप मे रखे गए हैं। 'कीमिआ' की उपर्युक्त पाण्डुलिपि मे ये चारो 'उनवान' थोडे से शाब्दिक अतर के साथ पाए जाते हैं। भूमिका के तौर पर ये चारो उनवान पारसभाग मे भी यथावत् मिलते हैं।

2 इन चार 'उनवानों' के बाद चार ' रुक्न' हैं । चारों 'रुक्नो' मे दस-दस अस्लें हैं।

3 प्रकाशक (सम्पादक) के अनुसार कीमिआ के पहले दो रुक्न 'जाहिरी' अर्थात स्थूल और अतिम दो रुक्न 'बातिनी' अर्थात सूक्ष्म चर्चा से *सम्बधित हैं।*

4 पहले रुक्न की दस अस्लो और पारस भाग के प्रथम नेम (नियम) प्रकरण के आठ मर्गों को तुलनात्मक दृष्टि से इस प्रकार रखा जा सकता है

(अ) एहतकाद-ए- अहले-सुन्नत (इन दोनो अस्लों का सबध केवल इस्लाम के 'सुन्नत' के साथ है, इसलिए पारस भाग मे इन्हें स्थान नहो दिया गया)

(आ) तलब-ए-इल्म'

(इ) 'तिहारत' (मरग 2, 'पवित्रता विषे' पारसभाग)

(ई) 'नमाज' (मरग 6 'सिमरन विषे' पारसभाग)

(उ) 'जकात' (सरग 3. 'दान विषे' : पारसभाग)

(ऊ) 'रोजह' (सरग 4. 'वरत विषे' : पारसभाग)

(ए) 'हज' (सरग 4–5 'तीरथ यात्रा विषे': पारसभाग)

(ऐ) 'तिलावत-ए-कुर्आन' (सरग 5, 'पाठ विषे': पारसभाग)

(ओ) 'जिक्र, दुआ, वजीफा (सरग 6, 'सिमरन विषे': पारसभाग)

(औ) 'तरतीब-ए-औराद' (सरग 7,8 'महाराज की रजाई-रजा-विषे': पारसभाग)

5. कीमिआ के दूसरे 'रुक्न' और पारस भाग के दूसरे प्रकरण (विवहार प्रकरण) की विषय वस्तु लगभग समानरूपा है। कीमिआ के इस रुक्न की दस अस्लों के स्थान पर पारस भाग मे केवल तीन ही संकलित है । शेष भाग के महत्वपूर्ण अंश भी पारस भाग मे यत्र-तत्र समेट लिए गए हैं ।

6. कीमिआ के तीसरे 'रुक्न' (मुह्लिकात : पाप) की अस्लों को पारस भाग के तीसरे प्रकरण (विकार-निषेध प्रकरण) में आठ सर्गो के अन्तर्गत संकलित किया गया है :

(क) रियाजत-ए-नफ्स (सरग 2, 'कठोर सुभाउ के उपचार विषे': पारसभाग)

(ख) इलाज-ए-शहवत व फुर्ज ('सरग 1, काम निषेध': अवांतर सर्ग: पारसभाग)

(ग) 'दर इलाज-ए-शरह-जवां' (सरग 2,3 : 'अहार के संजम विषे' : पारसभाग)

(घ) 'दर इलाज-ए-बीमारी-ए-हसद (सरग 4, 'क्रोध की निषेध विषे' : पारसभाग)

(ङ) 'दर इलाज-ए-दोस्ती-ए-दुनीआ' : (सरग 5, 'सरग माइआ की निंदा विषे' : पारसभाग)

(च) दर इलाज-ए-दोस्ती-ए-माल' (सरग 6, 'सरग धन की तिस्ना के उपचार विषे' : पारसभाग)

(छ) 'दर इलाज-ए-जाह-ओ-हश्मत' (सरग 7, 'मान की प्रीत के विषे': पारसभाग)

(ज) 'दर इलाज-ए-रिया व निफाक' (सरग 8, 'दंभ की निषेध विषे' : पारसभाग)

खेद है कि कीमिया की यह पूरी प्रकाशित प्रति उपलब्ध नही हुई । अत इससे अधिक विवरण नही दिया जा सका। मूल शब्द 'इलाज' के लिए उपचार, उपाय तथा निषेध आदि सार्थक शब्दो का प्रयोग पारसभाग के लेखक की साधु-भाषा का उत्तम निदशन है । मक्खी पर मक्खी मारने वाले का यह अनुवाद नही है । इसमे मूल भाव को रूपायित करने तथा उसे भारतीय परिवेश मे प्रस्तुत करने का प्रयास लक्षित किया जा सकता है । मूल के निकट रह कर हिन्दी भाषा का इतना अभिव्यजक शब्द-प्रयोग अनुवादक की क्षमता तथा सूझबूझ का परिचायक है । 'रुकन' के लिए प्रकरण तथा 'अस्ल' के लिए सर्ग शब्द पारसभाग मे प्रयुक्त हुए है ।

सरचनागत इस साम्य का स्पष्टीकरण पारसभाग की एक प्राचीन तथा बहुत शुद्ध हस्तलिखित प्रति (क) के 'ततकरा' (विषय-सूची) की सहायता से किया जा सकता है । यह प्रति पजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ के पुस्तकालय मे (क्रमाक 865 एम एस पर) सकलित हैं

1 शीर्षक 'ततकरा कीमिआ सआदत का पारसभाग का प्रथमे चारि धिआई हैं' ।

'धिआऊ अपणी पछाण का' (सर्ग 1-10)
'भगवत की पछाण का' (सर्ग 1-7)
'माइआ की पछाण का' (सर्ग 1-5)
'प्रलोक (परलोक) की पछाण का' (सर्ग 1-13)
इससे आगे चार प्रकरण हैं

1 नेम प्रकरण (रुब-अल-इबादात इह्या-उल-उलूम)

1. सरग प्रतीत विषे (तुलनीय इह्या खण्ड 1, अध्याय 2 'तवक्कुल')
2 सरग पवित्रता विषे (तुलनीय इह्या खण्ड 1, अध्याय 3 तिहारत')
3 सरग दान विषे (तुलनीय इह्या खण्ड 1, अध्याय 2, 'जकात')
4 सरग वरत विषे (तुलनीय इह्या. खण्ड 1, अध्याय 6, 'रोजह')
5 सरग पाठ विषे (तुलनीय इह्या खण्ड 1, अध्याय 7 'तिलावत')
6 सरग सिमरन विषे (तुलनीय इह्या खण्ड 1, अध्याय 4,8)

दूजा बिवहार प्रकरण (रुब-अल-आदात)

1 सरग जगत के मिलाप विषे (तुलनीय इह्या खण्ड 2, अध्याय 3)

2. सरग इकांत विषे (तुलनीय: इह्या: खण्ड 2, अध्याय 7)
3. सरग राजनीत विषे (तुलनीय: इह्या: खण्ड 2, अध्याय 8,9,10)

तीजा विकार निषेध प्रकरण (रूब-अल-मुहलिकात)

1. सरग-कठोर सुभाव के उपचार विषे (तुलनीय: इह्या: खण्ड 3, अध्याय 2)
2. सरग अहार के संजम विषे (तुलनीय: इह्या: खण्ड 3, अध्याय 2)
3. सरग रसना के विघ्नहु विषे (तुलनीय: इह्या: खण्ड 3, अध्याय 3,4)
4. सरग क्रोध की निषेध विषे (तुलनीय: इह्या: खण्ड 3, अध्याय 5)
5. सरग माइआ की निंदा विषे (तुलनीय: इह्या: खण्ड 3, अध्याय 6)
6. सरग धन की त्रिसना के उपचार विषे (तुलनीय: इह्या: खण्ड 3, अध्याय 7)
7. सरग मान की प्रीत के उपाव विषे (तुलनीय: इह्या: खण्ड 3, अध्याय 6)
8. सरग दंभ की निषेध विषे (तुलनीय: इह्या: खण्ड 3, अध्याय 9)
9. सरग अभमांन के उपचार विषे (तुलनीय: इह्या: खण्ड 3 अध्याय 10)
10. सरग अजाणता अरू अचेतनता के विषे

चउथे मोष प्रकारण (रूब-अल-मूजिआत)

1. सरग पाप के तिआग विषे (तुलनीय: इह्या. खण्ड 4, अध्याय 1)
2. सरग सबर अर मुकर विषे (तुलनीय : इह्या : खण्ड 4, अध्याय 2)
3. सरग भै अर आसा विषे (तुलनीय : इह्या : खण्ड 4, अध्याय 3 खौ़फ़-रजा)
4. सरग निरधनताई अरू वैराग की उसतति विषे (तुलनीय : इह्या: खण्ड 4, अध्याय 4 फ़क्र-ज़ुहृद)
5 सरग निहकामता अरू मुचता विषे (तुलनीय : इह्या : खण्ट 4, अध्याय 5-6)
6. सरग मन के हिसाब विषे (तुलनीय : इह्या : खण्ड 4, अध्याय 7-8)

7 सरग विचार विषे (तुलनीय इह्या खण्ड 4, अध्याय 9)

8. सरग प्रीत अरू प्रेम अरू महाराज की रजाइ विषे (तुलनीय इह्या खण्ड 4 अध्याय 10-मुहब्बत-ओ-शौक-ए-खुदा कीमिआ)

मूल 'ततकरे' के दो चित्र परिशिष्ट मे सलग्न है।

कीमिआ के उर्दू अनुवाद

कीमिआ के दो उर्दू अनुवाद भी मिले हैं। इनमे से मौलाना शिबली के अनुवाद गजीन-ए-हिदायत' (प्रकाशन लाहौर 1862) के 'रुक्न चहारम' (चौथा प्रकरण पारसभाग) की दस 'अस्लो' (सरग-पारसभाग) मे मौलिक साम्य विद्यमान है। इस साम्य के प्रमुख बिन्दु ये हैं

प्रकरण	गजीन-ए-हिदायत	पारसभाग
रुक्न-ए-चहारम	मुजीआत के बयान मे	चउथा प्रकरण मोष (मोक्ष) ममोष (मुमुक्षु) प्रकरण
1 पहली अस्ल	तोबह् के बयान मे	सरग-पाप के तिआगणे विषे
2 दूसरी अस्ल	सब्र-ओ-शुक्र के बयान मे	सरग सबर अरु सुक्र विषे
3 तीसरी अस्ल	खौफ-ओ रजा के बयान मे	सरग भै अरू आसा विषे
4 चौथी अस्ल	फक्र-ओ ज़ुहुद के बयान मे	सरग-निरधनताई अरू वैराग की उसतति विषे।
5 पाचवी अस्ल	नीयत, अखलाक और सिद्क के बयान मे	सरग-निह्कामता (निष्कामता) अरू सुचता (शुचिता) विषे।
6 छठी अस्ल	मुहासिब और मुराक्बे के बयान मे	सरग-मन के हिसाब विष
7 सातवी अस्ल	तवक्कुल के बयान मे	सरग-वीचार विषे
8 आठवी अस्ल	तौहीद-ओ-तवक्कुल	(अद्वैत)

9.	नवीं अस्ल	शौक़-ओ-मुहब्बत	सरग-प्रीत अरु प्रेम अरु महाराजा की रजाइ विषै
10.	दसवीं अस्ल	मौत और आखिरत के अहवाल के बयान में	'सरग-परलोक की पछाण का'

इस प्रकार गंजीन-ए-हिदायत और पारसभाग में विषय-वस्तु की दृष्टि से एक गंभीर साम्य सर्वत्र पाया जाता है। विस्तार भय से गंजीन-ए-हिदायत और पारसभाग के अन्य रुक्नों (अस्ल-फ़स्ल) तथा प्रकरण-सर्गों का विवरण नहीं दिया जा सका।

'कीमिआ' का दूसरा उर्दू अनुवाद मौलवी फख़र-उद-दीन फरंग महली ने 'अक्सीर-ए-हिदायत नाम से किया। नवल किशोर प्रैस, लखनऊ से ही यह अनुवाद भी छपा (1866)। 'मुंशी प्राग नरैण' प्रकाशक के अनुसार इसका 11वां संस्करण 1904 में छपा। फिरंगमहली साहब ने मौलाना शिबली के अनुवाद से भरपूर लाभ उठाया। पर इस संबंध में कुछ लिखने की ज़हमत नहीं उठाई। 'पारसभाग' (नागरी रूप) भी इसी प्रैस से पहले छप चुका था। पर 'कीमिआ-पारसभाग-हिदायत' में मौलिक साम्य-वैषम्य को रेखांकित करना लखनऊ के प्रकाशकों ने आवश्यक नहीं समझा। उर्दू के दोनों अनुवादों में मूल 'कीमिया' शब्द का तर्जुमा 'हिदायत' शब्द से किया गया है। परन्तु 'कीमिया' के अन्य अनुवादों में 'रसायन' (कीमियागिरी) सूचक शब्दों से इस रचना को प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अवतरण : पारसभाग के प्रथम अवतरण में अरबी-फारसी शब्दों का भाषा-रूपांतरण, मूल फारसी वाक्यों का भाषा-परिवेश में प्रस्तवन, मूल भावों का अनुसरण तथा अनपेक्षित अंशों का बहिष्करण जैसे तथ्य द्रष्टव्य है। पारसभाग के इस अवतरण में मूल 'कीमिआ' के बिम्बों की चारुता को सुरक्षित रखा गया है। गंजीन-ए-हिदायत और पारसभाग के इन बिम्बों का तुलनात्मक अध्ययन रोचक है :

गंजीन-ए-हिदायत	पारसभाग
1. 'दरख्तों के पत्तों'	'पत्र बनासपति के'
2. 'जंगल की रेत'	'रेत के कणके'
3. 'सिफ्त यकताई'	'सदा अद्वैत है'

इस चारुता के अतिरिक्त अरबी-फारसी की विशिष्ट शब्दावली को पारस भाग मे इस प्रकार रूपातरित किया गया है

1	'खुदा, अल्लाह	'महाराज'
2	'सिद्दीक'	'उत्तम सचिआर' (सत्य आचरण वाले)
3	'फरिश्ते'	'देवते

कीमिआ की पारिभाषिक तथा विशिष्ट शब्दावली का भाषा-रूपातरण पारसभाग की अदभुत सफलता कही जा सकती है। फलत यह सिद्ध हो जाता है कि पारसभाग अपनी उपजीव्य कृतियो-'इह्या तथा 'कीमिआ-के आतरिक (अध्याय-सर्ग) विभाजन को यत् किंचित् परिवर्तित रूप मे स्वीकार कर लेता है। रूप परिवतन की इसी प्रक्रिया का साक्षात्कार पारसभाग मे भाषा भाव-बिम्ब के स्तर पर भी किया जा सकता है।

सर्ग योजना

पारसभाग के चारो अध्यायो तथा चारो प्रकरणो को भिन्न-भिन्न सर्गो मे विभाजित किया गया है, ठीक उसी प्रकार जैसे कीमिआ मे 'अस्ल' और 'फस्ल' की व्यवस्था पाई जाती है।

पारसभाग के प्रत्येक अध्याय तथा प्रकरण मे सर्गों की सख्या भिन्न-भिन्न रखी गई है। यद्यपि इह्या मे एक-एक रुब दस अस्लो का है। परतु पारसभाग मे प्रकरण के अतर्गत सर्गों की कोई सख्या निश्चित नही है। केवल तीसरे प्रकरण (विकार-निषेध-प्रकरण) मे ही मूल ('इह्या'-कीमिआ') के अनुरोध पर दस सर्ग रखे गए हैं। शेष प्रकरणो मे सर्ग सख्या कम से कम तीन ('दूजा बिवहार प्रकरण) मिलती है। पहले प्रकरण मे छह तथा चौथे मे आठ सर्गों की योजना की गई है।

सर्ग-वैषम्य

सर्ग सबधी इस सख्या-वैषम्य के कारण बहुत स्पष्ट हैं। विशुद्ध इस्लामी तत्वो को पारसभाग मे सकलित नही किया गया। क्योकि इन तत्वो से पारसभाग की सार्वभौम दृष्टि को क्षति पहुचती थी। इसलिए कुछ सकीर्ण अथवा विशुद्ध साप्रदायिक तत्वो को पारसभाग मे स्थान नही दिया गया।

परतु मूल के वे सभी अश पारसभाग मे सकलित है जिन अशो की सहायता से मानवीय चिन्तन तथा साधना को कुछ नये आयाम दिए जा सकें। उदाहरण के लिए, तीसरे प्रकरण के अतर्गत उपलब्ध इस्लाम के एकागी पक्ष को न छूते हुए भी कुर्आन, हदीस, तज़किरात और यूनानी फलसफे के हकीम

सुकरात ,हकीम अफ़लातून (प्लेटो) तथा हकीम अरस्तू की अनेक मान्यताओं को पारसभाग में संकलित किया गया है। इतना ही नहीं हजरत मूसा और हज़रत ईसा के अनेक वचन तथा उनकी अनेक वार्ताएं भी इसी तीसरे प्रकरण में यथास्थान संकलित है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पारसभाग के लेखक ने अनुवाद की सीमाओं में रहते हुए भी अपने सत्-असत् विवेक के अनुरोध पर मूल से सार-मात्र ही ग्रहण किया है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि पारसभाग अपनी दोनों उपजीव्य कृतियों-इह्या तथा कीमिआ-का विवेकपूर्ण अनुगमन करता है। मूल विषय-वस्तु के प्रति निष्ठा भी बनाए रखना तथा मूल-विषय-वस्तु के विभिन्न अंशों का ग्रहण-त्याग करते चलना पारसभाग की एक उल्लेखनीय उपलब्धि कही जा सकती है।

8

पारसभाग का पाठ

'पुरोवाक्', युगातरकारी रचना, सयोजक शब्दावली उकार बहुलता, स्तर्भुक्त-विभक्तिक-प्रयोग, विध्यर्थक प्रयोग।

'पुरोवाक्'

पारसभाग के प्रारम्भिक सर्गो तथा आगे प्रकरणों से कुछ महत्वपूर्ण सर्गो का 'पाठ' पाठ-अनुशासन की पद्धति पर प्रस्तुत किया जा रहा है। इस 'पाठ' पर एक सरसरी नजर डालने से पता चल जाता है कि

1 युगांतरकारी रचना हिन्दी-उर्दू दोनो भाषाओ के इतिहास मे -विशेषत साफ सुथरे गद्य के इतिहास मे-पारसभाग एक युगातरकारी रचना है।

2 सयोजक शब्दावली पारसभाग मे सयोजक शब्दों की विविधता तथा बहुलता इस कृति के किसी भी पन्ने पर देखी जा सकती है। 'अरू, अर,' के साथ साथ 'अ' भी मुक्त रूप से प्रयुक्त किया गया है। यह 'अरू' अपर से विकसित 'अवर' (अउर तथा और) से भिन्न है। 'फिर' (फेर पजाबी) के लिए 'बहुडि, बहुड' (बहुरि-बहुर पूर्वी) शब्द भी सयोजक रूप मे प्रयुक्त हुए हैं। 'ता ते (अत) के साथ पूव-प्रसग का फलिताय प्रस्तुत किया गया है। वाक्यगत विभिन्न घटको सयोजकों-की इतनी विशाल प्रस्तुति पारसभाग की किए वशेष पहचान बनाती है।

3. उकार बहुलता : पारसभाग की भाषा का सामान्य रूप 'उकार बहुल' है। इस प्रवृत्ति का इतिहास अपभ्रंश की 'रूप' संरचना के साथ जुड़ा हुआ है। संस्कृत के कर्ता कारकी, एक वचनी, विसर्गान्त रूप क्रमश: 'ओ' तदनंतर 'उ' रूप में विकसित हुए। यह 'उकार बहुलता' अपभ्रंश तथा अपभ्रंश से विकसित सभी आधुनिक भाषाओं के प्राचीन साहित्य मे कही भी देखी जा सकती है।

पारसभाग में समस्त-असमस्त पदों के कर्ताकारकी एकवचनी रूप-मूल रूप-प्राय: उकारांत है। निर्विभक्तिक, अन्तर्भुक्त विभक्तिक अथवा परसर्ग सहित रूपों को उकारांत रूप देना संभवत: पारसभाग की भाषा की प्रकृति के अनुकूल नही है। पारसभाग मे 'रामु का' के स्थान पर 'राम का' प्रयोग परम्परा तथा चारुता की दृष्टि से समीचीन जान पड़ता है।

4. अन्तर्भुक्त-विभक्तिक-प्रयोग : पारसभाग की भाषा में संश्लिष्ट विभक्तिक रूप—सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंशों की परम्परा मे—प्राय: मिलते हैं। 'इ' के साथ अधिकरण कारक की सूचना दी जाती है। सरनि (णि) जनमि, जगति (शरण में, जन्म में तथा जगत् में) जैसे अधिकरणिक प्रयोग पारसभाग की भाषा में प्राय: मिलते हैं। इन प्रयोगों की प्राचीनता तथा प्रामाणिकता स्पष्ट ही है।

5. विध्यर्थक प्रयोग : आख्यात पदों में प्राचीन 'विधि' तथा 'आज्ञा अर्थक' (लिङ् एवं लोट्) दोनों का मिला जुला (विकसित) रूप 'हि' (इ) एवं 'हु' (उ) प्राय: मिलता है। जाणहि (जाणहि : बहुवचन) से विकसित 'जाणइ' तथा 'जाण' प्रयुक्त हुए हैं। 'हु' (उ) के साथ बने 'जाणु < जाण' भी विकास क्रम से इसी बिंदु पर पहुंचे हैं। बहुवचन में 'जाणहु' प्राय: प्रयुक्त हुआ है।

6. सानुनासिकता : पारसभाग की प्रतियों में सानुनासिकता—प्राय: अनपेक्षित सानुनासिकता—प्राय: पाई जाती है। जांण, पछांण, पछांनणा, महां, महांपुरुष, अभिमांन तथा बुधवांन जैसे प्रयोग विरल नही है। लिपिकों का अपना सदोष उच्चारण भी इसका एक कारण हो सकता है। अनुनासिक (पंचम) वर्णो के कारण अन्यत्र संचरित सानुनासिकता की यह व्यापक प्रवृत्ति न केवल पारसभाग अपितु इस कोटि की अन्य रचनाओ मे भी लक्षित की गई है।

पारसभाग की भाषा संबंधी अन्य प्रवृत्तियों का विवेचन यथा स्थान किया जा रहा है। इस 'पुरोवाक्' के अनन्तर पारसभाग के चारों प्रकरणो मे से कुछ महत्वपूर्ण सर्गो का 'पाठ' प्रस्तुत किया जा रहा है :

१ओ सतिगुरु प्रसादि ।[1] कीमीम्रां साम्रादात की भाषा लिष्यते ।[2] अथ[3] धिआउ म्रापणी[4] पछाण[5] का ।

उसतत[6] अरु सुकरू[7] जो है महाराज का। सो म्रबर के तारे अरु मेघ की बूंदा अरु पत्र बनासपती के अरु रेत के कणके[8] अर आकास के अणूहु[9] ते भी अधिक है। अरु बहुडि वहु महाराज कैसा ह।

---

1 श्री गणेशायनम । अथ पारसभाग प्रारम्भ । प्रथम प्रकरणम् । दोहा नावा 1 । 'पूर्वाभास नावा 2 ।

2 'अथ पारसभाग ग्रिथ लिष्यते' ख, 'कीमिआ सहादत ग, सादत घ, 'अब कीमीआ शादित की भाषा लिष्यते' ली० । 'अबि पारसभागु लिष्यते' ली० 2 ।

आदि धिआउ पहला ख । 'अथ कीमीआ किताब की भाषा कृत अडण साहुकी' (उद्धृत 'महान् कोश')

3 अब, ग, ली० 2
अबि, ख, ली० 2

4 अपणी ख, घ, ली० 1

5 पछाणि, ख, ग

6 उसतति ख, 'उसतति जो है महाराज की अरु उपकार जो हैं महाराज के से अपार हैं' ग, घ । 'प्रथम मगलाचरण स्तुति और शुक्र' नावा० 1

7 शुक्रू, ख, घ, वडाई ली० 2

8 'रेतु के किणके' घ, किणके ख, ली० 2 'अर अकास अर पिरथवी के प्रमाणूउ के तुल उसी महाराज के लीए हैं' ली० 1 आकाश के तारे और मेघ की बूंदें बनस्पतिया की पत्ती पृथ्वी के रेणु के समान है' नावा० 1 'स्तुति और धन्यवाद भी वृक्षो की पत्तियों के समान अनन्त ही हैं' नावा0 2

9 अणहु क, ग, प्रमाणूऊ ली० 2
'अर अकास अर पिरथमी के परमाणुओ के तुल है' ख

'गजीम-ए हिदायत' दीबाचह (फस्ल 1)

'निहायत शुक्र और हम्द, आसमान के तारो, बारिश के कतरो, दरख्तो के पत्तो, जगल की रेत, ज़मीन ओ आस्मान के ज़र्रात के बराबर उस खुदाही के वॉस्ते हैं।

जो सदा अदुवैत[10] है। उसका ईस्वरजु[11] अरु उसकी पूरणताई अरू समरथता[12] कउं कोई जीव पछाण नहीं सकता । वहुड़ि[13] उसके संपूरण[14] पछानणे[15] के मारग कउं कोई नहीं पाइ सकता । अरु उस महाराज की स्रिस्ट[16] विषे किसी अवर जीव की समरथता अरु वलु नहीं चलता ।[17]

तां ते जो महापुरुष उत्तम सचिआरु[18] है[19] सो उनकी अवस्था[20] का अंतु भी इहि[21] है जो वहु भी उसके संपूरण पछानणे[22] विषे

---

10. अदुऐत, ख, अद्वैत लौ० 1 'एकोहं दुतीउ नासती जिरुको उचत हैं अरु सति चित आनंद जिसके गुण हैं' लौ० 2
11. ईस्वरज ख, लौ० 1 ईसरजु ग, 'ईसरज अरू उसकी वडाई अरू वेपरवाही भी अपार है' । अधिक पाठ ख । ऐश्वर्य (नावा० 1)
12. समरथा ग, सम्रथा लौ० 2, संम्रथता ख, 'पूरनताई अर समरथता' लौ० 1, सामर्थ्यताई नावा० 1
13. वहुड लौ० 1, 2, ख, ग
14. संपूरन लौ० 2 सम्पूर्ण नावा० 1
15. पछाणने ख, पहिचान : नावा० 1
16. स्रिस्टि लौ० 2 स्रिसटि ख स्रिष्टि नावा० 1
17. संम्रथाई, ख, लौ० संम्रथा ग, घ, लौ० 2, सामर्थ्य नावा० 1 चल सकता ग चल सक्ता नावा० 1
18. सचियार ख, महांपुरुपु सचिआरू ग, लौ० । सच्चे नावा० 1. (सचिआर > सत्यकारक)
19. हहि : ख, हैनि ग
20. आरवला ख, लौ० 2 अवस्था ख, अंत अवस्था नावा० 1
21. एही लौ० ।, ख, यही नावा० 1
22. पछांणणे घ, लौ० 2

'गंजीन-ए-हिदायत,

जिसकी सिफ्त यकताई और जिसकी खासियत, जलाल वरतरी अजमत, वुलंदी वुजुर्गी और सब तरह की खूबी है और उसकी वुजुर्गी के कमाल से कोई मुतनफिस आलाह नहीं और इसकी मारिफत की हकीकत में किसी को राह नहीं ।

आपणी[23] असमरथता[24] वरनन[25] करते हैं । वहुडि देवते अर वड ईसर भी महाराज की उसतत अरु बडाई विपे आपणी[26] लघता[27] मानते हैं ।

अरु महा[28]बुधवानहु की वुध[29] भी उसके आदि प्रकास अरु समरथता[30] विपे विसमाद कउ प्रापत होती हैं ।

वहुडि जगिआसी अरु प्रीतवान[31] भी उसके दरवार की निकटता की ढूढ विपे विसमै होइ रहे हैं । अरु उसके सरूप का पावणा[32] सकलप विपे प्रापत नही होता ।

---

23 अप्पणी ख, ग, अपुणो घ, ली० 1

24 असम्रथताई ख, असामर्थ्य नावा० 1

25 व्रनण घ, वरनन ली० 2

26 अपुणी घ

27 लघृता ख, ली० 1 'पुन • लघुता मानते हैं' नावा० 1

28 महा ख, घ

29 वुधवानहु ग, ली० 1 'बुध्धिवानहु की बुधि' ख, घ, 'बुधिमानो की' क, 'महाबुद्धिमानो की बुद्धि भी नावा० 1

30 सम्रथताई ख, ली० 2
'सामर्थ्य विपे विस्मरता' (?) नावा० 1

31 प्रीतवान ग
'प्रीतिमान निकटता के ढूढने के लिए विस्मय हो रहे हैं' नावा० 1

32 पावणा ख, ग
'स्वरूप का पावना' नावा० 1

गजीन-ए-हिदायत

'बल्कि अपने कसूर का इकरार करना सिद्दीको की इतहा-ए-मारिफत है। इनकी हम्द-ओ-सिना मे इज्ज का इजहार करना अबीआ और फरिश्तो की हद्द-ए-सिना ओ सिफ्त है।'

'उसके जलाल की पहली चमक मे हैरान रह जाना आक़िलो की अक्ल की इतिहा है।'

वहुडि[33] उसका समझणा[34] अरु आकारु अस्थूल[35] दिस्टांतहु ते विलपण[36] है। इसी कारण ते वुधरूपी नेत्रहु की द्रिस्टि[37] उसके सरूप देषणे विषे मंद हो जाती है। तां ते सरब वुधहु का फल इही[38] है। जो उसकी असचरज कारीगरी कउं देष करि महाराज कउं पछाणहि। अरु किसी मनुप[39] का ऐसा अधिकार नही[40] जो उसके सरूप की वड़ाई[41] का विचार[42] करै।

जो वहु कैसा[43] है। अरु इहु भी किसी कउं परवानु[44] नहीं जो एक पिण[45] मात्र भी उसकी असचरज कारीगरी सौं[46] अचेतु होवै[47]। अरु इउ न जाणै[48] जो इस कारीगरी का करता अरू आसरा कोऊ नहीं[49]। तां ते चाहीए जो कारीगरी कउं देषि करि इस प्रकार जाणै[50]। जो इह सरव[51] जगत भी उस महाराज के ईस्वरज[52] का

33. वहुड : ख, ग, ली० 1 वहुरि नावा : 1
34. समझणां ख, घ, ली० 2 समझावना नावा : 1
35. इमथूल घ, ली० 1
36. विलप्पण ख, ग, ली० 2, विलपणु घ, 'दृष्टांतों से विलक्षण है' नावा : 1
37. द्रिश्टी ग, घ, ली० 1 द्रिस्ट ख, दृष्टि नावा : 1
38. एहो ली० 2, यही नावा : 1
39. मानुपु घ, ली० 1
40. नाही ली० 2
41. वडिआई घ, ली० 2
42. वीचारू घ, ली० 1
43. कइसा ली० 2
44 परवानु घ, ली० 1 उचित नावा : 1
45. पिणु मात्र ग, ली० 2 क्षण मात्र नावा : 1
46 सिउं घ, ली० 1, 'असचरज रूप कारीगरी से' नावा : 1
47. होवहि ग, घ, ली० 1
48. जांणहि ग, ली० 1 न जाने नावा : 1
49. नांहि घ, ली० 1 'कउणु है' ख 1, आश्रय कोई नही नावा : 1
50. जांणहि ग, घ, इस प्रकार माने नावा : 1
51. सव ग, ली० 2, 'सरवु जगतु' ख
52. ईस्वरजु ख, ईसरजु ग, ली० 1, ऐश्वर्य नावा : 1

प्रतिबिंबि[53] है।

अरु उम ही के तेज का प्रकासु[54] है। बहुडि[55] सरब[56] असचरज[57] जो रचना है सो उस ही का अनुभव है। अरु सभ कछु[58] उसके सरूप[59] का आभासु[60] है। ता ते सरब पदारथ उस ही ते[61] उतपति[62] हुए है[63]। अरु उस ही विषे इसथित[64] हैं। तातपरज इहु जो सभ कछु[65] उही[66] है। काहे ते जो कोई पदारथ भगवत की सकति बिना[67] आप करि इसथित[68] नही। ताते सभ किसी का आसरा ओही है। बहुडि उसके प्रीतम जो सतजन है। सो बहु भी जगिआसीआ कउ सुमारगु दिषावणेहारे हैं। अरु भगवत के गुहज भेदहु कउ लषावणे-हारे[69] है। अरू परम दइआल रूप हैं। ता ते उनको भी मेरी[70] नमस्कार है।

अब इसते आगे ऐसे जाणु[70क] तू। जो इस मानुष कउ भगवत ने

---

53 प्रतिबिबु क, प्रतिबिंब नावा 1
54 प्रकास क, परकास ग, परगासु घ, परगास लौ० 1
55 बहुड ग, लौ० 1 लौ० 2 बहुरि नावा 1
56 सब घ, सभ लौ० 1
57 आसचरज ख आश्चर्यमय नावा 1
58 किछू ग,
59 सरूपु ख, लौ० 1
60 आभास क आभासु घ
61 तो लौ० 2
62 उतपत ग, उतपन लौ० 2
63 हहि ख
64 हहि ख, ग, इसथिति घ, ग, स्थित नावा 1
65 किछु ग
66 ओही घ, लौ० 1 लौ० 2
67 'बिना सकति भगवत की' ग, घ, लौ० 1
68 इसथिति ख, ग
69 जनावणे हारे, ख, ग लखावने वाले, नावा 1
70 मेरा निमसकार ग घ मेरा नमस्कार है नावा 1
70क जाणहि ग, घ ऐसे जान तू नावा 1

विअरथ[71] पेलणे अरु हसणे के नमित[72] उतपति[73] नही कीआ। तांते इस मानुष का पदु[74] भी महा[75] उत्तमु है। अरु भै भी अधिक है इस कउं। अरु जदपि[76] इह जीव अनादि नहीं। अरथु[77] इह[78] जो उतपति[79] कीआ हुआ है। परु तउ भी अविनासी रूपु है। अरु जदपि इस जीव का सरीरु असथूल[80] ततहु करि रचिआ हूआ है। परु इसका रिदा जो चैतंन रूपु है सो महा[81] उत्तमु[82] अरु अमरु[83] है।

वहुड़ि जदपि[84] इस जीव का सुभाव[85] आदि उतपत[86] विपे पसूअहु अरु सिंघहु अरु भूतहु के सुभाव साथि[87] मिलिआ हूआ है। परु जब इस कउं जतन की कुठाली विपे डालीऐ[88]। तब[89] नीच सुभावहु की मैल ते सुधु[90] सरूपु[91] हो जाता है। अरु भगवंत के दरसनु

---

71. वेअरथ ग, ली० । व्यर्थ बोलने नावा : 1
72. नमिति ग, घ, ली० ।
73. उतपत ग, उतपंन ली० 2 नही उत्पन्न किया नावा : 1
74. मानुपु का पदु : ख,
75. महा ख, ग
76. जदप ख, ग यद्यपि नावा : 1
77. अरथ ख, ग अर्थात् नावा : 1
78. इहु ख, ग
79. उतपत ग, ली० 2
80. इसथूल ख, अस्थूल ग
81. महा ख, घ
82. उत्तम, ग
83. अमर, ग
84. जदप ख, ग
85. सुभाउ ख, सोभाव ली० 1
86. उतपति ख,
87. साथि, ग, घ
88. डारीए घ, ली० 1 यत्न की कुठारी विपे डालिए नावा : 1. (काठ की थाली-परात।) प्रयत्न की आंच लगाकर ढाला जाता है नावा : 2
89. तबि ग, ली. 2
90. सुध ग, घ
91. सरूप ग

अरु दरबार का अधिकारी होता है। ता ते प्रसिध हूआ जो अघोगति[92] महारसातल हैं। अरु ऊरधगति जो देवते हैं। सो इह सभ ही इसी मानुप[93] की गति हैं। सो अघोगति विषे जावणा इहु[94] है जो पसूअहु अर सिंघहु के सुभाव विषे गिडना[95]।

अरथु[96] इहु जो भोगहु अरु क्रोघ के वसीकार[97] होवणा। बहुडि ऊरध गति जावणा इहु[98] है। जो देवतिग्रहु के सुभाव[99] विषे इस्थित[100] होवणा। अरु भोगहु अरु क्रोघ कउ वसीकार करके अपणे अघीन रापणा। सो जब इनको अपणे बस करता है। तब भगवत की भगति का अधिकारी होता है। सो देवतिअहु का सुभाव[101] इही है। अरु मानुप की उत्तम अवस्था भी इही है। अरु जब इस मानुप कउ भगवत के दरसन का आनद[102] प्रापत होता है। तब एक पिण[103] भी इसके सरूप ते इतर[104] नही ठहर सकता। अरु दरसन का आनन्द उस कउ स्वरग रूप भासता है। अरु इह अस्थूल[105] स्वरग जो अहारहु अरु कामादिक भोगहु का अस्थान[106] है। सोतिस

---

92 अघोगत

93 मनुप ग, मानुप ख

94 इह, ग घ

95 गिरना ग, घ

96 अरथ इहु घ ली० 1 अर्थात् भोगो और क्रोध के वशीकार होना नावा 1

97 वसीकारु होवणा ख, ग

98 इह ग, घ

99 सुभाउ ख घ सोभाऊ ली० 2

100 इस्थिति ख, ग

101 सुभाउ ख, ली० 1

102 अनदु ख, ग आनद ली० 1

103 पिणु ख, घ, छिनु ली० 2

104 इतरि ख, ग इतर ठहर नहीं सकता नावा 1

105 इस्थूल ख, ग असथूल ली० 2

106 असथान ग ली० 1 इसथानु ख, घ

कउ तुछ रूपु[107] जाणता है। परु इहु[108] जो[109] मानुप रूपी रतनु[110] है। सो आदि उतपति विपे नीचु[111] अरु मलीनु[112] होता है। तां ते पुरपारथु[113] अरु साधन विना किसी प्रकार पूरन पद कउ नहीं पहुंचता। जैसे तांवे अरु अवर धातु[114] कउ पारस विना सुवरणु[115] करना कठन होता है अरु इस विदिग्रा को भी सभ कोउ नहीं पछाणि सकता। तैसे ही मानुप[116] रूपी जो धात हैं। सो तिस कउ पसूअहु के सुभाव[117] रूपी मैल ते सुध करणा अरु पूरन भागहु विपे प्रापत होवणा। सो इह भी विदिग्रा महागुहजु[118] है अरु कोई नहीं जाण [119] सकता। तां ते इह जो गरंथ[120] है सो मानो भागहु का पारसु[121] है। अरु इस विपे जो सुन्दर वचन है[122] सोइ पारस रूप है[123]। तां ते इस ग्रंथ का नामु[124] पारस भागु[125] रापा है।

काहे ते जो पारसु[126] उत्तमताई का नामु[127] है परु उहु[128]

---

107. रूप क, ग,
108. एहु क, घ एहो ली० 2
109. जु ली० 2 जि ली० 1
110. रतन क घ 'मनुष्य देहरूपी रत्न है' नावा 1
111. नीच क, ली० 1
112. मलींन क, ली० 1
113. पुरुपारथ : क : ली० 2
114. धात क, ग 'और और धातु' नावा : 1 धातां : ली० 1, 2
115. सुवरण क घ स्वर्ण नावा : 1
116. मांनुपु ख ग 'मनुष्य रूपी' नावा : 1 मनुष्य ली० 1
117. सुभाउ ख घ सोभाऊ ली० 2
118. महांगुहज क ग महागुह्य नावा : 1
119. जांणि ख घ 'जान सक्ता' नावा : 1
120. गिरंथ ग ली० 1, ली. 2 ग्रिथ क गरंथ ख
121. पारस क 'भागों का पारस' नावा : 1
122. इहि ख ग हैनि घ
123. इहि ख ग, हैनि घ 'तेई पारसरूप हैं' नावा : 1
124. नाम ख, घ, ली० 1
125. पारस भागु ख, ग ली० 1
126. पारस क, ग 'काहे ते कि पारस उत्तमताई का नाम है' नावा : 1
127. नाम क घ 128. उह क ग ओहु ली० 1

पारसु[129] जो तावे कउ सुवरणु[130] करता है। सो अस्थूल[131] अरु नीचु[132] है। इस करके जो तावे अर सुवरण[133] विषे रग ही का भेदु[134] है। अरु उस सुवरणु[135] करके माइआ ही के भोग प्रापत होते हैं। सो माइआ आप ही नासवत है। ताते माइआ के भोग भी अलप काल विषे परणामी[136] हो जाते हैं[137]। बहुडि इहु[138] जो निरविरत वचन रूपी पारसु[139] है सो महाबसेष तें बसेष है। काहे तें जो इनहु वचनहु करिकै महारसातल तें ऊरधगति कउ प्रापति होता है। सो इस अधोगति अरु ऊरधगति विषे बडा भेदु है। अरु जब इहु मानुषु[140] निरमलु[141] सुभाव[142] रूपी ऊरध गति कउ पहुचता है तब अबिनासी भागहु कउ पावता है। सो वहु कैसा सुषु है। जो उसकाकालु[143] अरु अतु[144] नही। बहुडि दूषरूपी मैलु[145] भी उस परमसुष विषे कदाचित सपरसु[146] नहीं करती। ता ते इस ग्रथ का नामु पारस-भागु कहा है। सो इह पारस की सोभा भी द्रिस्टात मात्र ही कही

129 पारस क ग
130 सुवरण क ग स्वरन घ, स्वर्ण नावा 1
131 इसथूल क लो 1 'स्थूल और नीच है' नावा 1 सथूल लो० 2
132 नीच क घ
133 सुवरण ख, ग स्वर्न लो० 2
134 भेद क घ
135 सुवरणु ख ग, सोवरन लो० 1
136 परणामी ख प्रणामी क 'माया के भोग भी परिणामी हो जाते है' नावा 1
137 हहि ख घ
138 इह क ग
139 पारस क, घ 'निरविरत' (निवृत्ति) शब्द नावा 1 मे नही है।
140 मानुष क, घ मनुष्य लो० 1
141 निरमल क ग त्रिमल लो० 1
142 सुभाउ ख सोभाउ ग सुभा लो० 1, 2
143 काल क, घ
144 अत क, ग
145 मैल ख, घ मईलु लो० 2
146 परस घ 'कदाचित् स्पर्श नही करता नावा 1
सपरस क, ग

है। तांते जाण तूं जो तांवा अरु अवर धातु तव ही सुवरण[147] होती है। जव प्रथमे[148] पारस की प्रापति होवै। सो इह असथूल[149] पारस भी सरव ठउर[150] अरु सभ किसी के ग्रिह मों[151] नहीं पाइआ जाता। सो किसी सिध[152] अथवा किसी महाराजे के भंडार विपे है। सो भगवंत का भंडार[153] संतजनहु का रिदा है तां ते जो कोई पुरप इस पारस कउं संतहु के रिदे विना अउर ठउर[154] विपे ढूंढता है। सो विअरथ[155] ही भटकता फिरता है। अरु उस कउं प्रापति कछु नहीं होता। इसी कारन तें वहु पुरपु अंतकाल[156] निरधनताइ कउं प्रापति होता है। अरु झूठे मद[157] करकै जो आगे अभिमानी[158] हुआ था। सो पीछे निरलजता कउं प्रापति होता है। तां ते भगवंत ने अपणी दइआ करिके इह भी वड़ा उपकार कीआ है। जो संतजनहु कउं इस जगत विपे कलिआण[159] के नमित[160] भेजिआ है जो वहु[161] संतजन वचन रूपी पारस कउं प्रसिध[162] करहिं। अरु जीवहु कउं उपदेसु करहिं। जो इस रिदे रूपी धातु कउं साधना रूपी कुठाली विपे किउं करि रापीऐ। अरु मलीन सुभावहु कउं किउं करि दूर करीऐ। अरु उत्तम सुभावहु कउं किस प्रकार प्रापति होइऐ। तव संतजनहु कै उपदेस

147. सुवरण क, ग
148. पिरथमे घ ली० 1 प्रिथमे ग ली० 2
149. इसथूल ग, असथूलु पारसु ख
150. ठउर ख, ठौर ग, घ, ठौरि ली० 1, 2
151. विपे ग, घ, में ली० 2
152. सिध्यु ख 'सिद्ध अवस्था वाले' नावा : 1
153. भंडारु क,
154. ठउर ख, ठौरि ग 'अवर ठौर' नावा : 1
155. वेअरथि ग
156. अंतिकाल ख, अंतकालु ग
157. मदि ख, 'झूठे मद' नावा : 1
158. अभमांनी ख घ
159. कलिआंण ग ली० 1
160. नमिति ख घ
161. उहु ख
162. प्रसिध्य ख ग

करके इहु[163] मानुष नीच सुभावहु ते मुकति होते हैं[164]। अरु निरमल सुभाव कउ पावते हैं[165]। सो इन वचनहु रूपी पारस का तातपरजु[166] इहु[167] है। जो प्रिथमे माइआ के पदारथहु ते विरकत चित होवै[168] अरु भगवत की सरणि[169] आवै। जैसे अबीआई[170] भी कहा है। जो सरब पदारथहु कउ तिआग कर[171] आप कउ भगवत की सरणि[172] विषे लिआवहु। सो सरब विदिआ का तातपरजु[173] इही है। अरु जदप[174] इसका वख्याण[175] भी बहुत बिसतार[176] करि समझाइआ जाता है। परु तउ भी इसका पछानणा[177] चहु प्रकारि[178] करि होता है। सो प्रथमे[179] इहु[180] है। जो अपणे आप कउ पछाणै। बहुडि[181] भगवत कउ पछाणै[182]। अरु तीसरा प्रकार इहु हैं[183] जो माइआ कउ

---

163 इहु ख
164 हहि ख
165 हहि ख
166 तातपरज ग
167 इह ग
168 होइ ख होवहि ग
169 सरण क
170 महापुरष ख, ग, महापुरष नावा 1 (नबी बहुवचन)
171 करि ख
172 सरण क
173 तातपरज ग
174 जदपि ख
175 वपिआण ख, वपाण ली 1, 2, बखान नावा 1
176 विसतारि ग बिसथारि ख, घ बिस्तार नावा 1
177 पछानणा ख
178 प्रकारि ख
179 प्रिथमे ख ग
180 इहु ख
181 बहुड ख, बहुरि ना वा 1
182 पछाणहि ख ग
183 एहु ख

पछाणै। वहुडि परलोक कउं पछाणै[184] ॥ १ ॥

अथ पहला विआइ अपणे पछानणे का[1] ।

तां ते[2] ऐसे जाण[3] तूं जो अपणे आप का पछानणा[4] इही भगवंत[5] के पछानणे की कुंजी है। सो इसी परि अंबीआइ[6] भी कहा है। जो जिसने अपणे मन[7] कउ पछाणिआ[8] है। सो तिसने निरसंदेह अपणे भगवंत कउं पछाणिआ है। वहुडि भगवंत[9] भी कहा है। जो मैंने अपणे लछण जीवहु के मन में[10] प्रगटि[11] कीए है। इस करके[12] जो आप कउं पछाणि[13] करि मुझ कउं भी पछाणहि। तां ते हे भाई तेरे समान तुझ कउं अवर पदारथ कोई निकटि[14] नहीं। सो प्रथमे जव तूं आप कउं भी न पछाणहि। तव अवर किसी कउ किउं करि पछाणहिगा। अरु जव तूं इस प्रकार कहै जो मैं तो आप कउ पछाणता हौ[15]। सो तेरा इह कहणा झूठु है। काहे ते जो जैसा[16]

---

184. 'इति मंगला चरण सम्पूरणं' ॥ १ ॥, नावा : 1

1 'अव प्रिथमे धिआइ विषे अपणे आपका पछानणा वरनन होवैगा' ख 'पहिला अध्याय। पहला सर्ग नावा : ॥ १ ॥, नावा : 1

2. तां ते (लोप) ख,

3. जांणु ख, जांन'. ग, जांणहि घ

4 पछांणणा : घ, लो० 1

5. भगवंतु ग,

6. महापुरपु ख,

7. मनु ग,

8. पछाणिआ घ, लो० 2

9. सांई क

10. विषे ग घ

11. परगट ग, प्रगट क,

12. करिके ख, इस करिकै नावा : 1

13. पछांण ग

14. निकट क

15. हउं ग

16. जइसा घ, ली. 1

तू आप कउ पछाणता है सो ऐमा[17] पछानणा भगवत के पछानणे की कुंजी नही[18]। इस करके[19] जो जिस प्रकारि आप कउ सरीरु अरु सिरु हाथ पाव अरु तुचा मास[20] अस्थूल[21] जो तू पछाणता है[22]। अथवा अपणे अंतरि विषे जब तू भूखा होता है तब अहार कउ चाहता है। तब उस ही सकलप[23] विषे लीनु हो जाता है। अर जब क्रोधवान[24] होता है तब[25] लराई करता है। अरु जब कामादिक भोगहु कउ चाहता हैं। तब उस ही सकलप[26] विषे लीनु हो जाता है।

सो इस प्रकारि के पछानणे विषे सरब पसू भी तेरे समान हैं। ता ते तुझ कउ इस प्रकार जथारथ रूप का पछानणा चाहीता है। जो मैं वसतु किआ हौं[27]।

अरुकहा ते आइआ हौं[28]। वहुडि किस इसथान[29] विषे जावहुगा। अरु किस कारज के नमित भगवत[30] ने मुझ कउ उतपति कीआ है। अर मेरी भलाई किआ है वहुडि तेरे विषे जो पसूअहू अरु देवतिअहु के सुभाव एकठे उतपति कीए है[31]। सो इनहु विषे तेरा

---

17 अइसा घ, ली० 1
18 नाही घ
19 करिकै ख
20 मस ख,
21 इसथूल ख, ग
22 हहि ग
23 सकलपु ख
24 क्रोधवान, ख,ग
25 तबि घ,
26 सकलपु ग
27 हउ ख ग मैं क्या वस्तु हू' नावा 1
28 'कहा ते आया हू नावा 1 हउ ग
29 इसथानु ख, इसथान घ
30 साईं ग घ
31 हहि ग

प्रवल[32] सुभाव[33] किया है। अरु पर सुभाव[34] कउनु है। सो इह जवतैंने भली प्रकारि पछाणिआ। तव आगे अपणी भलाई को सरधा[35] भी कर सकहिगा। काहे ते जो सभ किसी को भलाई अरु पूरनताई अरु अहार भिन भिन है[36]। जैसे पसूअहु की भलाई अरु पूरनताई सोवणे अरु षावणे अरु जुध करने ते इतर कुछ नही। तां ते जव तूं आप कउं पसू जानता है। तव दिन रात्र विषे इही पुरपारथ करि[37] जो पेट अरु इंद्रीअहु की पालना होवै। वहुड़ि सिंघहु की पूरनताई इहु है। जो फाड़ना अरु क्रोधवान[38] होवणा। अरु भूत प्रेतहु का जो सुभाव है सो छल अरु प्रपंच है। सो जव तूं सिघु अथवा भूतु है[39]। तउ इसी सुभाव विषे इसथित होवहु[40]। तव अपणी पूरनताई कउं प्रापति होवहि। अरु देवतिअहु की पूरनताई अरु भलाई अरु अहारु भगवंत का दरसनु है। भोग वासना अरु क्रोध जो पसूअहु अरु सिंघहु का सुभाव[41] है। सो तिन कउं सपरस[42] नहीं करता। सो आदि उतपति विषे जव तेरा दिव सुभाव[43] है तव इही पुरपारथ करहु। जो भगवंत के दरवार कउं पछाणहु[44]। वहुड़ि भोग वासना अरु क्रोध की प्रवलता ते आप कउं मुकत करहु[45]। अरु इस भेद कउं भी समझहु[46]। जो

---

32. परवल ख, अपणा ग
33. सुभाउ ख सोभाव घ
34. सुभाउ सोभाव ग, घ
35. शरधा ख, ग
36. हैनि ग, हहि ख
37. करहु ग
38. क्रोधवांन ख
39. हहि ख
40. हो क
41. सुभाउ ग
42. परसु ख
43. सोभाउ घ
44. पछाणहि क पछांणहि ख
45. करहि क, कर ग
46. समझहि क समंझ घ

जो तेरे विष भगवत ने पसूअहु अरु सिधहु के सुभाव किस नमित उतपति कीए हैं[47]। तव तू उनके सुभावहु कउ वसीकार करहु[48]। अरु जिस मारग विषे तैंने जावणा है। सो तिस मारग विषे सुभावहु कउ अपणें अधीन करि ले जावहु[49]। इसो कारन ते तुझ कउ चाहीता है। जो एक सुभाव कउ घोडा करहु[50] अर दूसरे सुभाव कउ ससत्र करहु[51]। अरु जगत विष जो कछुकु[52] कालु तेरा जीवणा है। सो इस आरवला[53] विषे अपणा कारज सिध करहु[54]। तू उस घोडे अरु ससत्र[55] करिकै अपणी भलाई कउ शिकार करहु[56]। अरु जब वहु भलाई तुझ कउ प्रापति हुई। अरु उनहु सुभावहु कउ तैंने[57] वसीकार कीआ। अरु जब भगवत के पछानणे की ओरि तेरा मुषु[58] हुआ। तब तू मुकति होवहिगा। सो भगवत का पछानणा कैसा[59] है जो सतजनहु के इसथित होवणे का इसथानु[60] है। अरु सूषम[61] सरूप है। जैसे इतरि[62] जीव स्वरग कउ सुप रूपु जानते[63] हैं। तैसे ही सतजनहु कउ सुषु महाराज की सरनि[64] विषे होता है। सो जब इस प्रकारि तैंने

---

47 हहि ख ग
48 करहि क करहु ग 'अगीकार करैं' नावा 1
49 जावहि क
50 करहि क करहु ग
51 करहि क
52 कछुक क
53 अवसथा ग, घ आयुष नावा 1
54 करहि क, ग अपने कार्य के सिद्ध करने मे वितावै नावा 1
55 ससत्रु घ,
56 करहि
57 अपणे वसीकार ख, ग
58 मुष क
59 कइसा ग
60 असथानु ग
61 सूषमु सरूप ख सूक्ष्म रूप नावा 1
62 इतर क
63 जाणते ख
64 सरन ख, ग

समझिआ। तव कछुक आपणे आप का पछानणा[65] होवैगा। अरु जो कोई इस भेद कउं नहीं पछाणता[66]। तव उसको धरम मारगि[67] विषे चलना कठनु होता है। अरु आतम धरम[68] विषे उस कउं आवरणु[69] होता है।

अव दूसरे सरग विषे चैतन रूप का पछानणा वरनन होवैगा। वहुड़ि जव तूं आप कउं पछाणिआ चाहता है। तव इस प्रकारि निसचै जाणु[71] जो तुझ कउं दुहु[72] पदारथहु करि उतपति कीआ है। सो एकु सरीरु है जो असथूल नेत्रहु करि देपिआ जाता है। अरु दूसरा चैतंन है जो सूषमु रूपु[73] है। अरु उस कउं जीव कहते[74] हैं। अरु मनु कहतेहै अरु चितु भी उसी का नामु है। सो तिस कउं वुध्धी रूपी नेत्रहु करि देषि सकीता है, सो असथूल[75] नेत्रहु की द्रिस्ट ते परे है। तां ते तेरा जो निजु सरूपु[76] है सो वही चैतंन ततु है। अरु जेते गुण हैं[77] सो चैतंनता के अधीन हैं[78]। अरु उसी के टहलूए है[79]। अथवा सैना की निआई हैं।[80] अरु मैंने चैतंन का नामु रिदा रापिआ है। सो इहु[81]

---

65. पछांणना : ख ग
66. पछांणता
67. मारग क
68. धरमि ख,
69. आवरण क पटलु ख ग
70. यह शीर्षक क, ग, घ प्रतियों में नही है। दूसरा सर्ग नावा : 1
71. जाणहि ग, जाण क
72. दुह क
73. इसथूल क सरूपु ख,
74. "अर जो चैतंन है उसीको जीव अरु मन अर (अरु, अर) चित कहते है" ख (अधिक पाठ। हाशिए में, पेन्सिल से)
75. इस्थूल ख,
76. निज सरूप क
77. हैनि घ, हहि ग
78. हहि ख, हैनि ग
79. हहि ग, हैनि घ
80. सेना के तुल ख, सेनावत् नी० 1 नाई नावा : 1
81. इह क

वारता निरसदेहु है। जो ग्रातमा अरु मनु अरु रिदा उसी चैतन के नाम हैं[82]। ता ते मैं जो रिदे का वरनन करता हौ[83]। सो मेरा प्रोजनु सरीर के रिदे अस्थानु[84] का नही। काहे ते जो अस्थूल रिदे अस्थान का सरूपु मास[85] अरु तुचा करि रचिम्रा हूआ है। अर पचि[86] भूतहु का विकारु है। ता ते जड रूपु है। अरु मानुप[87] का जो चैतन रूपु रिदा है सो असथूल[88] स्रिस्ट[89] ते विलपणु[90] है। अरु इस सरीरि[91] विपे परदेसी की निआई कारज के नमित आइआ है। बहुडि इहु जो असथूल रिदे का असथान है सो जीव का घोडा अथवा ससत्र है। अरु सरब इद्रीम्रा भी जीव की सेना है[92]। अरु सरीर का राजा जीव है। ताते भगवत का पछानणा अरु उसका देपणा भी जीव का अधिकार है। इसी कारन डडु अरु उपदेसु अरु पुन पाप का अधकारी वही जीव है। ता ते भागवान[93] अरु भागहीण[94] उसी जीव कउ कहीता है। अर सरब कालि[95] विपे सरीर उसी के अधीन है।

इसी कारण तें उसु चैतन के सरूप का पछानणा अरु उसके सुभावहु का समझणा भगवत के पछानण की कुजी है। ता ते तू इही पुरपारथु करहु[96] जो चैतन रूप कउ पछाणहु[97]। काहे ते जो इह

---

82 नामि हहि ख
83 हउ ग
84 इसथानु ख
85 ममु ख
86 पच क पञ्चभूतो का रचा है नावा ।
87 मनुप ग,
88 इसथूल ग घ
89 मिस्टी ख स्रिसटि ग
90. विलप्यण ख, ग
91 सरीर
92 हहि ग
93 भागवान ख
94 भागहीण ख, ग
95 काल क
96 करहि क
97 पछाणहि क

चैतन रूपी रतनु दुरलंभ[98] है। अरु देवतिअहु की निआई निरमल सरूपु है।

दुतीए[1] प्रकरण के आदि विखे[2] विवहार प्रकरण लिपते[3]

तांते जाणु[4] तूं जो भगवंत के नमित[5] जगिआसीजनहु साथ भी मित्राई[6] करणी उत्तमु भजनु है। अरु सरव करमहु ते वसेप है। इसी पर महांपुरप ने भी कहा है। जो जिस पुरप कउ भगवंत के मारग की प्रीति होवै। तव उस कउं प्रीतवानहु[7] का मिलाप वड़े भागहु[8] कर प्रापति होता है। काहे ते जो जव किसी समे विपे वहु पुरपु भगवंत के भजन[9] ते अचेतु भी होता है। तउ भी उस कउं दूसरा मित्र[10] सुचेतु करता है।

---

98. द्रुलंभु ख, दुरलम्भ ग, दुर्ल्लभ नावा : 1
1. दूजे ली. 2 'दूसरा प्रकरण, पहला सर्ग नावा : 1'
2. विउहार ग, ङ, ली० 1, जगत् के मिलाप की युक्ति के वर्णन मे नावा : 1
3. लिप्यते ख.
4. जांण ख.
5. नमिति ख,
6. मित्रता नावा : 1
7. 'भगवद् भक्तों का' नावा : 1
8. वड़े भागों से नावा : 1
9. भगवद् भजन नावा : 1
10. भक्त नावा : 1

अतिरिक्त पाठ

'ताते जान तू कि यह संसार परलोक के मार्ग की मंजिल (मजल : ख) है और (अर : क, ख)सर्व (सभ : ख) मनुष्य (मानुप:) इस मंजिल विपे परदेशी हैं (हहि ख, हैनि : ली०2) और (अर) सब को एक ही ओर जाना (जांणा : ख, ली०1) है। जैसे सबही परदेमी आपस में संबन्धी की नाई(वत ख) होते हैं। तैसे ही इस जीव को सब मनुष्यों के साथ प्यार और शुभ भावना (सुव मनसा : ख) चाहिये है।' क, ख, ली०1, 2 नावा : 1'

'पर जिस प्रकार भाव और संगति करने का अधिकार है तिसका तीन सर्ग विपे वर्णन किया जाएगा। प्रथम सर्ग विपे जो जिज्ञासुजन भगवत् मार्ग के संगी हैं तिनके संग की विशेपता प्रकट करेंगे और दूसरे सर्ग में सबों के मिलाप का अधिकार और युक्ति वर्णन होगी बहुरि तीसरे सर्ग विपे संबन्धी और सेवक और सखावों के भाव की युक्ति का वर्णन किया जायगा' नावा : 1

वहुडि जव दोनो सुचेत होते हैं। तव दोनो एक मारग के मगी होते हैं। अरु इउ भी कहा है जो जब दोनों प्रीतिवान आपस विषे मिलते हैं। तव अवसमेव[11] उन कउ अधिक लाभ प्रापति होता है। अरु इउ भी कहा है। जो जगिआमो[12] जनहु की सगति करकै ऐसा उतम सुष प्रापति होता है। जो अवर जनहु करकै नही पाइआ जाता[13]।

अरु इउ[14] भी कहा है। जो जब कोई प्रीतवानहु[15] साथ मित्राई करता है। तव वहु भी भगवन का प्रीतम होता है। इसी पर साई[16] ने भी कहा है। जो मेरी प्रीत उनहु पुरषहु कउ प्रापति होती है। जो मेरे नमित मेरे प्रीतमहु साथ प्रीति करते हैं। अर तन धन आदिकहु करकै उनकी सेवा करते हैं। अर उनके सरव कारजहु की सहायता विषे सावधान होते हैं। अरु महापुरषहु[17] ने इउ भी कहा है। जो परलोक विषे भगवत इस प्रकार कहैगा[18]। जो जिनहु ने मेरे नमित आपस विषे प्रीति अर मित्राई[19] करी। सो पुरष कहा हैं। इस करकै जो अव मैं उन कउ अपणी छाइआ तले रापो[20]।

अरु इउ भी कहा है। जो सात प्रकार के मानुष परलोक विषे भगवत की छाइआ तले रहैंगे[21]। अरथ इह जो परमसुषी होवहिंगे। सो प्रियम[22] तउ नीति अर वीचार की म्रिजादा[23] विषे

11 अवसिमेव ख
12 जिज्ञासु जनों नावा 1
13 और जनों करके नहीं पाया जाता नावा 1
14 यों नावा 1
15 भक्तों के साथ प्रीति नावा 1
16 भगवन् नावा 1
17 महापुरप ख, महापुरुष ने नावा 1
18 कहेंग नावा 1
19 मिताई नावा 1
20 'कि उनको अब हम अपनी छाया तले राखें' नावा 1
21 'भगवत् की छाया तले ठौर मिलेगा। और परमसुखी होवेंगे नावा' 1
22 प्रथमे ख ली० 1
23 मर्याद नावा 1

वरतणे हारा राजा है। अरु दूसरा वहु है। जो वालक अवस्था ते लेकर अपनी आरजा[24] भगवंत के भजन विषे लगावै। अरु तीसरा वहु है। जो जदपि सुभ इस्थान ते वाहज[25] भी निकसै। तउ भी विवहार की विछेपता[26] विपे असकति[27] न हो जावै। उस के चित की ब्रित सरवदा सांत[28] की ओर रहै। अरु प्रीति संजुगति रुदन करै। अरु पाचवां वहु है। जो जव उस कउं इकांत ठउड विपे इसत्री का मिलाप होवै। अरु वहु भगवंत के भै करकै उसका तिआग करै। अरु छठवां वहु है जो निहकाम[29] होइ करि गुहज दान[30] देवै। अरु सतवां वहु है। जो भगवत ही के नमित प्रीतवानहु[31] साथ मित्राई[32] करै।

अरु जव किसी को मित्राई[33] कउं तिआग देवै। तव भी भगवंति ही के नमिति तिआगै। इसी पर एक वारता है। जो कोई पुरप किसी प्रीतवान के दरसन कउं जाता था। तव उस कउं मारग विषे एक देवता आन मिलिआ। अरु कहणे लागा जो तूं कहां जाता है। तव उस पुरप ने कहा जो मैं अमके[34] प्रीतवान[35] के दरसन कउं जाता हों।

वहुड़ि देवते ने कहा जो उसके साथ तेरा कुछ अरथ है। अथवा उसने तेरे ऊपर कछ उपकार कीआ है। तव उस पुरप ने कहा। जो ऐसे तउ नही। वहुड़ि देवते ने कहा। तो तूं उस की ओर काहे कउ जाता है।

---

24. 'वाल्य अवस्था से लेकर अपनी आयुप' नावा : 1
25. वाहर ख, ग, नावा : 1
26 विक्षेपता नावा : 1
27. आसक्त नावा : 1
28. शान्ति नावा : 1
29. निष्काम नावा : 1
30. गुप्तदान नावा : 1
31. भगवद् भक्तों नावा : 1
32. मैत्री नावा : 1
33. प्रीति नावा : 1
34. अपने नावा : 1
35. मित्र : नावा : 1

तब उस पुरष ने कहा जो मैं भगवत ही के निमति उसके दरसन की इछा रापता हौ। तत्र देवते ने कहा। जो मुझ कउ भगवत ने तेरी ग्रोर भेजिआ है। जो तुझ कउ प्रसनना का सदेसा[36] पहुचावउ। जो इस ही तेरी सरधा करि भगवत ने तुझ कउ प्रीतम कीग्रा है।

अरु महापुरष ने इउ भी कहा है। जा धरम का द्रिढ चिहन इही है। जो धरमातमा पुरषहु का मिलाप अरु पापीअहु मानुषहु की सगति का तिआग[37]। सो उत्तम चिहन धरम का इही है[38]।

ग्ररु एक सतजन कउ अकासबाणी हुई थी जो जब तू सरब मानुषहु अरु सरब देवतिअहु जेता[39] भजनु करहि ग्ररु जब लग मेरे निमिति प्रीतवानहु साथ मित्राइ[40] ग्ररु मनमुषहु का तिग्रागु न करहिगा। तब लग तू परम पद कउ प्रापति न होवहिगा।

अर एक सत जन ते जगिग्रासीग्रहु[41] ने पूछिआ था। जो सगति किसकी करीऐ। तब उनहु ने कहा जो जिसके दरसन करकै तुम कउ भगवत का भजनु द्रिढ होवै। अरु जिसका करततु[42] देष करि तुम कउ सुभ करततु की इछा[43] उपजै। तब उस ही की सगति करहु।

अरु एक अवर सत जन कउ भी अकासबाणी हूई थी। जो तैंने इकाति[44] किस निमित पकडी है। तब उसने कहा जो हे महाराज जगत के मिलाप करकै तेरी प्रीति विषे पटलु होता[45] है।

---

36 सनेहा ख
37 भगवत् विमुखो के सग को त्याग करना नावा 1 तिआगणा ख, घ
38 यह वाक्य नावा 1 मे नही है। धरम का उत्तम चिहन एहो है लौ० 1
39 सर्व देवता के तुल्य नावा 1 सभ देवतो लौ० 1
40 मिताई नावा 1 दोस्ती लौ० 2
41 जिज्ञासुजना नावा 1
42 करतूति नावा 1
43 मनसा लौ० 2
44 एकांत ग्रहण किया है नावा 1
45 आवरणु क, परदा लौ० 2

अतिरिक्त पाठ

(तिस निमित्त इकान्ति को विशेप प्रिय मानता हू। वहुरि ग्रागिआ हुई कि एस इकांत करके तो अपना सुख अरु भजन ते मान की चाहना प्रसिध है। ताते मेरे भक्तों के साथ प्रीति करु अरु मनमुपहु के संग का तिआग करु।)

(ख, ली० 1 नावा : 1)

वहुड़ि[46] आगिग्रा हूई जो सुचेत होइ करि मेरे जीवहु कउ प्रसंन करु। अरु उत्तम मानुपहु साथि प्रीति करु। ग्रर पापी मानुपहु की संगति का तिआग करु।

ग्ररु एक अवर संतजन ने भी कहा है जो भगवंत के प्रीतम जव आपस विपे मिलि करि प्रसंन होते हैं। तव जैसे सरद रुति विपे व्रिछहु के पात गिरते हैं। तैसे ही उनहु के पाप नस्ट हो जाते हैं।

अथ[1] त्रितीग्रा प्रकरण। विकार निपेध लिष्यते[2]। मन के डंड देणे विप चलेगा[3]।

सो इस प्रकरण विपे दस सरग आवहिंगे[4]। प्रिथम[5] सरग विपे भले सुभाव[6] की उसतति वरनन होवैगी। तां ते जाणु तूं जो[7] सांई जो[8] महांपुरप की उसतति[9] करी है। सो भले सुभाव करि करी है[10]।

46. वहुरि नावा : 1
1. 'अवि तीजा परकरण' ख, ङ, ली० 1। 'तीसरा प्रकरण : प्रथम सर्ग' नावा : 1
2. विकार नपेध लिपतेः ली० 1, 2। नावा : 1 में यह शीर्षक नहीं है।
3. मन के डंडु देवणे विपे ली० 2। 'मन के यत्न और कठोर स्वभावों के उपचार के वर्णन में' नावा : 1।
4. नावा : 1 में यह वाक्य नही है।
5. 'प्रथम विभाग भले स्वभावों की स्तुति में' नावा : 1
6. सुभावहु : ख, ङ
7. जि ग ली० 1
8. जि ग ली० 1
9. उसन्त ली० 2
10. 'ताते जान तू कि महाराज ने भी भले स्वभावों करके ही महापुरुष की प्रशंसा करी है' नावा : 1

अरु महापुरष[11] भी कहा है। जो मुझ कउ[12] साई भले सुभाव के पूरन करणे कउ[13] इस लोक विप[14] भेजिआ है। अरु इउ[15] भी कहा है। जो परलोक विपे जो महाउत्तम[16] पदारथ होवैगा। सो[17] भला सुभाव ही होवैगा।

अरु एक पुरुप[18] महापुरुप पास[19] आइआ था। अरु पूछणे लागा[20]। जो धरम किआ है[21]। तब महापुरप ने कहा जो भला सुभाव ही धरम है। इसी प्रकार एक अवर पुरप ने भी पूछा था। जो[22] उत्तम करततु[23] किआ है। तब महापुरप ने कहा जो भला सुभाउ[24] सरब करतत ते उत्तम[25] है।

अर एक अवर पुरप ने भी महापुरप कउ कहा था। जो मुझ कउ कछु उपदेस[26] करहु। तव महापुरप ने कहा जो जिस अस्थान[27] विपे वसो तहा साई का भउ[28] करि वसो[29]। अरु जो कोउ तेरे साथ

---

11 महापुरुप ने भी नावा 1
12 मुझ को नावा 1
13 पूर्ण करने के अर्थ नावा 1
14 इसि लोकि विपे ख
15 और यो भी कहा है नावा 1
16 महाउत्तमु पदारथु ख
17 सि भला ली० 1, 2
18 इकु पुरपु ख
19 पासि ख
20 'बहुरि एक पुरुप ने महापुरुप से पूछा' नावा 1
21 क्या नावा 1 धरमु किआ है ख
22 जि ग ली० 1, 2
23 उतमु करततु ख उत्तम करतूत नावा 1, उत्तम आचरण नावा 2
24 सोभाव ली० 1 2, सुभाअ ख, सुभा ग
25 उत्तमु ख
26 उपदेसु ख
27 सथान ग सुम इसथानि ख
28 भै ग, भौ ली० 1, 2, भय संयुक्त नावा 1
29 वसहु ख वसहु ट, रहा नावा 1

वुराई करै तउ भी तूं भलाई करू[30]। अरू सरव साथ भले सुभाव लिए मिलना करु[31]। अरु इउ भी महांपुरुष कहा है। जो जिस कउं सांई भला सुभाउ दीआ है। अरु जिसका मसतकि सदा प्रसंन रहता है[32]। सो नरकहु की अगन विषे नही जलता।

अरु महांपुरुप कउं किने आन[33] कहा। जो अमकी[34] इसत्री ऐसी है। जो दिन कउं व्रत रापती है। अरु रात्र कउं जाग्रति करती है। अरु भजन विषे[35] सावधान रहती है। परु सुभाव उसका वुरा है। जो पड़ोसीअहु कउं दुरवचन करिकै दुपावती है। तव महापुरुप कहा जो वह्नु इसत्री नरक विपे प्रापति होवेगी। अरु इउ भी कहा है। जो सुभाउ वुरा इस प्रकार भजन कउं नास करता है। जैसे पटाई मापीउं[36] कउं नाश करती है।

अरु सुभाउ भला सरव पापहु कउं ऐसे दूर करता है। जैसे सूरज वरफ को दूर करता है। अरु महांपुरुप भी सांई के आगे अरदास[37] करता था। जो हे सांई, जैसा तुमहु ने हमारा शरीर सुन्दर वनाइआ है। तैसा हमारा सुभाउ भी भला करहि। अरु इउ भी कहते थे। जो अरोगता अरु सुभाउ भला[39] मुझ कउं देहि।

वहुड़ि महांपुरुप सिउं किनै आनि[40] पूछा था। जो जो कछु जीव कउं सांई देता है। तिनहु विपे किआ पदारथ भला है।

---

30. करहि ख करिये नावा० 1 भलाई ही कर नावा : 1
31. मिलहु ख
32. 'जिसका मस्तक प्रसन्नता सहित खुला रहता है' नावा : 1
33. आंनि ख
34. अमुकी नावा : 1
35. नरकि विपे ख
36. मधु नावा : 1
    माक्षिक < मापिउं (पंजाबी)
37. अरदासि ख
38. करहु ख
39. भला स्वभाव : नावा० 1
40 आंनि ख

तब[41] महापुरुष कहा जो सुभाउ भला[42] सरब पदारथहु[43] ते विसेष है। अरु एक[44] अवर साई लोक[45] ने भी कहा है। जो मैं महापुरष के निकटि[46] था। तब महापुरुष ने कहा जो मैंने एक वडा असचरज[47] देषा[48] है। सो इह है। जो एक पुरष कउ मैं देषिआ था सो गिडिआ पडा था[49]। साई अरु उसके बीच वडा अन्तरा था[50]। पर सुभाउ भला[51] जो उसके रिदे विषे आइआ। तिसने पडदे[52] कउ दूरि कीआ। अरु उस पुरुष कउ साई साथ मिलाइआ।

अरु इउ भी कहा था। जो पुरुष भले सुभाव वाला होता है। तिस कउ कस्ट[53] विना ऐसी अवस्था प्रापति होती है। जैसे किसी कउ व्रत अरु जाग्रत अरु वडे तपहु करि उहु अवस्था प्रापति होवै।

अरु भले सुभाव वाला पुरष जदप जप तप थोडा ही करै तउ भी परलोक विषे उत्तम पद कउ प्रापति होता है[54]। सो इस भले सुभाव की पूरनता महापुरष विषे पाई जाती थी[55]।

सो एक[56] वारता इसी उपरि कहते हैं। जो एक ठउड विषे[57]

---

41 तवि ख, ग

42 सुभाअ ख, भला स्वभाव नावा 1

43 सभ लो० 1, सब पदार्थों से 1 नावा 1

44 इकि ख

45 एक और सन्त ने नावा 1 'अवरि साई लोकि भी कहा है' ख

46 'महापुरुष के सङ्ग था' नावा 1

47 असचरजु ख, अचरज लो० 1

48 देषिआ ख

49 'एक पुरुष मुझ को गिरा हुआ दृष्टि आया था' नावा 1

50 'भगवत और उसके बीच मे वडा पटल था' नावा 1

51 भला स्वभाव नावा 1

52 सब पटल नावा 1

53 यत्न विना ही नावा 1

54 यह अवतरण नावा 1 मे नहीं है

55 पाई जाती है नावा 1

56 इकि ख

57 इकि ठउरि विषे ख
एक ठौर मे नावा 1

महांपुरप वैठा था[58] अरु ऊहां केतीआंइक[59] इसत्रीआं निड़र होइ करि सवद करणे लागीआं[60]। वहुड़ि ऊहां उमर आइआ। तव चपलता छोड़ि करि मौंन होइ वैठीआं। तव उमर ने कहा जो हे दुसमनां आपणिआं[61] तुम महांपुरप का भै न कीआ। अरु मुझ कउ देपि करि मौंन गही[62]। तउ उनहु ने कहा जो महांपुरप का सुभाव वहुत कोमल है।

अतिरिक्त पाठ

(तुम्हारा स्वभाव उनसे कठोर है। ताते हम तुमसे डरती हैं। वहुरि महापुरुष उमर से कहने लगे कि हे उमर! तुझको जब माया न (?) देखकर भी तेज के आगे भाग जावै और ठहर न सकै तब औरों की क्या चली। इस प्रकार उनकी मनोहार करते भए और प्रसंन किया। वहुरि एक और संत थे सो सयोग करिकै किसी पुरुष के साथ मार्ग में सङ्गी हुए। वहुरि जब उससे विछुड़े तब रोवणे लगे। तब लोगों ने पूछा कि तुम किस निमित्त रोवते हो। तब उन्होंने कहा कि यह पुरुष जो मुझसे विछुड़ा है सो इसका बुरा सभाउ, इसके साथ ही रहा और दूर न हुआ ताते मैं रुदन करता हूं') (ग, नावा : १)

अरु तेरा सुभाव उनसौं[63] कठोर है। तब[64] महांपुरप उमर कउ कहा। जो हे उमर मैं सांई की दुहाई करकै कहता हौं। जो जदपि तुझ कउं सैतान[65] देपै तउ भी भागि जावै। अरु तेरे भै करके ठहरि न सकै। इस प्रकार कहि करि उमर कउ भी प्रसंन कीआ[66]।

---

58. वैठे थे नावा : 1
59. 'केतीआंइक' नावा : 1 में पाठलोप। कुझ: ली० 1, कुछकु : ख
60. ऊंचे स्वर से शब्द करने लगीं नावा : 1
61. हे पुन्पाओ नावा : 1
62. मौंनि ख मौन हो वैठीं नावा : 1
63. उन सिउं (ङ)
64. वहुरि नावा : 1 तवि ख
65. माइआ ली० 1
    'माया न देख कर भी तेरे तेज के आगे भाग जावै और ठहर न सके तब औरों की क्या चली' नावा : 1
    'उमर तुम्हारे पास तो माया भी नहीं फटक सकती' नावा : 2
66. 'उनकी मनोहार करते भये' नावा : 1
    'उनका मान बढ़ाया और उन्हें प्रसन्न किया नावा : 2 परन्तु ख

अरु एक ग्रवर[67] साई लोक था। सो किसी ठउड इक मानुप साथ मारग मो सगी हूग्रा था[68]। वहुडि जब उसते विछडा नव रोवणे लागा। तव लोकहु ने पूछिग्रा। जो तुम रुदन किउ करते हो। वहुडि उस साई लोक ने कहा। जो ओहु पुरप मुझते विछडा है। अरु सुभाव वुरा उस ही के साथ रहा[69]। ताते मैं रुदन करता हौ।

अर ग्रबू बकर कितानी[70] ने भी कहा है। जो भले सुभाव ही का नाम फकीरी है[71]। ताते जिसका सुभाउ भला अधिक है। सो उत्तम फकीर है।

अर एक अउर सतजन ने भी कहा है। जो कठोर सुभाव ऐसा पाप है जो इसके होते कोई सुभगुण लाभ नही[72] करता। अरु कोमल सुभाव ऐसा भजन है। जो इस करके सरब पापहु का नास होइ जाता है। अरु कोई पाप विघन नही कर सकता[73]॥ १॥

ग्रथ मोप प्रकरण[1] लिपते। ग्रथ मोपदाइक प्रकरण के ग्रादि सरग विपे तिग्राग का वरनन होवेगा।

ता ते जाण तू जो जगिआसी[2] की आदि ग्रवस्था[3] पापहु[4] का

---

67 'इकि अवरु साई लोकु' ख

68 'ठउडि विपे' ख। 'सत थे सो सयोग करके किसी पुरुप के साथ मार्ग मे सङ्गी हुय' नावा 1

69 'इसका वुरा स्वभाव इसके साथ ही रहा और दूर न हुआ' नावा 1

70 'अवू वक्र किताई' नावा 1, 2

71 'फकीरी भले स्वभाव का नाम है' नावा 1
'का ही नाम है' नावा 2

72 लाभदायक नही होता नावा 1, लाभवद लौ० 2

73 'और कोई अवगुण विघ्न नही कर सकता' नावा 1
'किसी भी अवगुण का खटका नही रहता' नावा 2

1 अथि मोपदाइकु परकरण ख ममोप प्रकरण क, ग, लौ० 1
चौथा प्रकरण प्रथम सर्ग त्याग के वर्णन मे नावा 1
'त्याग के विषय मे' नावा 2

2 जिज्ञासु नावा 1

3 अवसता ग, आरवला, लौ० 1

4 पापो ग

तिआगु है। अरु धरम के मारगि विपे[5] सरव मानुपहु कउं अवसमेव तिआगु की अपेछा[6] होती है।

काहे ते[7] जो एह[8] मानुपु प्रथमे[9] ही निहपाप[10] नहीं होता। जो केवल निहपाप[11] अरु निरमल[12] देवते कहे है। अरु सरवथा पापरूप[13] असुर[14] है[15]। तांते प्रसिधि[16] हूआ जो भगवंत[17] के भै करिकै पापहु का तिआग[18] करणा मानुप[19] ही का अधिकारु[20] है। अरु सरव आरजा[21]

---

5. मारगि विपे : ग
6. अपेछइआ ली० 1
   अपेक्षा नावा : 1
7. क्योंकि नावा : 1
8. इहु
9. पिरथमे ग, ली० 1
10. निहपापु ख
    नेहपाप ली० 1
    निष्पाप नावा : 1
11. निहपापु ख
12. निरमलु ख
    निर्मल देवते नावा : 1
13. पापुरुपु ग
14. असर ली० 1
15. हैनि ख
    हहि ङ
16. परसिधि ग
    प्रसिद्ध हुआ नावा : 1
17. भगवंति ग
    भगवत् के भय नावा : 1
18. तिआगि ग
19. मनुष्य ली० 2, मानस ङ मानुपु : ग
20. अधकारु ख
21. आरखला ग, ली० 1 आयुप् नावा : 1

प्रजत[22] पापहू विषे असकत[23] रहणा[24] असुरहु[25] का लछणु है।

सो जिस पुरप[26] ने पापहु की मनसा[27] का तिआगु[28] कीआ है। अरु वितीत[29] हूए पापहु के पुनहचरन[30] विषे सावधान् हूआ है सो उत्तम मानुप[31] वही[32] कहीता[33] है।

अरु प्रथमे[34] इस जीव की उतपति नीच अरु मलीन[35] है। इस करिकै जो आदि उतपति विषे भगवत[36] ने इसके ऊपरि भोगहु कउ

---

22 परजति ग, पर्यन्त नावा 1
23 असकति ग
आसक्त नावा 1
24 रहणा क, रहना नावा 1
रैणा ली० 1
25 असरो ली० 1
असुरो का लक्षण नावा 1
26 पुरपु ग
पुरुष ने नावा 1
27 मन्शा मु० 1
मनसा नावा 1
सकल्प नावा 2
28 तइआगि ग
29 वितीति ग
व्यतीत नावा 1
30 पुनश्चरण नावा 1
पुरसचरण ली० 1
प्रायश्चित्त नावा 2
31 उत्तमु मानुपु ख
32 ओही ली० 1
उही ग
वही नावा 1
33 कहावता है नावा 1
34 पिरथम नावा 1
35 नीचु मलीनु ग
36 भगवति ख, ग

प्रेरिआ[37] है अरु भोगहु का सत्रु[38] जो निरमल वृधि है सो पीछे किसोर अवस्था विषे प्रगट[39] होती है।

ताते भोगहु ने वालक अवस्था[40] विषे ही रिदै रूपी[41] गढ कउं घेरि लीआ है। अरु मन का सुभाव इन ही साथि मिलि गइआ है।

वहुड़ि जव निरमल वुधि प्रगट होती है। तव इस जीव कउं अवसमेव भोगहु के तिआग अरु पुरषारथ की अपेछा होती है। सो तिस करिकै[42] रिदै रूपी गढ़ कउं सत्रुअहू[43] ते छड़ाइआ[44] चाहता है।

इसी कारण ते कहा है। जो प्रथमे[45] सरव मानुपहु का अधिकारु पापहु का तिआग[46] है। अरु जगिआसी की आदि अवस्था[47] इही है। सो तिआग[48] का अरथु इहु है जो असुभ मारग[49] की ओर ते अपणे मुप

---

37. परेरिआ ग
    प्रेरा है नावा : 1
    प्रेरणा करते हैं नावा : 2
38. भोगहु का जो सत्रु ग
    सत्र ङ
    भोगों की शत्रु जो वुद्धि है नावा : 1
39. परगटि : ख, ग
40. वालक अवसथा ग
    वल्यावस्था नावा : 2
41. हृदयरूपी गढ नावा : 1
42. पुरपारथ करिकै : ख
43. सत्रहु : ग
44. छुड़ाइआ : ग
    'सोतिस —चाहता है'
    इत्यदि पाठ-लोप : नावा : 1
45. पिरथमे ग, ली० 1
46. तिआगि ख, ग
47. अवसता घ
    अवसथा ग
48. तिआगि ग
49. मारगि ग

कउ फेरणा। अरु सुभ मारग विपे सनमुप[50] होणा ॥१॥

अथ दूसरे सरग विषे सबरु अरु सुकरु का बरनन होवैगा[1] ।

ता ते जाण[2] तू जो जदप मूल धरम का तिआगु है[3]। पर तिआगु सबरु बिना सिधि नही होता[4]। सुभ करतूति करणी अर पापहु का तिआगु करणा सो सबरु बिना सिधि नही होता। इसी परि महापुरप ने कहा है। जो सवरु जो है[5] सो आधा धरमु है।

इही वचन महापुरप पासो किसी अवर ने भी पूछा था[6]। जो धरमु किस कउ कहते है[7]। बहुडि महापुरप ने कहा जो सबर ही धरमु है। विशेषता सवर की इसी वासते है[8]। जो साई भी अपने मुप सौ सत्तरि बेरि सबरु कउ फिरि फिरि चित कीआ है[9]। अरु जो जो उतमु पदारथु हैं[10] सो सभ सबर करि सिधि होते कहे हैं।

अगवानी जो है धरम मारग का सो सबरु ही कहा है। अरु

---

50 सनमुपि ग

1 'अबि दुतीए सरगि विपे सबरु अरु सुकरु का बनन होइगा' ग,
अथ दुज्जे सरग मो ली० 1, ली० 2
दूसरा सर्ग सन्तोष और धन्यवाद के वर्णन मे नावा 1
दूसरी किरण सन्तोष और धन्यवाद के विषय मे नावा 2

2 ऐसे जाणु तू ख

3 यद्यपि मूल धम का त्याग है नावा 1
याद रखो, धम का मूल यद्यपि त्याग है नावा 2

4 तथापि सन्तोष के बिना त्याग हो नही सकता नावा 2

5 जो सवर आधा धरमु है ख

6 'अरु किसी अवर पुरुष ने भी महापुरुप सिउ पूछा था' ख, ली० 1

7 'जो धरम का रूप किआ है' ख, ली 1 धम का रूप क्या है नावा 1

8 सो विसेपता सबर की इस कारण करि है ख, ध
सो विशेपता सन्तोष की इस कारण है नावा 1

9 'जो भगवत ने सबर की अपने वचनहु विपे बहुतु उसतति करी' है ख,
महाराज ने अपने वचनो विपे सन्तोष की बहुत प्रशसा करी है
नावा 1

10 उत्तमुपदि हैनि ध 'जो 2 उत्तमपद हैं' नावा 1

फल जो नांनां प्रकार के प्रापत होवणे दिपाए हैं[11]। सो सभी सवर ही करि दिपाए हैं[12]। अरु वहुतु फलु सवर ही वाले कउ हैं। अरु भगवंत ग्रंगि संगि सवरवालिआं के है[13]। दइआ भगवंत की अरु सहायता, अरु मारगु दिपावणा यह तीनों सवरवालिआं कउं होते हैं[14]।

अरु वहुतहु वचनहु विपे इउं भी कहा है जो पाप उन ही के छिमा होते है[15]। जिनके रिदे मों सवरु है। अरु परलोक मों ग्रवर जनहु के पाप भी उही छिमा करावते है[16]। जिनके रिदे मों सवरु है। अरु मारगु भी भगवत ने उनही कउं दिपाइआ है[17]। जिनके रिदेमों सवरु है। इसी कारन ते सवर की वसेपता है[18]। जो भगवंत आप

---

11. 'अरु धरम के मारग विपे अगवानी भी सवरु ही कहा है' ख
    'धर्म के मार्ग विपे अगवानी भी सन्तोप ही को कहा है' नावा : 1
    'धर्म मार्ग में सन्तोप ही सबसे आगे ले जाने वाला है' नावा : 2
12. 'अरु इउ भी कहा है। जो सवरवालिअहु कउ अनंत फल प्रापति होते हैं' ख, घ। पाठ-लोप नावा 1, 2
13. 'अरु भगवंतु सवरवालिअहु के अति निकटि है' : ख
    'और यों भी कहा है कि सन्तोपवालों के अति निकट हूं' नावा : 1
14. 'अरु सहाइता दइआ अरु उत्तम वूझ भी सवरवालिअहु कउं प्रापति होती है' ख
    'और मेरी सहायता दया और उत्तम वूझ भी संतोप वालों को प्राप्त होती है' नावा : 1
    'इह तीनों पदारथ एकठे सवर विना किसी कउं प्रापति नही होते' ख (अधिक पाठ)
15. 'अरु इउ भी कहा है। जो पाप उनही के छिमा होते हैं' ग
16. 'अरु परलोक विपे अवर पापीअहु के पाप भी उही छिमा करावता है' ख, ली० 1
    'परलोक विपे पापियों के पाप भी वही क्षमा करावते हैं' नावा : 1
17. 'अरु भगवत का मारगु भी उस ही ने पाइआ है। जिसके रिदे मों सवरु है' ख, ग,
    'और भगवत् का मार्ग भी उनही को प्राप्त हुआ है जिनके हृदय मे संतोप है' नावा : 1
18. 'अरु इस कारण करिकै भी सवर की विसेपता है' ग

सबर कउ पिआरा कीआ है[19]। अर प्रीतमु कीआ है[20]। अर वहुतु दुरलभु है[21]। किसी प्रीतिवान कउ प्रापत कीआ है[22]। अनथा नही कीआ[23]। अर इसी परि महापुरुष ने भी कहा है[24]। जो जिस कउ सभ अगहु विषे निहचैकारी अर मनसा सबर की प्रापति भई है[25]। तिस कउ कही जो निरभै होवै। जउ करि वहुतु व्रत नही रापता[26]। जदप जापु नही करता। तउ भी निरभै है।

अर महापुरुष इउ भी कहा था अपण प्रीतमहु कउ[27]। जो जैसा तुमारा निसचा है तिस ही परि सवरु धारहु। अरु द्रिढु होवहु। तउ इस वात कउ मैं वहुतु प्रीतमु रापता हौ[28]। जो जेता भजन तुम सभो करते हो। सो एताकु ही करो[29]। अर वहुतु तपु करो। परु मैं डरता हौं जो मेरे पीछे तुमारे ऊपरि माइआ वलु पावैगी। तुम

---

19 'जो सबर कउ आप भगवत ने पिआर किआ है' ख ली० 1-2,
'भगवत ने सतोष को आप प्यारा किया है' नावा 1

20 पाठ लोप ख, ली० 1, 2, नावा 1

21 पाठ-लोप ख, ली० 1-2 नावा 1

22 'अरथु इहु जो किसी विरले प्रीतवान कउ प्रापति कीआ है' ख ली० 1,
'अथ यह कि किसी विरले भक्त को प्राप्त किया है' नावा 1
'इसी से वे किसी विरले भक्त को ही इसे प्राप्त कराते हैं' नावा 2

23 'इतर जीवहु कउ नही दीआ है।' अधिक पाठ ख, ली० 1-2 नावा 1

24 'सो ऐसे ही महापुरष भी कहा है' ख, ली० 1, नावा 1

25 'जो जैसा तुमरा निसचा है सो तिसी विषे सवर करहु। अर द्रिढ होवहु' ख।
'जिस पुरुष को शुभ अगो विषे विश्वास और संतोष प्राप्त हुआ है' नावा 1
'शुभकर्मो मे विश्वास और संतोष प्राप्त हुआ है' नावा 2
निसचाकारी। घ ली० 1

26 जे करि ली० 1-2

27 'अरु महापुरुष अपणे प्रीतमहु कउ इउ भी कहा था' ख, ली० 1

28 'तव मैं इस बात कउ बहुतु प्रीतम रापता हौं' ख, ग

29 'सो तेना ही भजनु तपु एक एक ही करो' ख
'तितना भजन और तप एक एक ही करो' नावा 1

आपस मों विरुध कमावोगे[30]। जो देवते सहाइना करणे वाले हैं[31]। वहु भी उलटे तुम सों विरुध करहिगे। काहे ते जो तुमारी इसथिति जिउं की तिउं सबर मों नही देपीती[32]। तां ते डरता हीं। परु जो कोउ सबरु करता है। अरु पुंन की आसा रापता है। सो संपूरन पुंन कउं प्रापति होना है[33]। तां ते तुम सबरु करहु। जो माइग्रा न रहेगी। अरु धरमु हीं सथिर रहैगा।

अरथु इहु जो माइकी सामिग्री[34] जो तुमारे निकटि है सो नासता कउं पावेगी। अरु जो भगवंत[35] के निकटि है सो असिथर[36] है अरु सार है[37]। सो सबरु ही भगवत के निकटि है[38]। तां ते सबरवाला अस्यिर है[39]। वहुड़ि महांपुरुप इउ भी कहा है जो सबरु परलोक का पजाना है। अरु इउ भी कहते थे जो[40] सबरु कोउ पुरुप का रूपु होता तउ उदारु ही होता। अरु परम उदारु होता[41]।

अरु महांपुरुप इउ भी कहता था। जो सबरवालिग्रहु कउं भगवंतु अपणे मित्र जाणता है[42]। इतरि नहीं जाणता[43]। अरु इक

---

30. विरुध करोगे ख,
31. करते हैं ख
32. 'काहे ते जो सबर विपे तुमारी द्रिढता मुझ कउ नहीं भासती' ख
 निरसंदेह ख ली० 1
33. पूरन पुंन ख, पूर्ण पुण्य नावा : 1
34. 'माइआ की समिग्री नास होवेगी' ख
35. भगवंतु महाराज नावा : 1
36. इसथिर ख, स्थिर नावा : 1
37. सतिपदारथु ख
38. पाठ लोप ख
39. पाठ लोप ख
40. जो जे करि ख
41. तउ परम उदारु ख
 'जो पुरुप स्वरूप होता तो उदार होता' नावा : 1
 'संतोपी पुरुप उदार होता है' नावा : 2
42. सन्तोप वाले पुरुप महाराज के प्रियतम हैं नावा : 1
 सन्तोपी लोग भगवान् के अत्यन्त प्रिय होते हैं नावा : 2
43. पाठ लोप ली० 1, नावा : 1, 2

सत जन कउ अकासवाणी हुई थी[44]। जो मेरे सुभावहु का पीछा लेवहु[45] अरु ईसे[46] कउ इउ भी अकासवाणी हुई थी। जो मेरा नाउ अरु सुभाउ एक यह भी है। जो मुझ कउ सबरु कहते हैं[47]। अरथु इहु जो सबर करने वाला हो[48]।

अरु मिहतरि ईसे[49] भी इउ कहा है। जो जब लग[50] अपणी वासना कउ सबरु करिके न जलावहुगे[51]। तब लग तुमारी मुध वासना पूरन न होवैगी[52]। इस परि इक बारता है[53]। जो एक टोले कउ महापुरष देषत भइआ[54]। अरु उन सिउ पूछत भइआ। जो तुम बिसाहवाले हो[55]। तब उनहु ने कहा[56] जो सुपहु विषे हम सुकर करते

---

44 'एक महात्मा को आकाशवाणी हुई थी' नावा 1, 2

45 'मेरे स्वभाव की नाईं तू भी अपना स्वभाव कर' नावा 1
'तू अपना स्वभाव मेरे स्वभाव की तरह बना ले' नावा 1

46 मिहतर ईसे ख
एक महात्मा नावा 1
किसी महात्मा नावा 2

47 'सो मेरा स्वभाव एक यह है कि
मैं सन्तोष करने वाला हूं' नावा 1
'मेरा एक ही स्वभाव है, वह यह
कि मैं सन्तोष करने वाला हूं' नावा 2

48 पाठ-लोप नावा 1-2

49 इक सतजन ख 'और एक महापुरुष ने नावा 1
एक अन्य महापुरुष का कथन है नावा; 2

50 जवि लगि ख

51 'जब लग अपनी वासना से सन्तोष न करोगे' नावा 1

52 'तब लग जिस पद को तू चाहता है तिस पद को प्राप्त न होवेगा' नावा 1

53 पाठ लोप। नावा 1-2

54 'और एक जमात को देखकर महापुरुष ने उनसे पूछा' नावा 1

55 'कि तुम वैष्णव हो' नावा 1
'तुम क्या भक्त लोग हो' नावा 2

56 'तब उन्होंने कहा कि हम वैष्णव हैं' नावा 1
'उन्होंने कहा, हां, हम भगवान् की भक्ति करते हैं' नावा 2

है[57]। अरु दुपहु विषे सवरु करते हैं[58]। अरु साहिब की रजाइ मीं राजी रहते हैं। तब महांपुरुष ने कहा जो तुम निरसंदेह बिसाहवाले हो[59]।

अरु इउ भी महांपुरुष कहा है। जैसे सरीर का मेरु सिरु है। तैसे धरम का मेरु सवरु है[60]। अरु अवर जो सुभ लषण है सो सवर की नीचे है। सवर के समांन कोऊ नहीं[61]।

अथ प्रगटि करणा रूप सवर का[62]।

तां ते जाण तूं जो सवर महां उत्तम भूषणु है[63]। सो इसके पहिरणे वाला मानुष ही है[64]। अरु सवरु करना पसू का काम नहीं। उनके विषे सवर की समरथता नहीं[65]। काहे ते जो पसू अति नीच हैं[66]।

---

57. 'बहुरि महापुरुष ने कहा कि तुम्हारी वैष्णवता का चिह्न क्या है। तब उन्होंने कहा' नावा : 1
महापुरुष ने पूछा, 'तुम्हारी भक्ति का चिह्न क्या है' ? नावा : 2 (अधिक पाठ)
58. 'हम सुख विषे धन्यवाद करते हैं और दुःखों विषे सन्तोष करते हैं अरु श्री राम रजाय विषे प्रसन्न रहते हैं' नावा : 1
'......हर समय भगवदिच्छा में प्रसन्न रहते हैं' नावा : 2
59. तुम निस्सन्देह वैष्णव हो नावा : 1
भगवान के भक्त हो नावा : 2
60. 'और यों भी कहा है कि जैसे शरीर के अङ्गों विषे शिर उत्तम है तैसे ही सर्व शुभ गुणों विषे सन्तोष उत्तम है' नावा : 1
61. 'ताते जिस पुरुष विषे सन्तोष नहीं तिसका धर्म भी दृढ नहीं' (अधिक पाठ) नावा : 1-2
62. अथि प्रगटि करणा रूपु संतोपु का : ख
अर्थ प्रगट करना रूप संतोष का नावा : 1
सन्तोष का स्वरूप नावा : 2
63. 'ऐसे जान तू'
'कि संतोष करना मनुष्य का स्वभाव है' नावा : 1
64. पाठ लोप नावा : 1-2
65. 'क्योंकि पशुओं विषे संतोष की सामर्थ्य नहीं' नावा : 1
66. 'सो पशु अतिनीच हैं' नावा : 1
'पशु तो अत्यन्त निम्न कोटि में है' नावा : 2

अरु देवतिग्रहु[67] कउ लोड ही नही सबर की[68]। काहे ते जो उह आगे ही सुध हैं[69]। अरु भोगहु ते मुकति हैं। अरु पसू जो हैं। सो भोगहु विषे पराधीन हैं। अरु बुधि ते हीन हैं। उनके रिदे विषे भोगहु विना कछु अउरु नही भासता[70]। ता ते पसू भोग रूप है।

अरु देवते भगवत के प्रेम विष लीन हैं। अर कोई पदारथु उन कउ विछेपता देणेहारा नही[71]। जो उस पदारथ के दूरि करणे विष सबरु करहिं। ता ते सबरु करणा मानुष ही का अधिकारु है।

काहे ते जो आदि उतपति विषे मानुष भी पसू की निआई[72] होता है। इस कारण करि होता है। जो प्रथमे पान पान अरु पेलणा अरु सुदरताई का वणावणा मानुष परि प्रबल होता है। बहुडि किसोर अवसथा विषे देवतिग्रहु का प्रकासु आइ प्रगटि होता है। सो तिस करिकै भले बुरे का फलु पछाणता है।

सो प्रोजनु[73] इहु है। जो भगवत दुइ देवते मानुष की रषिआ नमिति भेजता है[74]। सो वहु एकु देवता मानुष कउ मारगु दिपावता[75] है। अरथु इहु जो उस देवते का प्रकास मानुष विषे प्रगटि होता है। तउ उसी प्रकास करिकै करम के फल कउ पछाणता है। अरु करतत की वसेषता विध सजुगति देषता है।[76]

---

67 देवतिओं ली० 1 (लोड आवश्यकता पजाबी)

68 'देवता को सतोष की अपेक्षा ही नहीं' नावा 1

69 'क्योंकि वह आगे से ही शुद्ध हैं' नावा 1
'क्योंकि वे तो स्वभाव से ही शुद्ध और सात्विक होते हैं' नावा 2

70 'उनके हृदय मे और कुछ नही भासता' नावा 1
'पशु तो भोग रूप ही हैं उन्हें और कुछ नही सूझता' नावा 2

71 'देवता भगवत् के प्रेम विषे लीन हैं और कोई पदार्थ उनको विक्षेप देनेहारा नहीं' नावा 1

72 नाई नावा 1 तुल (तुल्य) ली० 1

73 प्रजोजन ख प्रयोजन नावा 1

74 'सो महाराज दो देवता मनुष्य की रक्षा के निमित्त भेजते हैं' नावा 1 (किरामन और कातिविन नामक दो फरिश्तो की ओर सकेत है।)

75 देखावता है नावा 1

76 विधि सयुक्त नावा 1

वहुड़ि उसी प्रकास करिकै आप कउं अरु भगवंत कउं पछाणता है। अरु इउं भी जाणता है जो इह भोग अंत नासता कउं पावहिगे[77]। जदप इस काल विषे रमणीक भासते हैं। तउ भी विनास रूप हैं। अरु सुप इनका वेग ही विरस हो जाता है[78]। अरु प्रणाम[79] इनका परमदुप है। सो चिर प्रजंत[80] रहता है।

पर इस वूझु[81] का अधिकारी मानुष ही है। सो केवल इस वूझ करिकै भी कारजु सिधि नहीं होता। काहे ते जो जदप ऐसे भी जाणै जो इहु पदारथु मेरी हांन करणेहारा[82] है। पर जव लग उसके तिआगणे का वलु न होवै। तव लग इस जानणे करि लाभ कुछ नहीं होता। जैसे रोगी जाणता है जो इह रोगु मुझ कउं दुपु देता है। पर जव लग उस रोग के दूरि करिणे कउं समरथ[83] न होवै तव लग रोगी कउं सुप नहीं प्रापति होता है। तां ते भगवंत[84] की दइआ करिकै दूसरा देवता मानुप कउं वलु देता है। अरु सहाइता करता है। जैसे

---

77. 'यह भोग सब अंत में नाश को पावेंगे' नावा : 1
 'अन्त मे नष्ट हो जायंगे' नावा : 2
78. 'सुख इनका वेग ही विरस हो जाता है' नावा : 1
 विरत ङ, ली० 2
 नीरस नावा : 2
79. प्रीमांण घ, प्रमांन ली० 1
 परिणाम नावा : 1
 'और दुःख चिरकाल तक वना रहता है' नावा : 2 (पाठ-लोप)
80. चिरकाल पर्यन्त नावा : 1
81. वूझ नावा : 1
 समझ नावा : 2
82. हानि करने हारा नावा : 1
 हानि करने वाला नावा : 2
83. संम्रथ ख
 समर्थता नावा : 1
 सामर्थ्य नावा : 2
84. श्री जानकीनाथ जू नावा : 2
 भगवान नावा : 1

प्रथम देवते के प्रकास करिकै इस पुरष ने जाणिआ था जो इहु पदारथु मुझ कउ दुप दाइकु[85]है। तैसे दूसरे देवते के बचन करिकै उस पदारथ का तिआगु करता है। अरु जैसे मानुष कउ प्रिथमे भोग भोगणे की इछा थी। बहुडि तिस विषे भोगहु के तिआगि की इछा आन उतपति होती है[86]।

अरु चाहता है जो भोगहु के दुप ते मुकति होकरि सुपी होवउ[87]। ता ते भोग भोगणे की जो इछा थी सो असरहु[88] की सेना थी। अरु भोगहु के निवरति करणेहारी जो इछा है सो देवतिअहु[89] की सेना है। सो भोग भोगणे की इछा का नाम वासना का इसथभ[90] है। अरु भोगहु के दूरि करणे की इछा का नामु धरम का इसथभ[91] है। सो इनहु दोनो सैना विषे सदा विरधु अर लराई[92] रहती है। काहे ते जो असरहु की सैना कहती है जो भोगहु कउ भोगीऐ[93] अर देवतिअहु[94] की सैना कहती है जो इनका तिआगु करीऐ। सो इहु मानुष दोनहु की षैचि विषे रहता है। पर जब इहु पुरषु धरम की द्रिढता विषे अपणे चरण ठहरावै[96]। अरु भोगहु की वासना सो लराई विषे सावधानु होवै। सो इसी सावधानता का नामु सबरु[97] है। अरु जब भोगहु कउ

---

85 दुखदायक नावा 1

86 'तैसे ही उन भोगा को त्यागने की इच्छा आन फुरती है' नावा 1

87 सुखी होवौं नावा 1

88 आसुरी सेना नावा 1

89 देवनो की सेना नावा 1
दैवी सेना नावा 2

90 वासनास्तम्भ नावा 1

91 धर्मस्तम्भ नावा 1

92 विरोध और लड़ाई नावा 1

93 भुक्त ख (भुक्व अथवा भुज का अवशेष) भोगिये नावा 1

94 देवतो नावा 1

95 खैंच विषे नावा 1
खींचतान नावा 2

96 अपने पैर जमा देता है नावा 2

97 सन्तोष नावा 1

वसीकारु[98] करै अरु उन परि समरथता[99] पावै। तव इसी का नामु धरमजीत[100] है। अरु जव लगु इनको लराई विपे रहता है। तिसी का नामु मन का जुधु कहते हैं। तां ते सवरु इसी का नामु है। जो धरम की द्रिढ़ता विपे अपने चरन ठहरावै। अरु भोगहु की वासना के सनमुप हो करि इसथित होवै[101]। सो जहां इह दोनो सैना विरुधी नहीं होतीआं[102]। तहां सवरु भी नहीं होता। इसी कारन करि[103] कहा है जो देवतिअहु कउ भी सबर का अधिकारु नहीं। अरु पसूअहु अरु वालकहु विपे सवर की समरथता ही नहीं[104]।

तां ते ऐसे जांण तूं जो वहु दोनों देवते मानुप की रपिआ के निमिति[105] भगवंत[106] कीए है। सो तिनहु का नाम चित्र अरु गुपति[107] हैं। तांते जिस कउ भगवंत की दइआ करिकै वूझ का मारगु पुला है[108]। अरु जुगति करिकै तातपरज कउं समझता है[109]। सो ऐसे जांणता है जो कारण विना[110] कोई पदारथु उतपति नहीं होता।

---

98. वशीकारु नावा : 1
99. समर्थता नावा : 1
'इस तैयारी का नाम ही सन्तोप है' नावा : 2
100. परमजीत नावा : 1-2
101. 'भोगों की वासना के सम्मुख होकर स्थित होवै' नावा : 1
102. 'जहां यह दोनों सेना नही होती' नावा : 1
103. इसि कारणि करिकै ख
104. 'और पशुओं और वालको विपे संतोप की समर्थता' नावा : 1
105. नमिति क, नमित ली० 1 निमित्त नावा : 1
106. महाराजि ग
107. चित्रु अरु गुपति ख, चित्र और गुप्ता नावा 1, दो देव नावा : 2
108. वूझि का मारग पुला है क
'श्री राम जी की दया करके वूझ का अर्थ खुलता हैं' नावा : 1
'भगवान् की कृपा से विवेकवती वुद्धि प्राप्त होती है' नावा : 2
109. तातपरजि कउं समुझता है ख
'युक्ति पूर्वक शास्त्र के तात्पर्य को समझता है' नावा : 2
110. कारणि विना ख, कारण विना नावा : 1, कारण के विना नावा : 2

ता ते वूझवान देवता है जो प्रथमे बालक कउ वूझ अरु पछाण नही होती जो करम के फल कउ विचारै[111]। अरु सबर की सरधा अरु बलु भी नही होता। बहुडि किसोर अवस्था विषे वूझि आनि उतपति होती है[112]। अरु बलु भी प्रापति होता है। ता ते वूझ अरु बल का कारणु इहु दोनो देवते हैं। सो वूझ अरु बल कउ उतपति करते हैं।

परु वूझ सभ का मूलु है। काहे ते जो प्रथमे एही[113] होती है। बहुडि सरधा अरु बलु अरु करततु इसके फल फूल हैं[114] ता ते वहु देवता जो इस मानुष कउ मारगु दिषावता है। सो वसेष अरु उत्तमु है। इसी कारण ते उसका असथान[115] दाहने ओरि कहा है। सो तेरी रषिआ करता है। सो रषिआ इस प्रकार करता है। जो तुझ कउ सुभ मारगु दिषावता है। सो जब तू उसके वचन की ओरि स्रवन राषहि। तब उसते वूझ अरु पछान तुझ कउ प्रापत होती है। अरु जब तू उसकी ओरि सावधान होवहि तब इही सावधानता उस देवते परि तेरा उपकारु होता है। काहे ते जो उसके बचनहु कउ तुमने बिअरथ न कीआ। अरु इसी सावधानता कउ वहु देवता तेरी भलाई लिषता है।

अरु जब तू उस देवते के वचन ते बेमुष होवहि। जो उसकी ओरि सावधानु न होवहि। तब तू भी पसुअहु की निआई होवहिगा[116]। जो वूझ अर करतत की पछाण ते निहफलु रहैगा। सो इहु तेरी बेमुषाई[117]

111 विचारहि ख

112 'किशोर अवस्था विषे वूझ और बल के कारण ये दोनो देवता हैं सो वूध और उत्पन्न करते हैं' नावा 1
समझ और शक्ति नावा 2

113 इहु क ऐह ली० 1

114 हैनि ङ, हहि ग

115 इस्थानु ख
सथान ली० 1

116 होवैगा ली० 1

117 उहु ख ओह ली० 1, 2

उस देवता साथि भी वुराई होती है। अरु इसी तेरी वेमुपाई कउं उह देवता वुराई लिपता है।

तैसे उह दूसरा देवता जो तुझ कउं भोगहु ते दूरी करणे का वलु देता है। सो जव तूं उसके अनसार[118] पुरषारथु करहि। तव इसी तेरे पुरपारथ कउं उह देवता भलाई लिपता है। अरु जउ[119] उसते विपरजै करततु करहि। तव इही वुराई होती है। सो इहु[120] दोनों अवसथा तेरे ऊपरि वहु देवते लिपते है। सो इह लिपणेहारे तेरे रिदे विषे ही हैं। परु तेरे जानने ते गुहज[121] है। काहे ते जो वहु देवते अरु उनका लिपणा इस जगत की निआंई अधभूतक[122] नहीं। सो उन कउं नेत्रहु करिकै देपि नहीं सकीता। पर जव म्रित[123] का समा आवता है। तव उनका लिपिआ प्रगटि ही पढ़िआ जाता है। अरु परलोक विषे अपणे करमु[124] कउं विसतार[125] संजुगति देपता है। अरथु इहु जो चिरकाल प्रजंत नरक सुरग[126] विषे दुपसुप भुंचता[127] है सो अवर ग्रिंथहु[128] विषे इसका निरणा[129] वहुतु कहिआ है। अरु मेरे कहणे वा प्रोजनु[130] इहु है जो सवरु ऊहां होता हैं जहां लराई होती है। अरु लराई ऊहां होती है जहां परसपर दोनों सैना का विरधु होता है।

सो एक देवतिअहु की सैना है अरु एकु असरहु[131] की सैना है।

---

118. अनुसारु ख
119. जे कर लाै० 1-2
120. इहि ख
121. गुहजु ख, गुपति लाै० 1, गुह्य नावा : 1
122. आधभूतक लाै० 1 आधिभौतिक नावा : 1
123. 'मिरति ख तव यह स्थूल नैन मुंद जाते हैं' नावा : 1 (अधिक पाठ)
124. करमहु कउ ख
125. विसथार
126. सवरगि ङ
127. दुपसुप कउं भुंचता है ख भोगता है नावा : 1
128. ग्रंथों विषे लाै० 1-2
129. निरणै ङ, न्रिणे लाै० 1-2,
130. प्रजोजन ख
131. असुरहु ख असरों लाै० 1

सो इहु दोनो विरधो सैना इस मानुष के रिदे विषे एकठी रहती हैं। ताते प्रथम चरण धरम विष रापणा इही है जो इाहू की लराई विषे सावधानु होव। काहे ते जो आदि ही बालक अवस्था विषैं सैतान के लसकर ने रिदे रूपी गढ कउ वसीकार करि लीश्रा है[132]। अरु देवति अहु की सैना पीछ किसोर अवस्था विषे प्रगट होती है। सो जब लग इहु पुरषु दैतहु[133] की सैना कउ वसीकारु न करै। तव लग उत्तम भागहु कउ प्राप्त नही होता। अरु जब लग पुरषारथ करिकैं जुधु न करै। अरु इस ही जुध विषे सबरु न करै। तब लग भोगहु की सैना वसीकार नही होती। अर रिदे रूपी गढ दुसटहु ते नही छुटता। ताते जो पुरषु इस लराई विषे सावधान नही हूश्रा। सो[134] पुरषु ऐसे है। जैसे अचेतु राजा होवै जो अपणा देसु सत्रूअहु कउ अरपि[135] देवै। अरु लुटावै।

पर जब इहु भोग इस पुरष के वसीकार होवहिं। अरु बीचार की आगिश्रा विषे वरतता[136] है। तब जाणीऐ जो इसकी सपूरन जीति भई है। सो ऐसा कोई विरला होता है। अरु बहुते पुरषहु की अवस्था तो ऐसे होती है जो कबहू उनकी जीति होती है कबहु हानि होती है। अरथु इहु जो कबहु भोगाहु[137] प्रबल होते हैं। कबहू धरम की प्रबलता होती हैं पर सबर की द्रिढता बिना गढ की कदाचित[138] जीति नही होती ॥ २ ॥

अथ प्रगट करणा[1] इसका **जो सबर आधा धरम किस प्रकार है।**

---

132 'आसुरी सेना ने हृदयरूपी गढ को वशीकार कर लिया है' नावा 1

133 दइअतहु ख दैत्यो नावा 1

134 ओहु ली० 1-2,

135 अर्पि देवे नावा 1

136 वर्ते नावा 1-2

137 अरथु ख

138 कदाचित ग

1 अबि प्रगटि ख अब प्रगट करणा ली० 1
अथ प्रकट करना इसका कि सन्तोष को जो अपार धर्म कहा है सो किस प्रकार है और व्रत करना आधा धम किस प्रकार है नावा 1
सन्तोष पूरा धर्म है और व्रत आधा धम नावा 2

अरु व्रत करणा आधा सवर किस प्रकार है।

तां ते जांण तूं जो धरमु एक पदारथ[2] का नामु नहीं। सो धरम के लछण अरु सापां बहुतु हैं[3]। जैसे महांपुरष भी कहा है। जो धरम के अनेक दुआर[4] हैं। पर सभनहु ते वसेष इह है जो भगवंत[5] कउं एक पछानणा अरु एकता ही विषे चित कउं इसथित करणा। अरु प्रिथम दुआरा[6] धरम का इह है। जो पापहु का तिआगु करणा।

सो जदप धरम के लछण[7] बहुतु हैं[8]। पर मूल[9] सभनहु का इह[10] तीन पदारथ हैं। सो एक बूझ। दूसरा चित की अवस्था[11]। तीसरा करततु। सो इन तीनहु बिना कोई लछणु धरम का सिधि नहीं होता। जैसे तिआग का मूलु इहु है जो पापहु कउं विपवत जानणा। सो इहु बूझ है। अरु अवसथा इहु है जो आगे पाप कीआ होवै तिसका पसचा-तापु करणा[12]। अरु फलु इहु है जो पापहु का तिआगु करणा। अरु भजन विषे सावधान होवणा। सो इह[13] तिआग का करततु[14] है। तां ते

2. इकु पदारथु ख
3. हैनि घ हहि ग
4. दुआरि ख दुआरे ङ
5. श्रीराम जी नावा : 1
6. नीच दुआरा क, ङ, ली० 1-2, निम्न कोटि का द्वार
   नावा : 1, 2
7. लछणि ख
8. हहि घ. हैनि ग
9. मूलु ख
10. इहि तीनि पदारथि ख
11. (बूझ = मारिफ़त, अवस्था — हाल, करतूत = अमल)
12. पुरसचरण घ
13. इहु ख
14. करतूति ख, नावा : 1, आचरण नावा 2 (संभवतः कर्तव्य, करणीय कर्म की मिली-जुली भावना का बोधक शब्द। अमल, 'अमाल'।)

वूझ[15] अर अवस्या[16] अरु करततु[17] इहु[18] तीनो धरम का रूप हैं पर इन तीनहु विषे वूझ वसेप[19] है। काहे ते जो इह वूझ सभनहु[20] का मूलु है। जो चित की अवस्था भी वूझि ही करि ठहरती है। अरु अवस्था के अनसार[21] करततु[22] प्रगट[23] होता है।

ता ते वूझ व्रिछ[24] की निआई[25] है। अरु चित की अवस्था उस कीआ साषा[26] हैं। अरु अवस्था के अनसार जो करततु[27] होता है। सो फलुहै। ता ते निरसदेह[28] धरम दुइ पदारथहु का नामु हूआ। सो एक वूझ[29]। दूसरा करततु[30]। सो कोई करततु सबर[31] विना सिध[32] नही होता। सो इस प्रकार सबर कउ आधा धरमु कहा है।

अरु सबर के भी दुइ[33] भेद है। सो जब विपिअहु[34] के तिआगि

---

15 वूझि ख
16 अवस्ता लो० 1
17 करतूति ख, करतून ङ
18 एहो लो० 1-2
19 वसेपु ख, विशेष नावा 1
20 सभो लो० 1-2 सबका नावा 1
21 अनसारु ख
22 करतूति ग
23 परगट लो० 1
24 विरछ ख
25 नाई नावा 1 निआईं ग
26 सापावा ग, शाखा नावा 1
27 करतूनि ग
28 निस्सन्देह नावा 1
29 वूझि ग
30 करतूति ङ
31 सवरु क सन्तोष नावा 1
32 सिधि क सिद्ध नही होती नावा 1
33 दो भेद हैं नावा 1
34 विषअहु ख विषयों नावा 1

विपे सवरु करीऐ[35] तव इसी का नाम संतोषु है। अरु जव क्रोध कउं सवरु करि सहीऐ[36]। तव इसका नामु धीरजु[37] है। अरु व्रत करणे विपे भोगहु का संगम होता है। तां ते व्रत करणा आधा सवरु है। अरु जव संपूरन द्रिस्ट[39] करततु की ओरि करीऐ जो करततु करने विपे कठनाई अधिक है। अरु सवर विना करततु सिधि नहीं होता। तां ते संपूरन धरम सवर ही सिधि होता है।

पर जव लग इहु पुरपु वासना के विरुध[40] विपे है। तव लग भोगहु के तिआगि अरु दुप के सहणे विपे सवरु ही चाहीता[41] है। अरु इउ भी कहा है जो धरमवान पुरप का करततु[42] इस प्रकारि होता है। जो दुप विपे सवरु करणां अरु सुप विपे सुकरु[43] करणा। सो इस प्रकारि करि देपीऐ तउ आधा धरमु सुकरु हूआ। अरु आधा धरमु सवरु हूआ ऐसे ही महांपुरप[44] भी कहा है जो धरमु दुइ[45] भाग हैं। सो एक भाग सवरु है अरु एक भाग सुकरु है[46]। पर जो कठिनाई की ओरि देपीऐ तो सवर करना वुहुतु कठन है। तां ते पूरन धरमु सवरु[47] ही सिधि होता है॥ ३॥

अथ प्रगट करणां जो सरव अवस्था अरु सरव काल विपे सवरु

---

35. सन्तोप कहिये नावा : 1
36. और जब क्रोध को सन्तोप कर सहिये नावा : 1
37. धैर्य नावा : 1
38. संयम होता है नावा : 1
39. दृष्टि नावा : 1
40. विरुद्ध नावा : 1
41. चहिये है नावा : 1
42. करतूति ख
43. धन्यवाद नावा : 1
44. महापुरुप नावा : 1
45. दो भाग नावा : 1
46. 'एक भाग सन्तोप है और एक धन्यवाद है' नावा : 1'
47. 'सन्तोप में ही सिद्ध होता है' नावा : 1

ही चाहीता है[1]।

ता ते जाण[2] तू जो इहु मानुष दुहु अवस्था ते रहत कदाचित[3] नही होता। सो एक इस्ट[4] है दूजी अनिस्ट[5] है। इनहु दोनोहु विषे[6] सबर ही चाहीता है[7]। पर इस्ट विषे[8] सबर करणा इहु है[9] जो सपदा भोग मान अरु अरोगता[10] इसत्री पुत्र अरु इसकी निग्राई[11] जो पदारथ हैं[12]। सो इनहि विषे[13] सबर करणा बहुतु कठिनु[14] है।

काहे ते जो जब लगि[15] इहु पुरखु अतरिमुष[16] होवै नाही[17]। अरु

---

1 अवि प्रकटि करना ख 'अथ प्रगट करना इसका कि सर्व अवस्था और सबकाल विषे संतोष चाहिये' नावा 1
'सन्तोष की सभी काल और सभी अवस्थाओं में आवश्यकता है' नावा 2

2 'ताते जान तू' नावा 1

3 कदाचित् नावा 1

4 इसटि ख इसठ ली० 1 इष्ट नावा 1

5 अनिसटि ख, अनिसट ली० 1, अनिष्ट नावा 1

6 इनहु दोनो विषे ख

7 'सन्तोष ही चाहिऐ' नाव 1

8 'इसटि ही विषे' ख

9 एहु है ग एहो है ली० 1 यह नावा 1

10 आरोग्यता नावा 1, 2

11 नाई नावा 1

12 पदारथि हहि ख

13 इनहु विषे ग इन विषे नावा 1

14 बहुतु कठनु ख

15 जौं लगि ख 'क्योंकि जब यह पुरुष' नावा 1

16 अतरमुख ली० 1 'अन्तर्मुख होवे नावा 1 (अपपाठ) 'अन्तर्मुख होना चाहे नावा 2

17 नही ग (नही। पाठ लोप। नावा 1)

भोगहु कउं सत जांणे[18] अरु इनहु विषे प्रसंन होकरि वरतै[19]। तब[20] इस जीव कउं वेमुपता[21] अरु अचेतता[22] प्रापत होती है[23]। इसी कारण करि संतजनहु ने कहा है। निरधनताई वसेष[24] है। जो निरधनताई विषे सबरु करि सकीता[25] है। अरु धन अरु संपदा विषे सबरु करना कठिनु है[26]।

तां ते ऐसा पुरष[27] कोई दुरलंभू[28] होता है। जो सरब संपदा[29] विषे सबरु कर। जैसे महांपुरष कउं अपणे[30] प्रीतमहु[31] ने कहा था। जो प्रथमे[32] जब हमारे पास[33] संपदा कछु न थी तब भोगहु ते सबरु

---

18. 'सत करि जाणहि' ख 'भोगों को सत्य जाने' नावा : 1
    सत्य समझेगा नावा : 2
19. 'इन विषे प्रसन्न हो करि वर्तै' नावा : 1
    'रमणीयता बुद्धि से उनका सेवन करेगा' नावा : 2
20. तवि ख
21. वेमुखी घ विमुखता नावा 1 'अपने लक्ष्य से विमुख होकर प्रमादी हो जायगा' नावा : 2
22. अचेतनता लीं० 2
23. प्रापति होती है : ख
24. वसेपि ख 'इसी से सन्तजनों ने निर्धनता की प्रशंसा की है' नावा : 2
25. 'सन्तोष कर सकते हैं' नावा : 1
    'सन्तोष किया जा सकता है' नावा : 2
26. 'सबरु करना कठिनु है' ख
    'सन्तोष होना कठिन है' नावा : 2
27. पुरषु ख
28. द्रुलंबु ख द्रुलंभ ली. 1, दुर्लभ नावा : 1, 2
29. संपदाहु ख
30. अपुणे ली. 1
31. उनके प्रियतमों नावा : 1, भक्तों नावा : 2
32. प्रियमे ख
33. पासि ख

कीआ जाता था[34]। अर अब बहुतु माइआ करिकै[35] सबर नही कीआ जाता।

सो ऐसे ही साई[36] भी कहा है जो धन अरु मान अरु संतान तुमारे धरम कउ विघन करनेहारे हैं। अर इनहु[37] ने तुम कउ पटलु डारिआ[38] है। सो मेरे कहणे का तातपरजु इही है। जो सरब भोग भी होवहि[39] तउ इनहु विषे सबरु करना कठिनु है।

काहे ते जो भोगहु विषे सबरु तब होवै जब रिदै की निरलेपता का बलु अधिक होवै। अरु सुपहु विषे सबरु करणा इहु[40] है। जो माइआ के पदारथहु विषे रिदा बधमान[41] न होवै अरु इन कउ देषि करि प्रसन न होवै। अरु इउ जाणै जो इहु पदारथु कछुइकु दिनु[42] मेरे पासि है। अरु बहुडि दूरि हो जावहिंगे[43]। ता ते इनहु सुष कउ सुष न जाणै। काहे ते जो इह भोग भगवत की ओरि ते[44] विघनु करणेहारे हैं।

ता ते जब इस प्रकार जाणै[45]। तब जो जो सुष इस कउ भगवत दीए हैं। सो तिनके सुकरु विषे द्रिढ होवै[46]। तब भगवत की ओरि

---

34 'भोगों से सन्तोष किया जाता था' नावा 1
'तब हम सन्तुष्ट थे' नावा 2
35 'बहुत माया बढ़ जाने पर' नावा 2
36 महाराज नावा 1, प्रभु नावा 2
37 इनही ने नावा 1
38 पटल डाला है नावा 1
'इन्ही ने तुम्हे उलट-पुलट कर रखा है' नावा 2
39 होवहि ख
40 इहु ख
41 बन्धवान नावा 1
42 कुछुकु ख कुछ दिन तो नावा 2
43 होजावेंगे नावा 1
44 श्रीराम जी से नावा 1
45 जाणहि ख
46 होवहि ख

सनमुष[47] होता है। सो इनका सुकरु करना इहु है जो घनु अरु तनु अर सरव सुपु भगवंत के मारग विषै[48] लगावै। सो इह[49] सुकरु भी सवर साथि सिधि[50] होता है। अरु दूसरी अवसथा[51] जो अनिस्ट[52] कही थी। सो इह तीन प्रकारि करि[53] होती है। सो एक इह[54] पुरष अपणे[55] पुरषारथ करि करता है। जैसे भजन का करणा अरु पापहु[56] का तिआगणा[57]।

अरु दूसरी इस पुरष के पुरषारथ[58] करि नही होती[59]। भगवंत[60] की आगिआ करि[61] होती है। सो रोगु अथवा कोई दुषु जो[62] होता है। सो इसके वल करि नहीं होता।

अरु तीसरी अवस्था इह[63] है जो उस विषे प्रिथमे[64] इसका वलु

---

47. सनमुपु ग
48. श्री रामहेतु नावा : 1
    'अपना शरीर और सर्वस्व उन्ही के लिये लगा दें' नावा : 2
49. इहु ख
50. सिद्ध नावा : 1
51. अवसता ली० 1
52. जु अनइसटु ख
53. तीन प्रकार की नावा : 1
54. इकु इहु ख
    जु ग
55. अपणी ख
56. पापां का क
57. तिआग पापहु का ख
58. पुरुपारथि ख
59. होती नही ली० 1
60. भगवत् नावा : 1 भगवान् नावा : 2
61. आज्ञा करके नावा : 1 'भगवान् की इच्छा से' नावा : 2
62. जि ख
63. इहु ख
64. परथमे ङ

नही चलता। बहुडि पीछे इसके वसीकार[65] होती है। जैसे कोई पुरषु इस कउ दुपावै[66]। सो उसका दुपावणा इसके वसीकार नही[67]। पर उसके साथ बदला करणा इसके वसीकार होता है।

जो प्रथम अवस्था जो इसके वसीकार कही थी जि[68] भजन करणा अर पाप[69] का तिआगणा। सो इस विषे भी निरसदेह[70] सबर चाहीता है। काहे तो जो भजनु अर तपु अरु व्रत[71] दान[72] सो सबरु बिना इह भी सिधि नही होते। सो इनके आदि मधि अंति विषे सबरु ही चाहीता है।

सो आदि भजन के इउ सबरु चाहीता है। जो मनसा निहकाम[73] करै। अरु कपट मन सो दूरि करै। सो इहु भी अति कठिनु है। अरु मधि भजन के सबरु इस प्रकारि चाहीता है। जो भजनु विघ[74] सजुगति अर मलीनता ते रहत करै। अरु द्रिस्ट कउ समेटि राखै। अरु मन कउ सकलपहु ते सुध करै। बहुडि भजन के अंति सबरु इस प्रकारि कीआ चाहीता है[75]। जो किसी के आगे अपणा भजनु प्रकटि न करै। अरु अभिमान ते रहित होवै।

अरु इह[76] तो निरसदेह प्रसिधि है जो सबर बिना पापहु का तिआगु नही होता। काहे ते जो जिस भोग की बहुती त्रिसना वढती

---

65 वशीकार क आधीन होता है नाबा 1
66 दुपावहि ख
67 नाही ग
68 जिवें क (पजाबी जैसे)
69 पापहु ख
70 त्रिसदेह लॉ० 2 निस्सन्देह नाबा 1
71 बरतु ङ
72 दानु ख
73 'भजन विधिवत् और पवित्रता पूर्वक करें' नाबा 2
74 विधि सयुक्त नाबा 1
75 किया चाहिये नाबा 1
76 इहु ख

है तेता ही पाप त्रिपे सुगम ही वरतमानु[77] होता है ! अरु उस विपे सवरु करना कठिन होता है ।

जैसे जिवहा करि[78] जो पाप[79] होता है । तिप विपे सवरु नहीं कीआ जाता । काहे ते जिहवा का वोलणा वहुतु सुगमु है । अरु जतन ते रहत है । सो अधिक वोलणे का सुभाव[80] द्रिढ़[81] हो जाता है । तव ऐसा कठनु होता है । जो जतनु करिकै भी दूरि नहीं होता ।

अरु इहु वहुतु वोलणे का सुभाव ही सैतांन की सेना का पिआदा[82] है । अरु वहुतु वोलणे वाला पुरप इउ जाणता है । जो मेरे वचन सुण करि लोक[83] प्रसंन होते हैं तां ते वहुतु वोलणे का तिआगु करि नहो सकता । अरु मौनि करनी[84] उस कउ कठिन होती हैं । इसी कारनि करि उनहु पुरपहु का उपाव इही है । जो प्रथमे[85] जगत के मिलाप का तिआगु करहि । अरु इकांत[86] विपे रहहि । तव अधिक वोलणे[87] के पाप ते मुकति होवहि । अंनथा[88] नहीं होवहि ।

अरु दूसरी अवसथा इहु है । जो प्रथमे[89] भगवंत की आगिआ करि होती है । अरु पीछे उस विपै इस पुरप[90] का भी वलु होता है ।

---

77. प्रवृत्त होना नावा : 2
78. जिम्भा करिकै ली० 1
79. जु पापु ख
80. सुभाउ ख
81. द्रिढु ख
82. 'अविद्या की सेना का भट है' नावा : 1 'अविद्या की सेना का'''सैनिक ही है' नावा : 1
83 लोकि ली० 2, 'वाचाल पुरुप समझाता है नावा : 2
84. मौन करना नावा : 1
85. प्रिथमे ख
86. इकाति क
87. अति भापण नावा : 2
88. अन्यथा नहीं नावा : 2
89. प्रिथमे ख, पिरथमे ली० 1
90. पुरपु ख

जैसे कोई पुरष इस कउ सरीर अथवा वचन साथि डडु[91] देवै। तब उसका वदला करना इसी के वल करि होता है। सो इस विषै भी द्रिढ सवरु चाहीता ह। जो सवर करिकै सहै। अरु वदला न करै। इसी परि एक साई लोक[92] ने कहा है। जो जब लग लोकहु के दुषावणे विषे हमने सवर न कीआ। तब लग हम कउ सपूरन धरमु प्रापत न हूआ।

अरु[93] साई भी महापुरष कउ कहा था। जो[94] जे करि कोई तुझ कउ दुषावै तब तू वदला ना कर। अर मेरा भरोसा कर। बहुरि इउ भी कहा है। जो कोई पुरष तुझ कउ दुरवचनु कहै तब तू उस विषे सवर कर। अरु उनकी सगति का तिआगु कर। अर इउ भी कहा है जो जाणता हों जो दुरजनहु के वचन[95] करि तेरा रिदा अप्रसन होता होवैगा[96]। पर तू मेरे भजन विषे प्रसनु होहु[97]। अर उनकी ओरि रिदा न देहि[98]।

सो इसी परि महापुरष की वारता[99] है। जो एक समै[100] कछुकु धनु लोकहु कउ वाट करि देते थे। तब किसी दुसट ने कहा। इहु धनु भगवति अरथ बीचारि साथि नही वाटते[101]। सो इहु वचनु जब

---

91 दण्ड देवै नावा 1
'शरीर या वाणी से कष्ट पहुचावै' नावा 2
92 एकि साई लाकु ली० 1
93 'महाराज ने महापुरुष से' नावा 1
'भगवान् ने भी महापुरुष से' नावा 2
94 जि ख
95 वचनहु क
96 होवहिगा ख
97 होवहु ख
98 देवहि ख
99 गाथा नावा 2
100 'इकि समे विषे' ख
101 'यह धन को भगवत् अथ और विचार साथ नही वाटते' नावा 1
'बाट रहे थे' नावा 2
'इनका यह अर्थ वितरण भगवान् के लिए और विचारपूर्वक नही है' नावा 2

महांपुरष[102] सुणिआ। तव महांपुरष का माथा कछ्कु लालु[103] होत भइआ। वहुड़ि कहणे लागे जो मिहतरि मूसा[104] जो मेरा भाई था सो धंनि है। काहे ते जो इसते भी अधिक उस कउं लोकु दुपावते थे। अरु उहु[105] सहणसील[106] होइ रहते थे।

अरु इउ भी सांई कहा है जो जेकरि कोई पुरषु तुम कउ दुपावै। अरु तुम सहणशील होवहु। तउ भला है। अरु जे वदला करहु तउ म्रिजादा[107] अनुसार करहु। अधिक न करहु।

अरु मिहतरि ईसे[108] भी अपणे प्रीतमहु कउ कहा था। जो जदप आगे किनहूं ने इउ भी कहा है[109]। जो जो कोई इसका हाथु काटै तव उसका भी हाथु काटिऐ। अरु जो कोई नेत्रहु अरु कांनहु कउं दुपावै। तव उसके भी नेत्र अरु कानहु कउं दुपु दीजीऐ। सो अव इस वचन कउं भी झूठा नहीं कहता। पर मै तुम कउ इस प्रकारि उपदेसु करता हो। जो वुराई का वदला वुराई न करिऐ। अरु जो कोई तुम कउं दाहने ओरि मारै। तव वावां अंगु भी उसके आगे रापहु। अरु

---

102. महांपुरपि ख
 महापुरपु ली० 1
103. माथा लाल होता भया नावा : 1
 माथा गर्म हुआ नावा : 2
104. अगले महापुरुप नावा : 1
 प्राचीन महापुरुप नावा : 2
 (पाठ लोप)
105. उह ग
106. सहणिसीलु ली० 1
107. मरियादा ग
 मर्यादा अनुसार नावा : 1
 'लोभ तो वहुत मर्यादा के साथ, अधिक नहीं' नावा : 2
108. 'इकि संत ईस्वरजवान ने' ख
 ईसा महापुरुप ने नावा : 1
 महापुरुप ईसा ने नावा : 2
109. 'यद्यपि आगे किसी नीति शास्त्र में यों भी कहा है'। नावा : 1
 'जदप आगे धरमसासत्रहु विषे इउ भी कहा है' ख

जो कोई तुमारी पाग उतारि लेवै । तव तुम उस कउ जामा[110] भी देवहु। अरु जो कोई तुम कउ विगार[111] पकडि कै एक कोम लै जावै। तव तुम आप ही दुइ कोम चले जावहु ।

अरु महापुरष भी कहा है जो जो कोई तुम कउ कछु भाव करि न देवैं। तव तुम उस कउ भाव सजगति देवहु। अर जो कोई तुमारे साथि बुराई करै। तव तुम उसके साथि भलाई करहु। सो सचिआर[112] पुरषहु का सवरु इही है।

अरु तीसरी अवस्था इह है जो उमके विषे मानुष का वलु कछु नही चलता। जैसे किमी का पुत्र मरि जावै। अथवा धनु नास हो जावै। अथवा कोई सरीर का अगु कटिआ जावै। सो इस कउ अकासी[113] दुषु कहते है। सो इनहु विष भी सवरु करना अति कठनु है। अरु जव इनहु विषे सवरु करै। तक इस कउ उतमु फलु प्रापत होता है।

ऐसे ही एक साई लोक ने भी कहा है। जो सवरु तीन प्रकारि का है। सो प्रथमे इहु है। जो सतजनहु की आगिआ अनुसार भजन विषे द्रिढ होवै। तव इस पुरष कउ अधिक फलु होता है।

अब दूसरा सवर इहु है जो जो पदारथ सतजनहु ने निंद[114] कहे हैं। सो तिनहु विषे न वरते। अरु सवरु करिकै उनका तिआगु करै। तव पूरन फल ते भी दुगणे[115] फल कउ पावता है। अर तीसरा सवर इहु है जो महाराजि की इछा अनुसारु कछुकु दुष आइ पडै तउ उस ही विषे सवरु करै। तवि उस कउ तिगुणा फल प्रापति होता

110 अगरखा नावा 2
111 बिगारि ख
बेगार नावा 1
बेगार मे नावा 2
112 साचे नावा 1
113 आकाशी दु ख नावा 1
114 निन्द नावा 1
115 द्विगुण नावा 1

है। इसी कारन करि महापुरुष भी भगवंत के आगे अरदासि करता था। जो हे महाराज मुझ कउं ऐसी निसचाकारी बुध देहि। जो जिस करके जगत के दुषहु कउं मैं प्रसंन होकरि सहौं।

अरु इकि संत दाऊद ने ऐक वार भगवान के आगे अरदासि करी थी जो हे महाराज जिस कउं तू कछु दुःख भेजहि। अरु उहु पुरपु प्रसंन होकरि सहै। तव तू उस कउं कैसा फल देता है।

वहुड़ि सांई कहा जो उस कउं मैं धरम का सिरोपाउ देता हौं। जो किसी विघन करि उसका धरम पंडिति नहीं होता। अरु सांई भी कहा है[116] जो जिस मांनुप कउं कछु दुपु मैं भेजता हौं। अरु उहु पुरपु उस विषे प्रसंन हो करि सत्ररु करता है[117]। तव मैं उसके साथि लेपा नहीं करता। अरु किसी दफतरि की ओरि नहीं भेजता।

अरु सांई इउ भी कहा है जो हे जवराईल[118], जिसके नेत्रहु की जोति मै हिरि[119] लेवउं। अरु इहु पुरपु प्रसंन रहै। तव मैं उस कउं अपणा दरसनु प्राप्त करता हौं।

अरु इक सांई लोक[120] ते किसी जगिआसि ने इहु वचनु लिप लीआ था। जो अपणे सुआमी की आगिआ विषे सवरु करनां विसेष है। सो जव उस जगिआसी कउं कोई संकटु प्रापत होता था। तव उसी कागद कउं वाचि करि सवर विषे द्रिढ़ होता था।

अरु इसी परि एक अवर भी वारता है। जो एक माई मारग विषे गिरी[121] पड़ी थी। अरु उसके पांव के अगूठे का नपु उतरि गइआ। अरु रुवरु चलने लगा। तिसी समै उहु माई प्रसंनता करि हसण लागी। तव लोकहु ने पूछिआ जो दुष के समै तूं किउं करि हसी है। वहुड़ि उस माई ने कहा जो सवर के फल की प्रसंनता ने मेरा दुपु भुलाइ दीआ है। तां ते मुझ कउं पेदु कछु नहीं भासिआ। ऐसे ही महापुरप भी

116. 'अरु भगवंत ने इस प्रकार भी कहा है' ख
117. 'किसी आगे उस दुःख को प्रसिद्ध करके न कहे' नावा : 1
118. 'अरु एक देवता कउं भगवतं ने इस प्रकार कहा है' ग
119. हरि लेवौं ख
120. एक संतजन ते ख
121. गिडी ख

कहा है जो साई की बडाई जानणी इहु है। जो कुछ दुपु अरु कमटु इस कउ आइ प्रापत होवै। तब उस दुप कउ लोकहु के आगे प्रसिधि न करै। अरु प्रसन रहै।

अरु इक साईलोक[122] इउ भी कहा है जो दुपु विषे रुदनु करने अरु मुप का रगु पीला करिकै सबरु दूरि नही होता। काहे ते जो दुप विषे रुदनु अरु मुप का फिरणा अवममेव[123] हो जाता है। पर मवरु तब दूरि होता है। जब भगवत की निंदा करै। जो साई ने मुझ कउ कैसा दुपु दीआ[124] है।

जो इसी परि महापुरष की वारता है। जो जब महापुरष का बेटा म्रित हूआ था। तब उनके नेत्रहु महि कछुकु आसु भरि आए। तब प्रीतमहु ने कहा जो, जो रुदनु करना सभ किसी ने वरजिआ है। सो तुम किम निमति रोवते हो। बहुडि महापुरप ने कहा जो इहु रोवणा नही। इहु दइआ है। जो दइआ करिकै मेरा रिदा कोमल हूआ है। अरु दइआ करनेहारे परि साई भी[125] दइआ करता है।

अरु इक साई लोक[126] ने इउ भी कहा है। जो किसी का कोई सम्बधी मरै। तब सोक का पहिरावा न करै। अर किसी प्रकारि आपणे सोक कउ लपावै नही। तब सपूरन सबरु होता है। अरु जब अपने मुप परि हाथ मारै। अर सोक का पहरावा करै। अर ऊचे पुकारि करि रोवै। तब इस करिकै सबरु दूरि हो जाता है। ता ते इउ जाणिआ चाहीता है। जो इहु सभो जीव भगवत[127] के हैं। अरु भगवत[128] ही ने उतपति कीए हैं। अरु म्रित भी उसकी आगिआ करि होते हैं। ता ते सोकु करना विअरथ है।

---

122 एक सत ने ली॰ 1
123 अवमिमव ग
124 कैसा दुपीकीआ है ख
125 भगवत ख
126 इक सत जन न ली॰ 2
127 श्री रामजू
128 श्री राम ही

इसी परि इक माई का व्रतंतु[129] है। जो उस माई का एक पुत्र था। सो म्रित कउ प्रापत भइआ। अरु भरता उसका कहुं गइआ हूआ था। सो जब घर आइआ। तव पूछणे लागा। जो तेरा पुत्र जो रोगी था। सो अब उसका किआ हवालु[130] है। तव इसत्री ने कहा जो आजु वहुतु विस्रांम मों है। ऐसे कहि कर भरते कउ भोजनु षलवाइआ[131]। अरु आप भी भोजनु कीआ। वहुड़ि भरते कउं कहणे लागी जो मेरी अमकी[132] वसतु पड़ोसी ने मांगि लई थी। अरु अव मैं मांगती हौं। तव आगे ते वहु सोरु करता है[133]। अरु देता नहीं।

तव भरते[134] कहा जो वहु वडा मूरपु[135] है। जो विगानी[136] वसतु मांगि लेवै। अरु देणे के समै पुकारि करता है[137]। वहुड़ि इसत्री ने कहा जो तेरा पूत[138] भी सांई की वसतु तेरे पासि अमांणि[139] थी। सो अव अपणी वसतु सांई ने संभाल लीनी है। तां सोकु करना परवांनु नहीं। वहुड़ि भरते ने कहा जो इसी प्रकारि निरसंदेह है। जो जव हमारे पासि था तव भी साहिव की अमांन था। अव भी उसी ने संभालि लीआ है।

वहुड़ि इनके सबर की वारता जव महांपुरप सुणी तव उन दोनों कउं वधाई दीनी। अरु कहा जो भगवंत का भांणा[140] तुम कउं मीठा

---

129. व्रिरतंत ख
 वृत्तांत नावा : 1
130. हाल ख, नावा : 1
131. भोजन करवाया नावा : 1
 भोजन खलाइआ ख
132. अमुक नावा : 1
133. 'शोर करती है देती नहीं' नावा : 1
134. भरते ने ख पति ने नावा : 1
135. महांपूरपु : ख
136. विरानी नावा : 1
137 'देने के समय पुकार करती है' नावा : 1
138. पुत्रु ख
139. अमानि : ख ('अमानत' का संक्षिप्त रूप) थाती नावा : 1
140. इच्छा नावा : 1 ('आज्ञा' √भण् से विकसित पंजाबी शब्द)

लागा है। अर इसी करिकै भगवत तुम कउ प्रीतमु कीआ है। अर मैंने धिआन विषे देषिआ है। जो उत्तम सुपद्द विषे तुमारा निवासु हूआ है। ता ते निरसदेह इही प्रसिधि हूआ जो सरव अवस्था विषे अर सरव काल विषे जगिआसी कउ सबर ही चाहीता है।

काहे ते जो जदप सरव का तिआगु करिकै इकात विषे जाइ रहै। अर सरव भोगहु ते मुकति होवै तब उनहा भी सबर चाहीता है। इस वासते जो जब इकात ठउर विषे वैठता है। तब भी रिदे विष नाना प्रकारि के सकल्प फुरणे लागते हैं। तब उनहु सक्लपहु करिकै भजन विषे विछेपता होती है। सो वहु समा विअरथु होता है। अर आरजा रूपी[141] जो इस पुरष की पूंजी थी। सो पूजी इसको विरथी गई[142]। तब इस करिकै मानुष की परमहान[143] होती है। ता ते इसका उपाव इही है जो आप कउ भजन विषे परचावै। अर सबर विषे द्रिढु होवै। अरु सकलपहु ते मुकति होवै। अरु जब लग इस पुरष का रिदा भजन विषे इकत्र न होवै। तब लग आनि सकलपहु[144]ते नहीं छूटता।

सो इसी कारनि ते महापुरष कहा है जो पुरष जोबनवान[145] अरु अरोग होवै। अरु सुभ क्रिआ ते रहित होकरि वैठि रहै। तब भगवत की ओरि ते बेमुष होता है। काहे ते जो जदप इद्रीअहु करिकै निहकरमी हूआ पर मन करिकै सक्लपहु ते रहित नही हो सकता।

ता ते जाणीऐ जो निहकरमु हूआ। जो मनु उसका सक्लपहु विषे असकति रहता है ता ते सैतान[146] उसके निकटि है। अर उसकी वुद्धि सक्लपहु का घर होती है। सो जे करि भजन की द्रिढता करि सकलपहु कउ दूरि न सके। तब चाहीऐ जो सेवा अथवा किसी सुभ क्रिआ विषे इद्रीअहु कउ लगावै अरु। ऐसे पुरष कउ इकात विषे

---

141 आयुष् रूपी नावा 1
142 व्यय गई नावा 1
143 परमहानि नावा 1
144 आन सकल्पों से नावा 1
145 धनवान ख
146 मादआ के छल ख
अविद्या उसके निकट नावा 1

वैठणा परवानु नहीं। जो जिस कउ रिदे विषै भजन का वलु न होवै। तब चाहीऐ जो सरीर करि सुभ क्रिया विषे इसथित होवै, तउ भला है।

अथ[1] सातवें सरग[2] विषे वीचार का वरनन[3] होवैगा

तां ते जाण[4] तूं जो महापुरष[5] भी[6] ऐसे कहा है। जो[7] एक वरस् के भजन ते एक घड़ी का वीचारु उत्तमु है। अरु महाराज[8] ने भी अपने[9] वचनहु विषे वीचार ही कउं वसेष[10] कहा है। सो जदप[11] सभ[12] कोई वीचार की वसेषता कउं सुनता[13] अरु मानता[14] है। पर तउ भी वीचारु का अरथु विरला ही[15] कोई समझता है। अरु इस वारता कउं भी कोई नहीं जानता[16]। जो वीचारणे जोगु वसतु किआ है।

अरु वीचारणे विषे प्रोजनु[17] किआ है। अरु वीचार का फलु

---

1. अब क, अवि ग
   'विचार के निरूपण का वर्णन' नावा : 1
   'विचार के स्वरूप, प्रयोजन और अवकाशादि का निरूपण' नावा : 2
2. सरगि विषे ख
3. वरननु ख व्रनन ली० 1
4. जांणु ग जान तू नावा : 1
5. महापुरष ने ग
6. भी लोप नावा : 1
   'महापुरुष का कथन है कि' नावा : 2
7. कि नावा : 1
8. भगवंत ग ली० 1
9. अपणे ख, अपुणे घ
10. विसेष ग
11. यद्यपि नावा : 1
12. सभ् ख, ली० 1
13. सुणता ग
14. मानता ग, ली० 1
15. 'कोई विरला ही ग
16. जांणता ली० 1
17. परोजनु ग परोजन ली० 1

किआ है। इसी कारन ते ऐसे भेदहु का पोलणा अतअतक[18] परवानु[19] हूआ। ता ते मैं प्रथमे वीचार की उसतति करौगा[20]। वहुडि वीचार का सरूप वरननु[21] करौगा। तिस ते पीछे वीचार का प्रोजनु[23] अरु जिस वसतु[24] विषे वीचारु करना[25] जोगु है तिस[26] कउ प्रसिधि[27] करि[28] कहौगा[29] ॥ १ ॥

अथ प्रगटि करणी उसतति वीचार की[1]।

ता ते जाण[2] तू जो एक रात विषे महापुरपु[3] भजनु करता हूआ रोवणे लागा। तब आइशा[4] ने कहा जो तुमारे पाप तो साईं ने[5] वपसे है[6]। वहुडि तुम किम नमिति रोवते हो[7]। तव[8] महापुरपु कहत

18 अतिअतक ख अत्यन्त नावा 1
19 परवानु ख, ग प्रमाण नावा 1
20 कहौंगा ग, ली० 1 करूंगा नावा 1
21 वरनण ग, ली० 1 वर्णन नावा 1
22 करउगा ग करुगा नावा 1
23 परोजनु ग प्रयोजन नावा 1
24 वसतु ख, ग वस्तु नावा 1
25 करणा ख, ग करना योग्य नावा 1
26 सो तिस कउ ख, ग तिसको नावा 1
27 प्रसिध ख, ग प्रसिद्ध नावा 1
28 करिके ख, ग करके नावा 1
29, *कहउगा ख, ली० 1 कहूंगा नावा 1*
1 अथ उसतति बीचार की ख, ग, ली० 1
अथ स्तुति विचार की नावा 1
2 जाणु ग ताते जान तू नावा 1
3 महापुरप ख, ग 'महापुरप रोवने लगे' नावा 1
4 'तब इकि प्रीतिवान ने कहा' ग, ली० 1
'तब आ ईसा ने कहा' नावा 1
'आयशा ने पूछा' नावा 2
5 भगवत ने ग, ली० 1
महाराज ने नावा 1
6 हूहि ट ली० 2
7 हुहु घ, ली० 1
8 तवि ली० 2

भइआ[9]। जो मुझ कउं इस प्रकार महाराज की आगिआ हूई है। जो जेते अकास अरु प्रिथवी की उतपति विषे मैंने असचरज रचे हैं अरु जिस प्रकार रात[10] दिन की भिनता वनाई है। इन कउं[11] भली भांति वीचारु करिकै देपहु। तां ते मैं महाराज[12] की कारीगरी कउं वीचारु करि विसमै[13] हूआ हौं। अरु रुदनु करता हौं। इस करिकै जो पुरप् ऐसे वचनहु का नितप्रति पाठु[14] करै। अरु वीचारु करिकै न देपै। सो मंद वुधी कहीता है[15]। वहुड़ि मिहतरि ईसे[16] कउं भी लोकहु ने कहा था। जो तुमारे समान[17] अवर भी कोई मानुप[18] उपजिआ है। तव उनहु ने[19] कहा जो जिसका वोलना[20] सभ ही भजनु होवै।[21] सो मुझ ते भी वसेप है। वहुड़ महापुरप ने भी कहा है जो अपने नेत्रहु कउं भी भजन ते अप्रापत[22] न रापहु[23]। तव प्रीतमहु[24] ने पूछिआ जो नेत्रहु कउं भजन विषे किस प्रकार लगाईऐ। वहुड़ि महापुरप ने कहा जो

9. कहिआ ग 'कहत भये' नावा : 1
10. राति ख, ली० 2
11. तिन कउं ख, ली० 1
12. भगवंत ख
13. विसमादु हूआ हौं ङ, ली० 1 'विस्मित हुआ हूं' नावा : 1
14. पाठ : ख 'नित्यप्रति पाठ' नावा : 1 निताप्रत : ली० 1
15. कहावता है नावा : 1
16. इक सतजन वैरागवांन : ख, ङ, ली० 1-2 ईसा महापुरुप नावा : 1
17. समानि ख
18. मानुपु ख
19. तत्र उन्होंने नावा : 1
20. वीलणा ख
21. 'अरु द्रिसटि जिसकी भै संजुगति होवै' ख
'और दृष्टि जिसकी भय सयुक्त होवै' नावा : 1
22. अप्रापति : ख अप्राप्त नावा : 1
23. राखो नावा : 1
24. 'प्रीतिमानों ने पूछा' नावा : 1

भगवत के वचनहु की पोथी कउ[25] पढणा। अर चित विषे[26] उस कउ वीचारणा। बहुडि महाराज की कारीगरी कउ देषि करि विसमै होणा ही नेत्रहु का भजनु है।

इसी पर सुलैमान दराई[27] भी कहा है जो इस ससार विषे वीचारु सहित[28] विचारणे[29] करिकै प्रलोक[30] के दुषो ते मुकति होती है। अरु प्रलोक के वीचार करिकै अनभव[31] रूपी फलु प्रापत होता है। अरु रिदा सुरजीतु होता हैं।

वहुड दाऊद साईलोक[32] भी अपणे एक[33] मदर[34] पर्ग इसथित[35] था। अरु अकास के निछत्रहु का असचरजु देषि करि बीचारु करता था अरु रोवता था। ऐसे ही मूरछा होकरि पडोसी के ग्रिह मो[36] गिड[37] पडा। तव उनहुने चोरु जाण करि तरवार[38] पकडि लीनी। बहुडि जव पडोसी ने दाऊद कउ[39] पछाणिआ। तव पूछणे लागा। जो तुम कउ ईहा किसने डारि दीआ है।

तव दाऊद ने[40] कहा जो मुझ कउ गिडने की खवर कुछ नही।

---

25 'भगवत् वाक्य पोथी को' नावा 1
26 चिति विषे ग, ली० 1
27, इक साध जनने ख, ली० 1 दाराई सत नावा 1
28 सहिति ख, ड
29 विचारणे ख, ग
30 परलोक ख, ग
31 अनुभव रूपी नावा 1
32 'इक वैरागवान साध' ख, एक मत नावा 1
33 एक राति ख, घ, ली० 1 एक रात्रि विषे नावा 1
34 ग्रिह ख मन्दिर नावा 1
35 इसथिति ख
36 मे ख
37 गिटि ख गिरपडे नावा 1
38 तरवारि ख
39 उस साध कउ ख उनको नावा 1
40 उस साध ने ख, उन्होने नावा 1

पर मैं तारामंडल का असचरजु देपि करि बिसमै[41] होइ गइश्रा हौ ॥ २ ॥

अथ प्रगट करणा इसका जो कोई सुपु
भगवंत के दरसन के आनंद समान नहीं[1] ।

तां ते जाण[2] तूं जो सभ[3] कोई मुप[4] ते इउ ही कहता है जो भगवंत[5] के दरसन विपे जैसा आनंद[6] है सो तैसा आनंद अवर[7] कोऊ[8] नहीं ।[9]

पर[10] जब कोई इस वचन[11] के अरथ[12] कउं अपणे रिदे विपे[13] ढूंढे[14] । जो जिसका दरसनु किसी दिसा विपे न होवै[15] । अरु उसका रंग रूप[16] भी कछु न होवै । सो तिसके दरसन विपे आनद[17] किस प्रकार होता है ।

41. विस्मित नावा : 1
42. हो रहा हूं नावा : 1
1. 'अथ प्रकट करना इसका कि कोई सुप श्रीराम रूप दर्शन के आनन्द के समान नहीं' नावा : 1
2. जांणु ख
3. सभु ग
4. मुपु ली० 1
5. श्रीरामरूप दर्शन नावा : 1
6. आनंदु क
7. अवरु क
8. कोउ ली० 1
9. नाही ली० 1-2
10. परु क
11. इनहु वचनहु के ख
12. अरथि ग
13. चिति विपे ली० 1
14. ढूंढहि ली० 1
15. होवहि ली० 1-2
16. रंगु रूपु ख
17. आनंदु क ख

जब[18] इम[19] वारता का[20] वीचार करहि[21] तब[22] उनके रिदे विपे[23] ऐसे दरसन[24] के आनद[25] का सरुप कछु नही भासता[27]। तदप भी मुप ते सभ[28] कोउ[29] इउ ही प्रमानु[30] करता है। काहे जो इहु वचनु धरम[32] सासत्र[33] विपे भी प्रसिधि हैं[34]। पर उनके रिदे विपे[35] इस[36] दरसन[37] की प्रीति कछु नही होती[38]। अर प्रीति भी उनकी इस कारन करि[39] नही होती[40] जो जिस पदारथ की जाण[41] नही होती। तिसके साथ प्रीति भी नही लागती। सो जदप ऐसे भेद का

---

18 जबि ख
19 इसि ली० 1
20 कउ ख
21 वीचारहि ख
22 तबि ख
23 चिति विपे ली० 1
24 दरसनु क
25 आनदु ख
26 सरुपु ख
27 भासता नाही ली० 1-2
28 सभु ख
29 कोई ली० 1
30 परवानु ग
31 वचनहु ग
32 धरमि ख
33 सासत्रि ख
34 हहि ख
हैनि ली० 1
35 चिति विपे ली० 1-2
36 इसु ख
37 दरसनि ग
38 होती नाही ली० 1
39 करिकै ग
40 होती नाही ली० 1
41 जाण ख

वपिआणु करना वहुतु कठन है। पर तदप भी मैं अपणी वुधि अनसार कछुकु वरननु करौंगा[42]।

......[43] तैसे ही जव[44] तूं गिआनवान[45] की अवस्था कउं देपहि अरु उनके परम आनंद कउं पेपहि[46]। तव तुझ कउं भी ऐसी प्रतीति द्रिढ़[47] हो जावैगी[48]। जो उनके रिदे मों[49] निरसदेह[50] कोउ वड़ा सुपु[51] है।

इसी परि इक[52] वारता है राविआं[53] की जो उस कउं किसी[54] पुरुप[55] ने कहा था जो तूं स्वरग कउं चाहती[56] है। तव उसने[57] कहा जो मेरी प्रीति घरिवाले[58] पुरुप[59] के साथ है। तांते मैं[60] घर कउं नहो

---

42. करऊंगा ग
43. मूल प्रति (क) के पत्रांक 554 (अ) से लेकर पत्रांक 570 (अ) तक का पाठ— विस्तार भय से— सम्पादित नहीं किया गया। 'दरवेश-दर्शन' भी इस 'पाठ त्याग' के मूल में काम कर रहा है।
44. जवि ख
45. गिआंनवांन ग
46. वेपहि नी० 1 (वीक्ष्य > वेप : पंजावी)
    पेप < (प्रेक्ष्य से विकसित)
47. द्रिढु ख
48. होइ जावैं ग
49. चिति विपे ख
50. न्रिसंदेह ग
51. अनंदु ख
52. इकि ख
53. इक संतजन ख
    राविया धाई नावा : 1
    रविया नावा : 2
54. इकु ख
55. पुरपु ख
56. चाहते ख
57. उसि किहा नी० 1-2
58. घरवाले नावा 1
59. पुरपु ख
60. हम ख

चाहती[61]।

अरथु इहु जो मुझ कउ भगवत की प्रीति है। इस कारन ते मैं[62] स्वरग रूपी घर कउ नही चाहती[63]।

बहुडि सुलैमान दराई साई लोक[64] ने भी कहा है। जो भगवत[65] के ऐसे प्रीतम[66] हैं[67]। जो उन कउ स्वरग[68] की आसा[69] अरु नरक[70] का भै असकति[71] नही करि सकता। पर इस लोक के सुप तो[72] अलप मात्र है[73]। तब इनहु विषे असकति[74] किउ करि होवहि[75]। इसी कारन त सरब वासना कउ दूरि करिकै भगवत[76] की प्रीति विषे मगन[77] रहते हैं[78]।

बहुडि मारुफ करखी[79] कउ भी किसी ने कहा था[80] जो तुम कउ

---

61 चाहते ख
62 हम ख
63 चाहती ख, चाहते लो॰ 1
64 उत्तम वैरागवान संत ख
दाराई सतलोक नावा 1
सन्त दाराई नावा 2
65 भगवति ग, श्री राम जी के, नावा 1
66 प्रीतमु ख
67 हहि ग, हैनि लो॰ 2
68 सवरग घ, सुरग लो॰ 1.2
69 आस घ
70 नरकहु ख
71 पंचि ग आसक्त नावा 1
72 तउ ख
73 हहि ख, हैनि ग पिण भगर हैं लो॰ 1
74 पंचि ग
75 होवैं ट
76 'श्री रघुपति चरण प्रीति' नावा 1
77 मगनु ख
78 हैनि ग हहि ख
79 इक गिआनवान संत ख
एक और सन्त को भी नावा 1
80 पूछिआ था ग

सरब संसार[81] अरु माइआ ते वैराग[82] उतपति[83] हूआ है। अरु एकांत[84] ठउर[85] अरु भजन विषे जो तुम इसथित[86] हूए हो सो तिसका कारनु किआ है। तातपरजु इहु जो तुम कउ काल का भै सिमरन विष आइआ है। अथवा नरकहु का भै सिमरन[87] विषे आइआ है। अथवा तुम कउं स्वरग[88] की आसा है। सो इसका उतरु मुझ कउं कहो।

तब[89] मारुफ करखी[90] ने[91] कहा[92] जो कालु अरु नरक[93] का भै किआ है। अरु स्वरग[94] की आसा किआ है। पर इक[95] ऐसा पातिसाहु[96] है जो इहलोक अरु परलोक भी उस ही के हाथ[97] विषे हैं। सो जब तूं उसकी प्रीति का रसु[98] चाषहि तब एह सभी डर अरु आसा बिसमरन हो जावहि। अरु जब तुझ कउं उसकी पछाण होवहि[99]। तब इनहु सरब पदारथहु ते लजामान[100] होवहि।

---

81. संसारु ख
    संसार नी० 1
82. वइरागि घ
83. उतपत ग
84. इकांति ख
85. ठउरि ख
86. इसथिति ग
87. सिमरनि ख
88. सुरग ग
89. तबि ख
90. संत सिआनवान ख
91. ने लोप ग
92. किहा ग
93. नरकहु ख
94 सवरगहु नी० 1
95. इकि ख
96. पतिसाहु ख
97. हाथि ख
98. रहसु ग
99. होइ जावै नी० 1
100. लजामान ग

बहुडि बसर हाफी साई लोक[101] कउ किसी ने सुपने विषे देषिग्रा था। अरु बपर हाफी ते पूछणे लागा जो ग्रमके साई लोक[102] की गति परलोक[103] विषे किउ करि हूई है।

तब उनहु ने कहा जो अब ही मैं उस कउ स्वरग विषे अम्रित-फलहु का अहार करता देषि आइआ हौ। बहुडि उस पुरष ने पूछिआ जो तुमारी अवस्था किउ करि है।

तब बसर हाफी[104] ने कहा जो भगवत मेरे रिदे का अंतरि-जामी[105] है। सो जब उसने जाणिआ जो इस कउ स्वरग विषे पान पानहू की अभलाषा कुछ नही। तब भगवत[106] ने अपणी दइआ करिकै मुझ कउ अपणा दरसनु दीआ।

ग्ररु एक अवर साई लोक[107] ने भी कहा है जो मैं सुपने विषे स्वरग[108] कउ देषिग्रा था। अरु उस[109] स्वरग विष बहुतु लोक भोगहू कउ भोगते देखे। तब मैं एक पुरष कउ देषिआ[110]। जो वहु सुष[111] असथान[112] विषे बैठा है। ग्रर नेत्र उसके षुले हूए थे अरु मतवारे की निआई इसथित था तब मैं स्वरगवासीओ सिउ पूछिआ। जो इहु पुरषु कउनु[113] है।

---

101 'इक उत्तम वैरागवान' ख
'एक और महात्मा' नावा 1
102 'अमुक सन्त की' नावा 1
103 परलोकि ख
104 उन्होंने नावा 1
105 अन्तर्यामी नावा 1
106 महाराजि ख
महाराज नावा 1
107 साधजन ख 'एक और संत ने भी' नावा 1
108 सुरगहु ग
109 उसि स्वरगि विषै ख
110 'तब मैं एक और पुरुष को देखा नावा 1
111 सुधि ख
112 असथानि ख, ख
113 कउन ख

तव उनहु कहा जो इह मारूफ[114] करषी सांई लोक है। सो इह ऐसा महापुरपु है। जो इसने नरक के भै[115] अरु स्वरग[116] की आसा करिकै भगवंत[117] का भजनु नहीं कीआ। अरु निहकांम होकरि[118] सांई के सिमरन[119] विषे द्रिढ़ हूआ है। तां ते इस कउ भगवत[120] का दरसनु प्रापत[121] भइआ है। अरु स्वरग के भोगहु ते विरकत चित[122] है।

वहुड़ि सुलैमान दराई[123] ने भी कहा है जो कोई पुरपु अव इस लोक विषे[124] अपणे सरीर के भोगहु साथ परचिआ[125] हूआ है। सो परलोक विषे[126] भी सरीर के भोगहु विषे असकति[127] रहैगा। अरु जो पुरपु इस लोक विषे[128] भगवंत के भजन साथ परचिआ रहा है। सो परलोक[129] विषे भगवंत के दरसन[130] कउ प्रापत हौवैगा।

वहुड़ि एक अवर सांई लोक[131] ने भी कहा है जो एक वार मैंने

---

114 'यह मारूफ जी' नावा : 1
115 'नरक की भै' नावा : 1
116 सुरगहु ख
117 श्रीराघवजू नावा : 1
118 होइ करि ख
119 'श्रीरामनाम स्मरण विषे' नावा : 1
120 श्रीराम जू नावा : 1
121 प्रापति ख, ग
122 चितु ख
थित ली० 1
थितु ली० 2
123 दाराई सन्त नावा :
124 इसि लोकि विषे ख
125 परचा हुआ है नावा : 1
126 परलोकि विषे ख
127 आसक्त नावा : 1
128 इसि लोकि विषै ख
129 परलोकि विषे ख
130 'श्री राम जी के दर्शन सुख वर्णन' नावा : 1
131 साधजन ख एक और सन्त नावा : 1

बायाजीद[132] साईतोक कउ देपिम्रा था। तब वहु सधिआकाल[133] ते ले करि प्रभात समैं प्रजत चरनहु के भार बैठे रहे। अर धिआन[134] विषे नेत्रहु कउ मूदि लीआ। बहुडि धरती परि मसतकु टेकिआ। अरु इसते उपरति[135] उठि पडे हूए। अर अरदास करने लागे[136]।

जो हे महाराज किनहू पुरषहु ने जो तेरा भजनु कीआ है। तब उन कउ तैंने सिघता[137] का बलु दीआ है। ता ते वहु पुरषु जलहु[138] ते सूके[139] ही उतरि[140] गए हैं। अरु अकास[141] विष उडने लागे[142] हैं। पर मैं इनहु सरब सिध्यिअहु[143] ते तेरी रषिआ चाहता हौं।

बहुडि एक ऐसे पुरुष हूए हैं[144] जो उन कउ धरती के दबे हूए षजाने मिले हैं। अरु एक ऐसे हूए हैं जो बहु-पुरषु[145] एक ही रात्रि विषे सहस्र[146] ही जोजनो[147] का मारगु उलंघि[148] गए हैं। अर इस ही

---

132 बायाज़ीद जी नावा 1
133 सधाकालि ख
134 धिआनि ख
135 उपराति ग
उप्रत ली० 1
136 लगे करने ग
137 सिध्यता ख
138 जलहि ते ली० 1
जलो पर नावा 1
139 सूखे नावा 1
140 तर जाते है नावा 1
141. अकासि ख
142 उडने लगते है नावा 1
143 सिधहु क
144 हुहि घ
हैगि ली० 1
145 पुरष क
146 सहमर ख
147 सहस्र योजनो नावा 1
148 लाघ नावा 1

सिधता करिकै [149] प्रसंन हूए हैं। पर मैं इनहु ते भी तेरी रषिग्रा[150] चाहता हौं।

तव इतना कहू करि **वायाजीद[151] सांईलोक** ने अपनी पीठ[152] ओरि देषिआ। अरु मुझ कउं देष[153] करि कहणै लागै। जो तूं ईहां[154] ही वैठा था। तव मैं[155] कहा हे सुग्रामी जी मैं ईहां ही वैठा था। वहुड़ि उनहु ने कहा जो तूं कव का वैठा है। तव मैं[156] कहा जो जि मुझ कउं ईहां वैठे वहुतु चिरु[157] हूआ है। ग्ररु मैंने इउं भी कहा जो हे सुआमी जी मुझ कउं ग्रपणी अवस्था का वपिआणु[158] कछ्कु[159] सुनाईए[160]।

तव उनहु ने कहा जो मैं तेरे अधकार अनुसार कछ्कु[161] वररनु करता हौं। वहुड़ि कहने लागे जो मैं एक वार अकास[162] विषे देवति-अहु[163] के ग्रस्थान[164] मौं गइआ था। तव ऊहां सुग्ररग अरु वैकुंठ आदिक[165] सरव लोकहु कउं देपता भइआ। अरु उहां

---

149. सिद्धता विषे नावा : 1
150. 'इनसे भी रक्षा चाहता हूं' नावा : 1
151. वायाजीद जी नावा : 1
152. पीठि ओरि : ख
     पीठ की ओर नावा : 1
153. देषि ख
154. यहां ही नावा : 1
155. मैंने कहा था नावा : 1
156. मैंने कहा नावा : 1
157. वहुत चिरकाल नावा : 1
158. वखान नावा : 1
159. कुछ नावा : 1
160. सुनावो नावा : 1
161. कछुक नावा : 1
162. अकासि विषे ख
163. देवतों नावा : 1
164. इसथांन लौ० 1
     सथानहु ग
     स्थानों में नावा 1
165. 'स्वर्ग वैकुण्ठादिक सर्व लोकों को देखता भया' नावा : 1

मुझ कउ अकासवाणी हूई जो जिस पदारथ की इछा तुम[166] कउ होवहि। सो अब मागि लेवहु[167]। तब मैं तुझ कउ उही[168] पदारथ देवउ[169]।

बहुडि मैंने अरदासि[170] करी[171] जो[172] हे भगवत तेरे बिना मुझ कउ किसी पदारथ[173] की इछा नही। तब साई ने कहा जो तू केवल[174] मेरा ही दासु[175] है।

बहुडि अबू तराब साई लोक[176] का कोऊ[177] जगिआसी था। सो वहु रिदे[178] की इकग्रता[179] विषे अधिक[180] लीन[181] रहता था। तब एक बार अबू तराब[182] उस कउ कहा जो तू बायाजीद साई लोक का दरसनु करहि। तउ भला है। बहुडि उसने कहा जो अपणे ही रिदे विषे मैं परचिआ[183] हूआ हौं। बहुडि अबू तराब[184] ने उस कउ

---

166 'तुझ को इच्छा होवें' नावा 1
167 लेवो नावा 1
168 वही नावा 1
169 देऊ नावा 1
170 प्रार्थना नावा 1
171 करी नावा 1
172 कि नावा : 1
173 पदारथु ख
174 केवल (पाठ लोप) नावा 1
175 दास नावा 1
176 एक महात्मा नावा 1
177 एक जिज्ञासु नावा 1
178 हृदय नावा 1
179 एकाग्रता नावा 1
180 पाठ लोप नावा 1
181 लीनु ख
182 अवर सत जन ख महात्मा नावा 1
183 परचा नावा 1
184 महात्मा नावा 1

केती वार फेरि कहा जो तुझ कउं वायाजीद[185] का दरसनु करणां अधिक परवांन[186] है। वहुड़ि उसने कहा जो मैं वायाजीद[187] के सांई कउं नित प्रत देपता हौं। तां ते मुझ कउं वायाजीद[188] के देपणे की इछा किउं करि होवै।

वहुड़ि अवू तराव[189] ने उस कउं कहा जो तूं एक वार वायाजीद कउं देपहि। तव सत्तर वार सांई के देपणे ते उसका दरसनु तुझ कउं वसेप है। तव वहु जगिआसी असचर जमांन[190] हो करि कहिणे लागा। जो हे सुआमी जी तुमहु ने इहु[191] वचनु किस प्रकार कहा तव उनहु कहा जो हे भाई तूं जो सांई कउं देपता है सो अपणे अधिकार प्रत देपता है। अरु जव तूं वायाजीद[192] के निकटि जावहिगा। तव तूं सांई कउं वायाजीद[192] की अवस्था के अनुसार देपहिगा।

तव जगिआसी ने इस वचन कउं समझि करि कहा जो हे सुआमी जी तुम भी मेरे साथ चलहु। तव ऊहां जाइ करि वायाजीद कउं देपहि। तव अवू तराव अरु उसका जगिआसी[193] वायाजीद के इस्थान[194] मौं गए।

तव वायाजीद जंगल[195] विपे गइआ हूआ था। वहुड़ि जव अपणे ग्रिह विप आए। अरु उस जगिआसी ने उन कउं देपिआ। तव

---

185. उनका नावा : 1
186. परवांनु : ख
प्रमांण नावा : 1
187. 'उनके भी स्वामी को' नावा : 1
188. उनके नावा : 1
189. महात्मा नावा : 1
190. आश्चर्यवान् नावा : 1
191. इह क
192. पाठ लोप नावा : 1
192. पाठ लोप नावा : 1
193. दोनों गुरु शिष्य नावा : 1
194. इसथांनि ख
195. जंगलि ख

बायाजीद कउ देषते ही उस जगिआसी ने कहा जो भले आए हो। वहुडि इतना कहि करि उस जगिआसी का सरीरु छूटि गइआ[196]।

तब अबू तराब[197] ने बायाजीद कउ कहा जो हे सुआमी जी[198] तुमहु ने इस जगिआसी कउ एक ही द्रिस्टि करि नास कीआ। वहुडि बायाजीद ने कहा जो इहु साचा[199] जगिआसी था अरु इसके रिदे विषे एकु गुहजु[200] भेदु था। सो वहु भेदु उस कउ पुलता न था आप करि[201]। अरु जब मुझ कउ उसने देषा तब वहु भेदु इस कउ प्रगटि हूआ। अरु इसके रिदे विषे उस भेद कउ षोलने का बलु न था। ता ते इसका सरीरु छूटि गइआ है[202]।

अरु बायाजीद[203] ने इस प्रकार भी कहा है जो जदप इब्राहीम[204] जैसा भरोसा[205] अरु मिहतरि मूसे[206] जैसी अरदासि[207] अरु मिहतरि ईसे[208] जैसा बलु[209] सो इहु सरब पदारथ तुझ कउ मिलहि। तउ[210] भी चाहीऐ जो तू इतरि भगवत ते[211] अवर किसी गुण अरु पदारथ[212] कउ अगीकारु न करहि। काहे ते जो गिआनवानहु की अवस्था इस ते भी परे है।

---

196 छूटकि गैआ ख
197 उसके गुरु ने नावा 1
198 हे महापुरष जी' नावा 1
199 साचा जिज्ञासु नावा 1
200 गुह्य नावा 1
201 'वह भेद इसको आप करके पुलता न था' नावा 1
202 छूटि गैआ है ली० 2
203 उस विचारवान संत ख
204 बड़े महापुरुषों के समान नावा 1
205 भरोसा नावा 1-2
206 पाठ लोप नावा 1-2
207 प्रार्थना नावा 1
208 पाठ लोप नावा 1
209 दिव्यता नावा 1
210 तब भी ग
211 श्रीराम बिना नावा 1
212 पाठ लोप नावा 1

इसी परि एक वारता है। जो वायाजीद कउं इक प्रीतम[213] ने कहा था जो मुझ कउं तीस वरस[214] इसी प्रकार वीते हैं। जो रात्र[215] विषे भजनु करता हौं अरु दिन कउं व्रत राषता हौं। पर जैसे निरगुन वचन[216] तुम कहते हो सो मुझ कउं इनकी समझि कछु प्रगटि नहीं भासती।

तव वायाजीद[217] ने उस कउं कहा जो जव तूं तीन सै[218] वरस[219] प्रजंत[220] ऐसा[221] ही कठनु तपु करहि तव भी हमारे वचन के भेद कउं समझ न सकहिगा[222]। वहुड़ि उस पुरुप[223] ने कहा जो मैं इस भेद कउं किस कारन करि[224] समझि न सकऊंगा[225]। तव वायाजीद[226] ने कहा जो तुझ कउं अपणे अहकार अरु अभमांन का पटलु[227] है।

वहुड़ि उस पुरप ने कहा जो इसका उपाउ[228] किआ है। तव वायाजीद[229] ने कहा जो तूं इसका उपाउ न करि सकहिगा[230]। वहुड़ि

213. प्रीतिमान नावा : 1
214. तीसि वरसि : ख
215. रात्रि ख, नावा : 1
216. ज्ञान के वचन नावा : 1
217. वायाजीदि ख कहा नावा : 1
218. सउ ख
219. वरसि :
220 पर्यन्त नावा : 1
221. अइसा ली० 1
222. सकेगा नावा : 1
223. उसि पुरपि कहा ली० 1
224. करिकै ख
225. सकूंगा नावा 1
226. उन्होने नावा : 1
227. आवरणु ख
228. उपा ली० 1
उपाव ग
उपाय नावा : 1
229. उन्होंने नावा : 1
230. सकेगा नावा : 1

उसने कहा जो तुम दइआ करिकै मुझ कउ बतावहु[231] । तब मैं उपाउ करऊगा[232] ।

बहुडि बायाजीद[233] ने कहा जो प्रथमे तू अपणी दाढी[234] कउ दूर कर अर नगन[235] हो करि अखरोटहु[236] का थैला गले विषे[237] डारि[238] । अर बजार[239] विषे जाइ करि कहु[240] जो कोई बालकु मुझ कउ एक मुसट मारै तब मैं उस दुइ[242] अखरोट देवौंगा[243] । बहुडि काजी[244] के निकटि इसी प्रकारि जाइ करि कहु[245] । तब तेरे अहकार का पटलु[246] दूरि होवैगा ।

बहुडि जब इहु[247] वचनु उस पुरष ने[248] सुणिआ तब कहणे लागा जो भगवंत रषिआ करे इसतै[249] । जो तुमहु ने इहु वचनु कैसा कहा ।

---

231 बतावो नावा 1
232 करूगा नावा 1
233 उन्होने नावा 1
234 डाढी नावा 1
235 नग्न नावा 1
236 अखरोटो नावा 1
अखडोटहु ग
237 गले मे नावा 1
238 डार ले नावा 1
239 बाजार नावा 1
240 जाकर कह नावा 1
241 मुसटिका नावा 1
मुक्का नावा 2
242 एक अखरोट नावा 1
243 देऊगा नावा 1
244 'राजसभा के पण्डितो के आगे' नावा 1
'राजसभा और पण्डितो के आगे' नावा 2
245 इसी प्रकार कहे नावा 1
246 आवरण व पर्दा नावा 2
247 यह नावा 1
248 उसि पुरषि नावा 1
249 'इससे भगवान रक्षा करे' नावा 1

तव **वायाजीद** उस कउं कहणे लागा[250] जो इह वचन जो तैंने कहा है सो इस कहणे कर कै तूं मनमुप हूआ है। काहे ते जो जदप[251] तूं मुप ते इव ही कहता है जो भगवंत निरलेप है अरु मेरी रपिआ करै[252]। पर इसी कहणे विपे अपणी वड़ाई कउं चाहता है। तां ते तूं मनमुप है।

वहुड़ि उस पुरप ने कहा जो तुम मुझ कउं कछु अवर उपाउ कहो[253]। तव मैं करऊंगा[254]। अरु इहु जो तुमने आगे[255] कहा सो मुझते होइ नहीं सकता[256]। तव **वायाजीद** ने कहा अउपदु तेरा[257] इही है। तव उसने कहा जो इह तो मुझ ते नही हो सकता[258]। वहुड़ि **वायाजीद** ने कहा जो मैं तुझ कउं प्रथमे ही कहा था[259] जो तेरा उपाउ है सो करि न सकहिगा[260]।

पर **वायाजीद** उस कउं ऐसा उपाउ इस कारन[261] करि कहा था जो वहु पुरपु अभमांन अरु वड़ाई की अभलापा विपे असकति था।

---

250. कहने लगे नावा : 1
251. यद्यपि नावा : 1
252. 'भगवन्त जो निरलेप है सो मेरी रक्षा करे' नावा : 1
253. 'कुछ और उपाय कहो' नावा : 1
'कोई और उपाय बतायें' नावा : 2
254. करूंगा नावा : 1
255. अभी आपने जो उपाय बताया है नावा : 2
256. हो सक्ता नावा : 1
257. औपध तेरा नावा : 2
रोग की औपधि नावा : 2
258. सक्ता नावा : 1
259. 'मैंने तो तुझको प्रथम ही कहा था' नावा : 1
मैंने तो पहले ही कहा था' नावा : 2
260. 'तू कर न सकेगा' नावा : 1
'तुम नहीं कर सकोगे' नावा : 2
261. 'इस कारण कर' नावा : 1

अरु उस कउ मान ही का रोगु था। ता ते निरमान[262] होणा उसका अउपदु[263] था।

अरु मिहतर ईसे[264] कउ भी अकास वाणी[265] हुई थी। जो जिस मानपु के रिदे[266] विषे मैं[267] लोक और परलोक की अभलाषा नही देपता[268]। तव मैं उसके रिदे विषे आपणी प्रीति कउ रापता हौं। अरु सरब प्रकारि कर कै[269] उसकी रपिआ करता हौ[270]।

बहुडि इब्राहीम अदहम[271] ने भी साई[272] के आगे अरदासि[273] करी थी। जो हे महाराज[274] तू[275] भली प्रकार जाणता है। जो जैसी अपणी प्रीति अरु भजनु का रहसु[276] तुमने मुझ कउ अपणी दइआ करि कै दीआ है। सो तिसके निकटि सुअरग के सुप का मोलु मछर के पख समान[277] भी नही लागता[278]।

---

262 निर्माण होना नावा 1
मानहीन होना नावा 1
263 उसकी औषधि नावा 2
264 एक और महापुरुष नावा 1
265 आकाश वाणी नावा 1
266 हृदय विषे नावा 1
267 मैं (पाठ लोप) नावा 1
'मैं ' नही देखता' नावा 2
268 देखता हू नावा 1
269 सर्व प्रकार नावा 1
270 हू नावा 1
271 एक महात्मा ने नावा 1 (पाठ लोप)
272 महाराज नावा 1
273 प्रार्थना नावा 1
274 हे प्रभो ! नावा 1
275 तू नावा 1
आप नावा 2
276 रहस्य नावा 1
277 'मच्छर के पर की समान' नावा 1
278 लगता नावा 1
'नही जान पडता' नावा 2

वहुड़ि राविआ[279] ते भी किसी पुरष ने पूछा था जो तूं महांपुरप कउं प्रीतमु रापती[280] है। तव राविआ ने कहा जो ऐसा पुरप कौन है जो महांपुरप कउ प्रीतमु न रापै[281]। पर मुझ कउं भगवंत[282] को प्रीति ने ऐसा लीणु[283] कीआ है। सो अवर किसी की प्रीति मेरे रिदे विपे नहीं रही।

अरु मिहतरि ईसे सिउं[284] भी लोकहु ने पूछा था। जो उतमु करततु[285] कउणु है। तव मिहतरि ईसे[286] ने कहा जो भगवंत की प्रीति अरु उसकी आगिआ विपे प्रसंन रहणा। सो उतमु करततु इही है।

पर तातपरजु[287] इहु है जो संतजनहु कीआं सापां[288] भी ऐसीआं वहुतु हैं। अरु उनकी अवस्था[289] करि कै भी जाणिआ जाता है जो स्वरग[290] के सुष[291] ते भगवंत[292] की प्रीति अरु उसकी[293] पछांण का

---

279. राविया बाई नावा : 1
रविआ नावा : 2
280. 'तुम महापुरुप को प्रियतम रखती हो' नावा : 1
'क्या महापुरुप के प्रति तुम्हारा प्रेम हैं' नावा : 2
281. 'तव उन्होंने कहा कि ऐसा पुरुप कौन है ... जो राखे' नावा : 1 (पाठ लोप)
282. भगवान की प्रीति ने नावा : 1
प्रेम ने नावा : 2
283. लीन नावा : 1
284. 'एक और महापुरुप से' नावा : 1 (पाठ लोप)
285. करतूति नावा : 1
286. उन्होंने नावा : (पाठलोप)
287. तात्पर्य नावा : 1
288. साक्षियां नावा : 1
289. अवस्ता ग
290. सुरगहु घ
291. सुपहु व
292. श्री रघुनन्दन जू नावा : 1
293. तिनकी नावा : 1

आनदु अधिक है। ता ते चाहीऐ जो तू ऐसे वचनहु[294] का वीचार[295] करहि[296]। तब तुझ कउ[297] भी इस[298] वचन[299] का अरथु प्रतप भासै[300] ॥७॥

---

294 वचनो नावा 1
295 विचार नावा 1
296 करे नावा 1
करो नावा 2
297 तुझ को भी नावा 1
तुम्हें भी नावा 2
298 इनहु नावा 1
299 वचनहु ख
300 'अर्थ प्रत्यक्ष भासे नावा 1
'अर्थ प्रत्यक्ष प्रकट होगा' नावा 2

तृतीय पर्व

अध्याय 9

भाषा स्वरूप

ध्वनि विवेचन, सज्ञा रूप (धातु) क्रिया रूप, सयुक्त क्रियापद, हेतु हेतुमद्भूत, कर्मवाची, नामधातु, सर्वनाम, विशेषण, सख्यावाची शब्द, अव्यय, शब्द-भडार।

मध्यकालीन ध्वनि समूह

ध्वनि-विवेचन

पारसभाग की भाषा मे लिखित रूप से उपलब्ध ध्वनि-समूह सामान्यत प्राकृत-अपभ्रश युगीन ध्वनि-समूह के अधिक निकट है। वस्तुत यह समस्त ध्वनि-समूह मध्यकालीन आर्यभाषाओ की ध्वनियो के उत्तरोत्तर विकास और इन विकसित ध्वनियो के आधुनिक ध्वनि समूह मे ढलने का ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत करता है। मध्यकालीन तथा आधुनिक ध्वनियो की मध्यवर्ती शृखला पारसभाग की भाषा मे उपलब्ध है। पारसभाग की भाषा मे उपलब्ध ध्वनि समूह का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है —

स्वर ध्वनिया

(क) मूल स्वर —पारसभाग मे अ, इ, उ ये तीनों मूल स्वर प्राय अविकृत रूप मे मिलते हैं।

अ असख, अचेत, अनचर, (अनुचर), अजापाली तथा अतिअत (अत्यन्त) जैसे शब्दो मे आदि तथा मध्यवर्ती अकार मिलता है। शब्दात मे अ की

स्वतंत्र स्थिति नहीं है। क्योंकि लिपि के स्तर पर पूरी शब्दावली स्वरांत है। अतः अंतिम अकार आदि सभी स्वर अपने पूर्ववर्ती व्यंजन के साथ लिखे पाए जाते हैं। काम, नांव, वैराग आदि स्वरांत शब्द उदाहरण के रूप में रखे जा सकते हैं।

इ : शब्दों के आदि में इ की स्वतंत्र सत्ता प्रायः दिखाई देती है। इहु, विरथ (व्यर्थ), गिड़ (गिर)। मध्यवर्ती इकार के कुछ रूप ये हैं, आइआ (आया) सोइआ (सोया), आगिआ (आज्ञा)। अंत्य इ के उदाहरण हैं, उपजि, करि, केहरि, आनि (आकर)। सामान्यतः अंत्य इ उच्चारण के स्तर पर अनुच्चरित तथा लिपि के स्तर पर अनुल्लिखित पाई जाती है, कव (कवि-कवी), रव (रवि-रवी), आद (आदि-आदी), अनाद (अनादि-अनादी) इंद्रीआ, ईंधन आदि शब्दों में सानुनासिक ई भी मिलती है।

उ : इ के समान उ भी शब्दों के आदि में ही सुरक्षित पाया जाता है। उसतुत (स्तुति। उच्चरित रूप : उसतत), उदै (उदय), नउतन (नूतन), कउतक (कौतुक), अउगण (अवगुण), मध्यवर्ती उ के कुछ उदाहरण हैं। अंत्य उ के उदाहरण हैं—घिउ (घृत), जिउ (जीव) आदि। उंगली (उंगरी), देखउं, लेउं, जिउं, निपूं (फूं) सक जैसे शब्दों में सानुनासिक उ भी मिलता है।

(ख) दीर्घ स्वर

आ, ई, ऊ ये दीर्घ स्वर पारसभाग की भाषा में प्रायः सुरक्षित हैं।

आ : आलसी, आसावंतु, अनाद (अनादि), अमादि, दुपावता, मृगावता ठहरावता, तथा सोइआ, कीआ, आगिआ (आज्ञा), आरोगता आदि शब्दों में 'आ' की विभिन्न स्थितियां पाई जाती हैं। भैमांन (भयभीत) कदांचित, बांवरा, महांचतर (महाचतुर) साखां, तातें (इसीलिए : पंजाबी) जैसे सानुनासिक आकारांत रूप भी पारसभाग में मिलते हैं।

ई : आदि-मध्य-अंत इन तीनों स्थितियों में ई प्रायः सुरक्षित है। ईस्वरज, ईसरु (ईश्वर) द्रवीभूत, पीछा, अंगीकार आदि शब्दों में ई शब्दों के आदि तथा मध्य में सुरक्षित है। घड़ी, पूजारी, आगिआकारी, हूई जैसे ईकारांत शब्द भी मिलते हैं। खीण, छठवीं (छटी) आदि शब्दों में सानुनासिक ई भी विद्यमान है।

ऊ : ऊच (ऊंच), ऊहां (वहां), हूआ ऊकारादि शब्द हैं। जून (योनि), हूवा, हूआ आदि में मध्यवर्ती ऊकार विद्यमान हैं। देखऊं, तूं, करऊंगा, रापऊंगा, आदि में सानुनासिक ऊकार भी मिलता है।

(ग) संयुक्त स्वर ए (अ+इ)

आदि-मध्य अंत तीनों स्थितियों में 'ए' विद्यमान हैं। एक (सामान्यत इक), बुलाइएगा, अवसमेव, निरदावे (बिना दावे-अधिकार-के) बाटमारे (बटमार) आदि शब्द एकार की विभिन्न स्थितियों के सूचक हैं। नेम (नियम। सामान्यत नेम) आदि मे सानुनासिक ए भी मिलता है।

ऐ (आ+ए)

सामान्यत शब्द के आदि मे ऐ का अभाव है। ऐसा, ऐसे जैसे शब्द अपवाद समझे जा सकते है।

उच्चारण तथा लेखन स्तर पर-गुरमुखी लिपि के अनुरोध पर-अेसा, अेसे रूप मे ही शब्द उच्चरित तथा लिखित पाए जाते हैं। सैन (शयन) भैऐ (भये) आदि मे 'ऐ' मध्यवर्ती स्थिति मे है। चाहीऐ, जागीऐ, उदै, निरभै आदि ऐकारांत शब्द भी मिलते हैं। 'हैं' जैसे कुछ शब्दो मे सानुनासिक ऐ भी विद्यमान है।

ओ (अ+उ) ओर, ओट (रक्षा, सहारा पंजाबी), जैसे ओकारादि, मोप (मोक्ष), होइ (होकर), कमावोगे तथा 'सो' (वह) 'हो' ('होना') आदि शब्दो मे 'ओ' मध्य अंत्य स्थितियों मे पाया जाता है।

औ (आ+ओ)

शुद्ध 'औ तथा शब्द के आदि मे 'औ' का अभाव। 'औतार' (अवतार) भी 'ओतार' ही बन चुका है। हौ, जलाऔंगा, करौंगा, आदि सानुनासिक 'औं' के साथ बन शब्द भी मिलते हैं।

(घ) अं अः (अनुस्वार- विसर्ग)

अं अंग, अंगिआर, (अंगार) प्रभृति शब्दो मे 'अं' की स्थिति आदि मे है। रंचक, ढंग, सहंस्र (सहस्र) लपटु आदि शब्दो मे मध्यवर्ती 'अं' मिलता है।

अः (ह उच्चरित रूप) शुद्ध रूप मे अनुपलब्ध। 'मुतेह सिध' (स्वत सिद्ध) आदि कुछ विशिष्ट स्थलो पर मूल के अनुरोध से प्रस्तुत।

(ङ) स्वर ध्वनि परिवर्तन

संस्कृत अरबी-फारसी की मूल स्वर ध्वनियां अनेक प्रकार से परिवर्तित हुई हैं। मुख-सुख तथा स्थानीय (पंजाबी) उच्चारण के अनुरूप स्वर-ध्वनि-परिवर्तन इस प्रकार लक्षित किया जा सकता है —

अ : (मूल 'अ' क्रमश इ, उ, अं तथा ह रूप में परिवर्तित)

1- इ मिरजादा. त्रिजादा (मर्यादा), मरजाद, प्रिथम (प्रथम), प्रसिनु, परसिनु (प्रसन्न) निम्रता,

2—उ उनमान (अनुमान)

3—अं अंसूपात (अश्रुपात)

4 – ह: हच्छा (अच्छा), हट्टी, हट्ट (<अट्ट हाट), हफीम (अफीम 'ह-श्रुति')

आ : (मूल 'आ' क्रमश: अ, आई, इआ रूप में परिवर्तित)

1—अ ब्रह्मंड (ब्रह्माण्ड), समिग्री (सामग्री), असकति (आसक्ति), असचरजु (आश्चर्य) अरंभु (आरम्भ), अनद, (आनंद)

2—आई रजाई (रज़ा), सजाई (सजा) अंबीआई (अबीआ: नबी बहुवचन,) दुआई (दुआ)

3—इ इआ माइआ (माया), सहाइता (सहायता), आगिआ (आज्ञा), भिखिआ (भिक्षा), विदिआ (विद्या), अंगिआर (अंगार)

इ : (मूल 'इ' क्रमश: अ, ई, ए, इ, र् रूप में परिवर्तित)

1—अ नमिति (निमित्त), भभूत, बभूत, (विभूति), भगत (भक्ति), जुगत (युक्ति), कब (कवि), कठन, पंडत, कोकला (कोकिल)।

2—ई जती (यति), जूनी (योनि), वीचारु (विचारु) बेनती (विनति)

3—ए बेमुख (विमुख), हेत (हित), नेम (नियम)

4 – इं निंद्रा (<निद्रा)

5—र् ध्रिकारु (धिक्कार)

उ : (मूल 'उ' क्रमश. अ, इ, ई, ओ में परिवर्तित)

1—अ ममोख (मुमुक्षु), साध (साधु) गुर (गुरु)

2—इ वाइ (वायु) सामान्यत. 'वा' (हवा) पंजाबी में प्रचलित है

3—ई रेणी (रेणु)

4 - ओ होइआ (भूत >हुआ) ममोख (<मुमुक्षु)

ऊ : (मूल 'ऊ' क्रमश: अउ, ओ, इ, में परिवर्तित)

1 – अउ नउतन (<नूतन)

2 – ओ तंबोल (<ताम्बूल)। तुलनीय तमोली।

3—इ इकत्र (<एकत्र), इंकात (<एकांत), इकाग्र (<एकाग्र). मिहर (<मेहर)

ऐ

1—अइ पइसा (पैसा), वइस (<वैश्य), वईरी (<वैरी)

2—ई ईवरज (<ऐश्वय), सदीव (<सदैव)

ओ

('ओ' क्रमश उ, ऊ मे परिवर्तित)

1—उ विउग (<वियोग), कठउर (<कठोर)

2—ऊ जूनी (<योनि)। सउणा (सोना, शयन करना)

औ

1—उ सउच (<शौच), दउड (दौड), मउत (मौत), सउदागरू (सौदागर), सउदा (सौदा), चउडे (चौडे), सउप (सौप)

2—उ कुपीन (<कौपीन)।

ऋ शुद्ध रूप से अनुपलब्ध (मूल 'ऋ' क्रमश इउ, इर, ईं, र, रि, र, मे परिवर्तित)

1- इउ घिउ (<घृत),

2—इर परकिरति (<प्रकृति), मिरतु, मिरति (<मृत्यु) निरति (<नृत्य) किरसाणु (<कृपण, कपक)

3—ईं सीगारू (<शृगार)

4—र अम्रत (<अमृत)

5—रि-रू रितु, रुत (<ऋतु)

(च) व्यजन ध्वनिया

व्यजन ध्वनियो की दृष्टि मे पारसभाग की भाषा बहुत सम्पन्न हैं। 'ङ' के अतिरिक्त पाचो वर्गों की प्राय सभी व्यजन ध्वनिया, चारो अन्तस्थ ध्वनिया (य, र, ल, व), विरल प्रयुक्त 'श के अतिरिक्त 'स' एव 'ह' ध्वनिया पारसभाग की भाषा मे पाई जाती हैं। मूधन्य 'ष' ध्वनि ध्वनन तथा लिप्यकन के स्तर पर 'ख रूप धारण कर चुकी थी। फलत 'क्ष' के लिए भी यहा अवकाश नही है। 'क्ष—प एक सामान्य सा समीकरण पाया जाता है। वस्तुत क्ष, त्र, ज्ञ, इन सयुक्त ध्वनियो के स्थान पर विभिन्न सरलीकृत ध्वनिया पाई जाती हैं।

मूल (सस्कृत-अरबी फारसी) व्यजन ध्वनियो मे पाए जाने वाले ध्वनि परिवतनो का यह विवरण भाषाई दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है —

क 1—ख बखत (वक्त), मुलख (मुल्क), मिलख (मिल्क जायदाद)

2--ग: प्रगट (प्रकट), जुगति, जुगत (<युक्ति)।

ख (लिपि चिह्न : ष)

क: मूक (मूख), तुलना तक्त (तख़्त): कीर्तिलता: 4,110

ग

क: पैकंवर (पैगंवर), सामान्यतः 'पीर-पकंवर' प्रचलित है

ज

1—द: छादनु (छाजनु), नदर (नज़र) गुदारा (गुजारह: तुलसी)

2—च: भुच (>भुज्: भुज्) तुलना: कुचर (<कूजर)

ट

1—ठ: ऊठ (ऊंट)

2—ड: जडिआ (<जटित), कुडम (<कुटुम्ब), तुलना: कडि (<कटि) प्राकृत अपभ्रंश

ठ

ढ: मढी (<मठ+ई)

ड

1—र: गुदरीं, लरता, परते (पड़ते) विरल प्रयोग। व्रज-प्रभाव जान पड़ता है,

2—ल: (ल्ह) पल्हे (खड़े): तुलना: पल्होते (खड़े हुए: पंजाबी) सोल्हां (<षोडश) 'लिंग्विड' उच्चारण।

ढ

ड: हाड़ (<आषाढ)

ण

न: निवारनु, पूरनु

त

1—थ: महाभारथ, चिथा, चिथिआ (<चिता)

2—द: संगरांद (<संक्रान्ति), निचिंदु (<निश्चिंत)

थ

1—त: अमत (अस्त, <अस्थि), वानपरसत: (<वानप्रस्थ) तुलना: सपत <शपथ: पदमावत)।

2 - ठ गंठि (<ग्रंथि), गढ पंजाबी

द

1—त पातिसाहि। तुलना मदति (मदद पदमावत)
2—ड डभी (<दभी) डेरा (देहरा, देहुरा <देवगृह)
3—ज खिजमत (खिदमत)

ध

1 - द अउपद (<औषधी)
2—झ बूझ (<बुध्) बाझ (<वन्ध्या)

न

ण सुण, हाण (<हानि) पछाण, अपणे, आदि शब्दों में 'णत्व बहुलता' लक्षणीय है।

ब

प पातिसाहि, (कीर्तिलता, पुरातन प्रबंध, संग्रह आदि ग्रंथों में अनेकश प्रयुक्त) पादिशाहि (आइन-ए-अकबरी), पादशाह (तुजक-ए-जहांगीरी)

भ

प गरधप (<गदभ)

म

1—न सनबंध (<सम्बन्ध)
2—व नाव (नाउ नाम), परवान (<प्रमाण)
3—म्व दम्वडी। घूलत ध्वनि। तुलना भवर, नाव, गाव।

य

1—इ मधि, चलाइमान, दुखदाइक, निति (<नित्य), नाराइण, इह (यह), बिभचारी (<व्यभिचारी) बिवहार, (<व्यवहार) बिजन (<व्यजन)
2—इआ बिषिआ (<विषय), कलिआण (<कल्याण), बिआपी (<व्यापी) नइआ (नया), माइआ (<माया) दइआ (<दया), फाइदा (फायदा) पिआर (प्यार), सचा (<सचय)।
3—आ निसचा (<निश्चय)
4—ऐ भै, (<भय, सैन (<शयन) निरभै (<निर्भय, निरभै भी

प्रचलित है)भैआनक,(भयानक), विपै) (<विषय), समै (<समय)

5—ज: विपरजै (<विपर्यय), गुहज (<गुह्य) जूनी, (<योनि) तातपरज, (<तात्पर्य) जुआन, जुवांन, प्रजत (<पर्यन्त) ।

र

ड: गिड (गिर), कठउड़ (कठोर)

व

1—उ: तुचा (<त्वचा), सुवेत (श्वेत), सुभाउ (<स्वभाव), सुरग (<स्वर्ग) डंडउत (<दंडवत), पउण (<पवन), अउगुण (<अवगुण) ।

2—भ: भेप (वेश) ।

श

1—स: सोभा (<शोभा), सुधि (<शुद्ध), सकु (<शक), इस्कु (<इश्क), पातिसाह ।

2—ह: निहचिंत (<निश्चिंत), निहसंक (<निश्शंक)

क्ष

1—ष: रषिआ (<रक्षा) षत्री (<क्षत्री), षिउ (<क्षय), प्रतष (<प्रत्यक्ष) सूषम (<सूक्ष्म) लषण (लक्षण), तीषण (तीक्ष्ण), विषेपता (<विक्षेपता)

2—छ: छिण (<क्षण), लछण, छुधा (<क्षुधा), अपेछा (<अपेक्षा). विछेपता (<विक्षेपता) ।

ज्ञ

ग: गिआन (<ज्ञान), अवगिआ (<अवज्ञा), आगिआ (<आज्ञा)

(छ) संयुक्त (द्वित्त) ध्वनि परिवर्तन :—'स्वर भक्ति' तथा 'स्वरागम' की सहायता से (द्वित्त) ध्वनि-गुच्छों का सरलीकरण प्रायः हुआ है। गुरुमुखी लिपि की सीमाएं भी इसके लिए उत्तरदायी मानी जा सकती हैं।

क्त

1—कत: संसकति (संसक्ति), आसकति (<आसक्ति)

2—गत: संजुगति (<संयुक्त), भोगता (<भोक्ता), जुगत (<युक्त)

क्य

किअ किआ (क्या)

ख्य

खिअ विआखिआ (<व्याख्या) सखिआ (<सख्या)

त्म

तम आतमा (<आत्मा), अधिआतम (<अध्यात्म)

त्य

इ तिआग, किरति (कृत्य)

थ्य

इ पथि (पथ्य)

द्ध

ध्ध सुध्ध (<शुद्ध) उध्धार (<उद्धार), बुध्धी (<बुद्धि)

द्य

1—द्द उद्दमु (<उद्यम)
2—इ उदित (<उद्यत) तैयार होना
3—इअ विदिआ (<विद्या)

द्व उ(अ) दुतीआ (<द्वितीया) दुआदसी (<द्वादशी)

ध्य

1—इ मधिअम (<मध्यम)
2—इअ धिआन सधिआ, मधिआह्न (<मध्याह्न)

प्त

त परापति (<प्राप्ति) तपत (<तप्त)

(ज) आगम (स्वर)

इसत्री (<स्त्री), असनेह (<स्नेह), असथिर (<स्थिर) इसनानु (≤स्नान), असथूल (<स्थूल) उसतत, उसतुति (<स्तुति)

आगम (व्यंजन) रहसु (<रहस्य, रस), सहकाम (<सकाम) स्राप, (शाप) निरसदेह (<निस्सन्देह)।

लोप (स्वर) कै (अकै) हाड़ (<आषाढ़)

लोप (व्यंजन) रिदा, रिदै (<हृदय)

रूप विवेचन (संज्ञा रूप)

सामान्य विशेषताएं :

1. निर्विभक्तिक प्रयोग : पारस भाग मे निर्विभक्तिक कारकीय रूपो की बहुलता है। विभक्तियों का प्रयोग नगण्य सा है। विभक्तियों के स्थान पर विभिन्न परसर्गो का प्रयोग हुआ है। कर्त्ता, करण तथा अधिकरण कारकों के रूप कहीं-कहीं सविभक्तिक भी मिलते हैं। शेष कारकों मे निर्विभक्तिक रूप परसर्गों के साथ प्रयुक्त हुए है। वस्तुतः प्राचीन सविभक्तिक रूप भी परसर्गों के साथ मिलते हैं। प्राचीन सविभक्तिक रूपों का क्रमिक अवसान तथा निर्विभक्तिक रूपों का अधिक से अधिक (सपरसर्ग) प्रचलन पारसभाग की भाषा मे पाया जाता है।

क-कर्त्ता कारक

पारसभाग में कर्त्ता कारक की सूचना दो प्रकार से दी गई है :

1—शब्दांत में उ के प्रयोग द्वारा (उकार बहुलता),

2—शून्य रूपों के द्वारा,

उकार बहुलता

कर्ता कारकीय एक वचनी रूप प्रायः 'उ' की सहायता से बनाए गए हैं। संस्कृत मूलक शब्दों के अतिरिक्त विदेशी (अरबी-फारसी) शब्द भी उकारांत रूप में रखे गए हैं :

1—'जो सैतानु रूपी चोरु तेरे रिदे विषे आइ पड़ता' (पत्र: 426)

2—'तां ते सुकरु करु' (पत्र : 426)

3—'सुकरु का अउसरु चूकि जाता है' (पत्र : 432)

4—'महांपुरखु इहु वचनु सुणि करि बहुतु प्रसन्नु हूआ' (पत्र : 433-34)

5—'बहु दिआलु हूआ' (पत्र : 441)

इसी प्रकार तिआगु, करतनु, बहुतु, मारगु, तमोगुणु पतित-पावनु, तानपरजु, पदनु, ग्रहणु, बैरागु, चरणकमलु तथा उमरु, अब्दुल अजीजु, अमरु, दीदारु, अदबु, दहलु, महलु, सलामु नगदु (नकद) गंजु (ढेर) सबरु आदि कर्त्ता कारकीय एकवचनी रूप पारसभाग की भाषा मे उकार बहुलता की साक्षी देते हैं।

2. शून्य रूप :—कर्त्ता तथा अन्य कारकीय रूपों में शून्य रूपता का विकास प्राकृत-अपभ्रंश युग में ही हो चुका था। पारसभाग की भाषा में यह

प्रवृत्ति क्‍ी भी लक्षित की जा सकती है। प्राचीन 'उ' के स्थान पर इस शून्य रूपता का विकास हुआ है।

1 'महापुरष भी कहा है। (पत्र 51,65 विभिन्न प्रसगो मे अनेकश प्रयुक्त)

2 पाधा (उपाध्याय) बालक कउ बसत्र साथि मारे' (पत्र 125)

3 'पाप रूपी रोग इसको वद्धि कउ सीघ्र ही नास करता है (पत्र 245)

पारसभाग के लिपिको ने भी मूल ग्रथ की 'उकार बहुलता' को जाने अनजाने समाप्त कर डाला। यही कारण है कि पारसभाग की विभिन्न पाण्डुलिपियो मे 'उकार बहुलता' एक समान नही है। अपेक्षाकृत प्राचीन पाण्डुलिपिया पारसभाग की भाषा मे 'उकार बहुलता' की साक्षी देती हैं। इसके विपरीत पारसभाग के आधुनिक लिपिक-प्रकाशक-सपादक पारसभाग की भाषा मे से 'उकार बहुलता' को समाप्त करने पर उतारू जान पडते हैं। इस कारण भी कर्ता कारकीय एक वचनी रूप शून्य रूप मे प्राय मिल जाते हैं।

(ख) कर्मकारक (परसग कउ कउ, को) कर्म कारक का मुख्य परसर्ग कउ है। लिपिक दोष के कारण कउ प्राय निरनुनासिक 'कउ रूप मे भी लिखा मिलता है। एक वचन तथा बहुवचन दोनो मे कउ प्रयुक्त हुआ है

'महा चपलताई कउ पावता है' (स्त्रीलिंग। पत्र 461)

'सरब पदारथहु कउ तुछ जाणते हैं (बहुवचन। पत्र 461)

'स्वरग के सुपहु कउ भी तुछ जाणता है' (पत्र 461)

'इक तिआगी जन कउ किसी ने कहा' था' (पत्र 462)

कर्म (परसग रहित) कर्मकारक के परसर्ग (कउ-कउ) रहित प्रयोग भी पारसभाग मे मिल जाते हैं

'उनके सरीर बहुत पीण देपत भइआ' (पत्र 108)

(ग) करण कारक ('इ विभक्ति 'ने' परसर्ग)

सामान्यत कर्ता तथा करण कारको का परस्पर विलय हो गया है। कहीं-कहीं (सभवत उत्तरवर्ती लिपिक दोष के कारण) 'ने' परसर्ग भी प्रयुक्त हुआ है। परतु पारसभाग की सामान्य प्रवृत्ति 'इ' के माध्यम से करण कारक की सूचना देने की रही है

1 इ

'महापुरषि कहा' (महापुरष ने कहा। पत्र 541)

'प्रलोक विपे इसि जीव ही जाणा है' (परलोक में इस जीव ने ही जाना है' पत्र: 475)

'जेता जेता किसी जथा सकति भोगहु कउ तिआगिआ है' (पत्र. 501)

'पाच कारन प्रीति के मैं कहे है' (पत्र: 501)

कहीं कहीं 'इ' तथा 'ने' की एकत्र स्थिति भी पाई जाती है : 'इसी परि महाराजि ने भी कहा है' (पत्र: 461)

2 नै

'इकि विदिआवान ने ईरपा करिकै कहा था' (पत्र 462)

'तैंने भली प्रकार करि समझिआ है' (पत्र: 490)

'मिहतरि मूसे ने अरदासि करी' । (पत्र: 501 : अरदास=प्रार्थना)

3 करण: वहुवचनी रूप :

'इसी परि संतजनहु ने भी कहा है' (पत्र: 109)

'हमहु ने कैसा छलि करिकै उसका धनु हिरि (हर) लीआ' (पत्र : 382)

(घ) सम्प्रदान कारक : सम्प्रदान कारक के लिए 'निमति, निमत, नमिति' (निमित्त) परसर्ग प्रयुक्त हुए है :

'जो पुरप नांना प्रकार के भोजनहु अरु सींगारहु के नमिनि जांचना करे तब निरसंदेह पापी होता है' (पत्र : 459)

महांपुरप सनवंधीअहु के नमिति एक वरस की जीविका रापते थे' (पत्र : 467)

'भोजन के नमिति तरकारीआं कउं वहुत न ढूंढे' । (पत्र : 467)

'तुम उजल वस्त्र किस नमित्त नहीं पहिरते' (पत्र: 468)

'मेरी ओरि बंगले की नमिति द्रिस्टि नही करते' (पत्र : 468) (बंगला: वंगुला : ऊंचा मकान, अटारी) ।

(ङ) अपादान कारक : (स्मात्-आत् से विकसित परसर्ग)

अपादान न कारक की सूचना आधुनिक 'से' के 'पूर्वजों' सिउ सिउं, सों सों, सो अथवा 'ते' (पंजावी) के द्वारा दी गई है :

1 सिउः 'भगवंत सिउं मांगता था' (पत्र : 350)

'इवराहीम अदहम ने सकीक वलखी सिउं पूछिआ था' (पत्र: 459)

'उस सिउं पूछत भए' (पत्र: 469)

2 सौं 'जिस पदारथ करकै भगवन मौं विछेपता प्राप्त होवै ।
'भगवत सौं बेमुप होना है'
'भगवत सौ अचेतु होता है'
'उनमौ पूछत भइआ'

3 ते 'नरकहु ते बचावैगा' नरकों से (पत्र 402)
'उनहु ते भी अधिक निरबल देपिआ' (पत्र 402)
'उनहु ते भी अधिक पीण देपत भइआ' (पत्र 403)
'गरजते सिंघ ते भैमान' (पत्र 438)
'भगवत उस कउ लोकहु ते जाचना करावता है' (पत्र 457)
'सरब भोगहु ते विरक्त हो करि' (पत्र 461)

'प्रीतम पदारथु चित्त ते कदाचित नही भूलता' (अर्थात् प्रिय पदाथ मन से कभी भी विस्मृत नही होता (पत्र 462)

4 तें 'इस पुरुष के रिदै तें सभ ही पदारथ विसमरण हो जावहि' (पत्र 462)

च सम्बन्ध कारक सम्बन्ध की सूचना देने वाले परसर्ग दो स्रोतो से लिए गए हैं। 'कृत' मे विकसित का, के, की, मुख्य रूप से तथा पजाबी के दा, दे, दी परसर्गों का प्रयोग भी पारसभाग मे सामान्यत हुआ है

1 का (कृत से विकसित परसर्ग)
'बैरागु का चिहनु प्रगटि होता है' (पत्र 461)
इद्री आदिक भोगहु विषे असक्त होवणा पसूअहु का धरमु है' (पत्र 461)
'उसका चितु समानता विषे न रहे' (पत्र 462)
'अबू हनीफा तउ जुलाहे का पूतु है (पत्र 462)
'जैसे समुद्र के जल विषे किसी कउ क्रिपणता नही होती' (पत्र 462)

2 के
वैरागीअहु के साथि प्रीति करनी सौ इहु भी प्रीति भगवत साथि होती है'। (पत्र 411)

'किसी के वस्तत ग्रहण तिआग की इच्छा न करे' (पत्र : 462)

'मैं धन के हरप सोग ते रहतु हौं' (पत्र : 462)

'नरकहु के भै' (पत्र : 540)

3. की :

'मिठिआई की अभलासा नसट हो जाती है' (पत्र : 115)

'वैराग की परीपिआ इहु है' (पत्र : 461)

'जिसकी प्रीत आतम सुप विना अवर किसी 'पदारथ विपे कछु न होवे' (पत्र : 461)

'उस दा भजन करहु'। (पत्र : 502) आदि वाक्यों मे कही कहीं पंजाबी का सम्बंध बोधक दा (दी-दे) भी प्रयुक्त हुए हैं।

छः अधिकरण कारक : (मध्य, मइं आदि से विकसित परसर्ग)

अधिकरण कारक के सविभक्तिक (संश्लिष्ट) रूप कभी कभी इ' से भी बनाए गए हैं। यह प्राचीन प्रवृत्ति जान पड़ती है। आधुनिक भाषाओं में उपलब्ध अधिकरण कारकीय परसर्गों के प्राचीन रूप 'मों' 'पास' 'विपे' 'परि' भी पारसभाग की भाषा में पाए जाते हैं :

1. मों :

'मारग मों' (पत्र : 209)

'भगवंत के भजन मों इसथित है' (पत्र 454)

2 विपे :

'असथूल पदारथहु विपे प्रसंन्न नही होता (पत्र:' 15)

'समुद्र के जल विपे' (पत्र: 415)

'महापुरप की टहल विपे' (पत्र: 461)

'इन्द्री आदिक भोगहु विपे असकत होणा पसूअहु का धरम है' (पत्र: 461)

3 परि :

'पाथर परि' (पत्र : 201), 'इस परि इक वारता है' (पत्र: 462)

4 इ : (अधिकरण सविभक्तिक रूप)

'सबद कउ एकठा करिकै भीतरि पहुंचाई देते हैं' (पत्र: 211)

'मीनि विषे इसथित है' (पत्र 232)

'मारगि विषे' (पत्र 436)

'झपटि विषै' (पत्र 436)

'गिआनवान के पासि' (पत्र 462)

घटि, धिआनि, सिमरिनि (पत्र 462)

बहुवचन विधि पारसभाग मे सज्ञा शब्दो के बहुवचनी रूप इन दो परपराओ के अनुरूप है —

क—प्राकृत-अपभ्रशों की परम्परा

ख—पजाबी (देशज) परम्परा,

क—प्राकृत-अपभ्रश परम्परा (हु, अहु, इ, उ)

1—हु प्राकृतो मे एकवचनी 'उ' (ह-श्रुति के साथ 'हु') रूप मे बहुवचन की सूचना देता था। पारसभाग मे 'हु के साथ बने बहुवचनी रूप प्राय सर्वत्र मिलते हैं। वस्तुत बहुवचन बोधक 'हु' पारसभाग के क्रियापदो सर्वनामो तथा विभिन्न कारको मे भिन्न भिन्न परसर्गों के साथ प्रयुक्त मिलता है। 'एक जगिआसी जन न अपणे सतगुरुहु ते पूछिआ था (पत्र 235) यह आदरार्थक बहुवचन जान पडता है।

'तुमहु ने' (कर्ता-करण पत्र < 201),

'लोकहु कउ किसी परकारि दुखावणा' (करण इपत्र < 250),

'रूपवानहु के मुख से रागु सुनणे का सुभाव अधिक हो जावै (सम्बध कारक पत्र 380),

'हमहु ने कैसा छलि करिकै उसका धनु हिरि लीआ (कता करण पत्र 380)

'सरब मोगहु ते विरकत हो करि' (अपादान पत्र 461),

'सवनहु विषे कडुआ जल राखिआ है' (अधिकरण पत्र 530,)

इसी प्रकार भगतहु, पडितहु, साधजनहु बिरहु, (जीवहु जीअहु) बहुवचनी रूप पाए जाते हैं।

2 अहु इकारान्त, ईकारान्त, उकारांत तथा ऊकारान्त शब्दो का बहुवचन 'अहु' के साथ बनाया गया है

'भगवंति देवतिअहु सिउं पूछणे लागा' । (पत्र: 405)

'इह सभी पदारथ इंद्रीअहु के इस्ट हैं' । (पत्र/411)

'तां ते वैरागीअहु के साथ प्रीति करनी' । (पत्र: 411)

'इह सकल पदारथ पसूअहु कउ भी प्रापत होते है' । पत्र: 411)

'मरव घाटीअहु कउं तरि जावै' (पत्र: 417)

इसी प्रकार 'भाईअहु' 'इसतरीअहु' आदि रूप भी मिलते हैं।

3—इ (<ति) : हेमचन्द्र द्वारा निर्दिष्ट बहुवचन बोधक 'ति' (शब्दानुशासन; अध्याय 8 सूत्र 330) का विकसित रूप 'इ' पारसभाग मे बहुवचन की सूचना देता है :

'प्रीति का रूपु अरु उसके लछ्णि करऊंगा' । (पत्र: 385),

'इतरि जीवहु विषे कछु अलप मात्र है' पत्र: 401),

'जब सभ ही पंडति अरु बुधिवान एकठे होवहिं' । (पत्र: 412)

'तब उनहु ने कहा जो हम स्वरग की इछा करि खीणि हुए हैं' । पत्र: 415) ।

4—उ : अपभ्रंशों मे 'उ' की सहायता से बने बहुवचनी रूप पाए जाते हैं। 'चउवेउ' (चतुर्वेदा: दोहाकोश। सरहपा,) हरि-हर-बम्हु (हरि-हर-ब्रह्मा परमात्म प्रकाश)। अपभ्रंश की यह प्रवृत्ति कहीं कहीं पारसभाग में भी मिलती है :

'कणक (गेहूं) अरु चावल आदिक जेते अनाज है सो इह महांराजसी अहारु है' । (पत्र: 466)

'निति प्रति के पापु करिकै अवसमेव रिदा अंधि हो जाता है' । (पत्र: 215)

'दूसरे पापु ऐसे होते हैं' (पत्र : 380)

'वहु पंडति इस प्रकारि कहते है' (पत्र: 385)

सम्बोधन

पारसभाग में सम्बोधन की सूचना मुख्यतः

क 'आ' : एकवचन

ख 'हु, अहु, हो' : बहुवचन

ग 'ए' : स्त्रीलिंग

इन प्रत्ययो से दी गई है .

क आ

'ब्रहमणेटिआ ! (ब्राह्मण के साथ क्षुद्रता बोधक 'एटा', एटिआ' का प्रयोग), सईआदा ! (सैय्याद फारसी)।

'किराड़ा' ! (किरात ? बनिया । घृणासूचक)।

ख (1) हु जनहु' सतहु '

(2) हो 'भाइडिहो,' (भाइओ ! 'ड' स्वार्थ मे प्रयुक्त), 'पिआरिहो (प्यारो)।

(3) अहु 'फकीरहु खुदाई किअहु' (खुदा के फकीरो !) 'खुदाई दिअहु पिआरिअहु' (खुदा के प्यारो ! पजाबी प्रभाव)

ग (स्त्रीलिङ्ग) ए 'आ' बहुवचन 'सईआदणीए' (माया के लिए सम्बोधन)। 'दुस्मणा आपणी जान कीआ । हू अपनी जान की दुश्मन स्त्रियो !'

वैसे सम्बोधन का सामान्य चिह्न है 'हे । 'हे कहणहारिआ के विचे सिरो मणि !' (पत्र 521)

निष्कर्ष यह है कि पारसभाग मे प्रयुक्त सविभक्तिक, परसर्ग सहित तथा परसर्ग रहित विभिन्न कारकीय रूपो की सरचना हिन्दी की आधुनिक कारकीय सरचना का पूर्वरूप प्रस्तुत करती है। अपभ्रश-परपराओ तथा आधुनिक कारकीय पद्धति के मध्य की एक मूल्यवान् शृखला पारसभाग म विद्यमान है।

रूप विवेचन (धातु : क्रिया रूप)

पारसभाग मे प्रयुक्त धातुओ को सामान्यत —

1 तत्सम धातु वर्ग,
2 प्राचीन (ध्वनि-परिवर्तित) धातु वर्ग,
3 देशज धातु वर्ग तथा
4 नाम धातु वर्ग,

इन चार धातु वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है।

1 तत्सम धातु वग पारसभाग मे उपलब्ध बहुसख्यक क्रिया पदो के मूल मे सस्कृत-पाली-प्राकृत-अपभ्रश से परपरा प्राप्त धातुए हैं। √चर,

√हस, √चल आदि धातुएं अपने मूल अर्थ में ही प्रयुक्त हुई हैं । अरबी-फारसी से ली गई धातुओं का पारसभाग में लगभग अभाव है ।

2. प्राचीन (ध्वनि-परिवर्तित) धातु वर्ग : प्राकृत-अपभ्रंशों का युग क्रांतिकारी ध्वनि-परिवर्तन का युग कहा जा सकता है । इस युग में प्राचीन धातुएं आमूल चूल परिवर्तित हुई । √कथ् से कह, √दा से √दि (दिण्ण: प्राकृत । दिया : हिन्दी । दित्ता-दित्ती: पंजाबी । दीनी : व्रज) आदि धातुओं का विकास एक लक्षणीय तथ्य है । पारसभाग मे इन प्राचीन (ध्वनि-परिवर्तित) धातुओं की प्रचुरता है ।

3. देशज धातु वर्ग : पंजाब-राजस्थान-हरियाणा के अंचलों में स्थानीय रूप से विकसित धातुएं भी पारसभाग में उन्मुक्त रूप से प्रयुक्त हुई है । √ठहर, √जीम (√जीव-खाना), √टिक (टिकना-रुकना-तिलक लगाना) √छूट, √पड़ √रह आदि बहुसंख्यक देशज धातुओं का प्रयोग पारसभाग की भाषा में पदे पदे उपलब्ध होता है ।

4 नाम धातु : संज्ञा शब्दों का धातु रूप में प्रयोग पारसभाग की भाषा मे प्राय: हुआ है । द्रव से 'द्रविआ' (द्रवित) अर्प से 'अरपा' अर्पित किया), संतोष से 'संतोषा' (संतुष्ट किया) आदि नाम धातु 'रूप' तथा 'प्रयोग' की दृष्टि से बहुत रोचक है ।

काल रूपों की संरचना

मूल धातु से विभिन्न कालिक क्रिया रूपों की संरचना पद्धति का अध्ययन किसी भी भाषा के क्रिया-पदों की प्रकृति तथा उनकी व्यवस्था को समझने के लिए आवश्यक होता है । इस दृष्टि से पारसभाग की भाषा मे उपलब्ध क्रिया-पदों का एक संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

1. कृदन्त रूप : संस्कृत-पाली तथा प्राकृत में मूल धातु में आवश्यक परिवर्तन परिवर्धन कर विभिन्न कालिक क्रिया-पदों का निर्माण प्राय: होता आ रहा है । 'भवति' जैसे क्रिया पदों में धातु-काल-पुरुष-वचन की एकत्र (संश्लिष्ट व्यवस्था) रहती थी । परन्तु आगे चलकर इस संश्लिष्ट क्रिया पद्धति के स्थान पर एक स्वतन्त्र एवं विश्लिष्ट क्रिया-पद्धति का विकास हुआ ।

इस क्रिया-पद्धति का विकास कृदन्त प्रत्ययों, सहायक क्रियाओं तथा काल-पुरुष-वचन सूचक नवविकसित व्याकरणिक सामग्री की सहायता से ही संभव हो सका । पारसभाग की भाषा में क्रिया-पद्धति के विभिन्न घटक तत्वों में सबसे

महत्वपूर्ण है कृदन्त प्रत्ययों की व्यापक व्यवस्था। इस कृदन्त व्यवस्था के प्रमुख प्रत्यय ये हैं

(क) स्वरादि-भूतकालिक-कृदन्त प्रत्यय (कर्तृवाची)

1 आ प्राचीन 'क्त' (अ) से विकसित 'आ' की सहायता से बने भूतकालिक (पुल्लिंगी) क्रिया पदों के ये रूप उल्लेखनीय है, कीआ ('क्उि करि कीआ'), 'बोलीआ', (बोला) 'सोइआ (सोया), हूआ (हुआ), निकसिआ जागिआ, गईआ (गया), रविया (रम् से विकसित रविआ, रूपांतर)।

वाक्य मे भूतकालिक अर्थ की स्पष्ट प्रतीति के लिए आकारांत क्रिया पदों के साथ 'था, थे, थी' का भी प्रयोग पाया जाता है। 'है' की सहायता से रही आकारांत क्रिया पदों को वर्तमान काल मे भी प्रयुक्त किया जाता है, कीआ है, सोइआ है, आदि।

2 ई हुई थी, हुई, करि (कै), लागी आदि भूतकालिक स्त्रीलिंगी क्रिया पदों का निर्माण 'ई' के साथ किया गया है। स्त्री प्रत्यय (ई) का यह संचरण क्रिया पदों मे हुआ जान पड़ता है।

3 ऊ उ होऊ, देऊ रहउ, सकउ, रमिउ आदि उत्तम पुरुषवाची क्रिया पद उल्लेखनीय हैं। हू, दू, रहू, सकू जैसे आधुनिक रूपों के इन पूर्वजों का प्रयोग पारसभाग मे हुआ है।

4 ए गए, ठहरे आदि भूतकालिक क्रिया पद 'ए' की सहायता से बनाए गए हैं।

(ख) स्वरादि कृदन्त प्रत्यय (कर्मवाची)

1 आवता प्राचीन कर्मवाची प्रत्यय 'आपय्' का विकसित रूप जान पड़ता है। आपय् तथा 'ता' के साथ बने ये कर्मवाची रूप उल्लेखनीय हैं —

भुचावता ($\sqrt{}$भुज) पढावता, करावता, दुधावता, परचावता।

आवती (स्त्रीलिंग) खिलावती (खिलाती), पेलाती (खेल कराती)

2 आइआ पणाइआ (खुदवाया), द्रिढाइआ (दृढ करवाया), दिखाइआ, खिलवाइआ (खिलाया), उपजाइआ, सुकाइआ, (सुखाया), जिवाइया (जीवित किया गया 'उसी प्रभु का जिवाइआ जीवते हैं' पत्र 251)

भाववाची शब्द पारसभाग की भाषा के सर्वग्राही रूप की सूचना देना है।

(छ) संभावना-विध्यर्थक क्रिया रूप (विधि-आज्ञा)

संभावना, विधि (आज्ञा, आशीर्वाद) बोधक क्रिया पदों की योजना पारस-भाग मे इस प्रकार हुई है

विध्यर्थक प्रथम पुरुष (एक वचन)

धातु + ईजीए = दीजीऐ, हूजीऐ, जाणीऐ,
'झूठ अरू निंदा ते रहति हूजीऐ'।

धातु + उ = करु (करउ भी मिलता है)।

धातु + इऐ = 'कठउरता करीऐ (कठोरता कीजिए)।

विध्यर्थक मध्यम पुरुष बहुवचन

धातु + हु = जावहु, जाणहु, होहु, करहु।

विध्यर्थक उत्तम पुरुष एक वचन

धातु + उ (ऊ) पोवउ, होवउ, (खोऊ, जाऊ)।

विध्यर्थक कर्मवाची

धातु + आवै कहावै (कहलाए)

(ज) भविष्य कालिक क्रियापद

सामान्य भविष्य 'गत' से विकसित गा, गे, गी से सामान्य भविष्य की सूचना दी गई है

प्रथम पुरुष एक वचन पुल्लिंग

गा सकहिगा, लेवहिगा, करहिगा, पावहिगा, लिआवैगा (ले आवेगा),

एगा आवैगा, चलैगा, कहैगा, हूजीएगा।

प्रथम पुरुष एक वचन स्त्रीलिंग

ऐगी होवैगी, पावैगी। चाहीऐगी ('जीविका अलप ही चाहीऐगी)

प्रथम पुरुष बहुवचन पुल्लिंग

4 हि + गे (हिगे रूपांतर) बहुवचन सूचक हि तथा गे के साथ बने रूप

भुंचहिगे, होवहिगे, उठहिगे, देवहिगे, करहिगे, पूछहिगे, चलहिगे आदि ।

ध्यातव्य : प्रथम पुरुष तथा उत्तम पुरुष के बहुवचनी रूप समान हैं ।

4. मध्यम पुरुष एक वचन

ह + गा : करहिगा, होवहिगा,
'तू अपणा आप समरपण करहिगा तब सुपी होवहिगा ।'

5. उत्तम पुरुष : एक वचन (पुंल्लिग)

ऊं + गा : पड़ऊंगा (पड़ूगा), लेवऊगा, लागऊगा (लगूगा) छूटऊगा, पीवऊंगा, सकऊंगा, करऊंगा, होवऊगा, लगावऊंगा ।

(झ) कर्मवाची भविष्य (प्रथम पुरुष : एक वचन)

1. धातु + आइएगा : बुलाइएगा ।

2. प्रथम पुरुष : बहुवचन

धातु + अहि + हिंगे : करीअहिगे । करहिगे, मुचहिगे ।

कर्मवाची : भविष्य : बहुवचन

धातु + आवहु + गे : जनावहुगे, पावहुगे (पाओगे) ।

धातु + गी : पावैगी, होवैगी ।

(ञ) संयुक्त क्रियापद

एक से अधिक धातुओं के योग से संयुक्तक्रिया पदों का निर्माण पारमभाग की एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति है । सामान्ययत : √हू, √पड़, √टार (डाल), √कर, √रह, √सक, √ले आदि धातुओं के साथ विभिन्न प्रत्ययों की सहायता से विभिन्न कालिक क्रियापद बनाए गए हैं :

1 हू : हूआ है, हूए होवहिगें, हूई होवैगी, हूआ जाणिए, उठि पड़ा हूआ, हूआ चाहते हैं, आइआ हूआ, हो गया था, होइ गए, होणा होवै, प्रापत होता, चुराइआ होता है, हो रहता है, होइ आवते हैं, होइ करि सोइआ रहता है, होइ रहै, ढीला होकर चलेगा, होइ आवते हैं ।

2. बहुवचन :

धातु + √पड़ (पर) : छूटि पड़ेंगे, पडे हुए हैं, सूता पडा है (सोया पडा है) परा लेटता ।

3 धातु + √डार मारि डारा था, करि डारैगा।

4 धातु + √कर होइ करि सिधाइआ, पकाइ करि न पाता था, करि लेवहु, विनती करी थी, अवगिआ न करी थी, भजनु बैठा करता था करता रहा है।

निषेधार्थक। 'मैंने होने बल भला करम किउ न करि लीआ (बल रहते मैं ने शुभ कर्म क्या न कर लिया) पत्र 512

5 धातु + √रह करता रहता है, सोइआ रहता है, बैठा रहता था, सोइ रहा था, जाता रहा, सिमरनु करता रहता था।

6 धातु + √चाह भोगहु कउ भोगिआ चाहता है' (पत्र 513)। गइआ चाहता है, बचाइआ चाहता है, ले आइआ चाहते है, पहरीआ चाहै (पहनना चाहे), कीआ चाहउ। बीचारु करिकै दूरि कीआ चाहीता है। (पत्र 524)

7 धातु + देह (दे) उठाइ देह ('तू ही किसी अधिकारी कउ उठाइ देह' पत्र 456)

8 धातु + √सक 'इउ भी नही जाण सकीता' (कर्मवाची पत्र 300)
'न किसी दिसा विषे कहि सकीता है' (पत्र 526)।
बचाइ सकहिगा, सह सकऊगा।

9 निषेधायक (धातु + न + √सक)
'तिसने उनका तिआगु नही करि सकिआ' (कमवाची पत्र 441)
'रोकि नही सकीता' (कमवाची 403)
'होइ न सकेगा'

10 धातु + ले वेचि लेवै, करि लेवै, लिप ले आवहु, ले आइआ

11 धातु + जा जाणीआ जाता है, करता चला जावै।

12 धातु + भू (ब्रज-प्रभाव) करत भइआ, होत भइआ, पूछता भइआ, लपावत भइआ, ऊघ आवत भई, मागत भए।

ट हेतुहेतुमद्भूत

दो क्रिया रूपों के योग से बने हेतुहेतुमदभूत सूचक वाक्य भी पारसभाग में मिलते हैं। 'मत (कहीं पजाबी) 'जे' (यदि पजाबी) के साथ बने ऐसे कुछ वाक्य ये है

1. मत+धातु+धातु 'मत कोई इस कउं वघिआड़ मारि जावै' । (कहीं इसे कोई वाघ मार न जाए' (पत्र : 431)
'मत वह पुरुष मैं ही होवउं' (कहीं वह व्यक्ति मैं ही न हूं : पत्र : 435)

2. जे+संज्ञा+धातु : 'जे भै करता तउ परम सुप कउं प्रापत होता' (यदि भय करता तो परम सुख को प्राप्त करता : पत्र : 431)

(ठ) कर्मवाची

1 धातु+आइआ : उपजाइआ ('जगत कउं मैंने उपजाइआ था' पत्र : 15)

2 धातु+आवता : करावता (लोकहु ते जाचनां करावता है : पत्र 457), भुगावता : ('रोग अरु दुप कउं भुगावता है') ।
दुपावता, ठहरावता ।

3 धातु+आवती : लपावती

4 धातु+आवणा : परचावणा (परिचित कराना : मन बहलाना)

पारसभाग की भाषा में प्रयुक्त धातुओं-क्रिया पदों-के इस संक्षिप्त विवरण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि धातुओं तथा क्रियापदों का इतना प्राचीन तथा प्रामाणिक विवरण हिन्दी में अन्यत्र दुर्लभ है ।

(ड) नाम धातु

पारसभाग की भाषा में नाम (संज्ञा) से धातु और फिर उससे क्रियापद-निर्माण की एक व्यापक प्रवृत्ति विद्यमान है :—

1—संज्ञा+आवणा : उलटावणा (उलटाना) 'रिदे (हृदय) के मुझाव कउं उलटावणां ही सरव करमहु का फलु है' ।
तिआगणा, दुपावणा (दुख देना) ।

2—संज्ञा+णा (ना) : बीजणा, जम्मणा, परसना (छूना),

3—संज्ञा+आवता । भुगावता, भोगावता (√भुज् >भोग > भुग),

4—संज्ञा+ता : निपेधता,

5—संज्ञा+आ: उपदेसिआ, उधारिआ, त्रिपतासिआ (तृप्त किया गया),

6—संज्ञा+आइआ : आइआ, सिधाइआ (सिद्ध हुआ । चला गया),

7—संज्ञा+ईता : (कर्मवाची) लोभीता (लोभीते : बहुवचन), वरजीता, वासीता (गंधाया),

8—सज्ञा + ऐ उधरैं, सन्तोपैं, अरपैं,

9—सज्ञा + आवैं (विधिमूलक) द्रिढावैं (दृढ करे) टगावैं (ठगा जाए), वरतावैं (बरताव करे)।

(ढ) भाववाचक

पारसभाग मे भाववाचक शब्द इन प्रत्ययो की सहायता से बनाए गए हैं

1—सज्ञा + ता अचेतता उतपता (उत्पत्ति) नासता (नाश) निरासता (निराशा), बिपेपता (विक्षेप), ब्रिधता (वृद्धि), पीणता, निरलेपता, विसमादता (विस्मय),

2—सज्ञा + ताई सदरताई, समरथताई, निरद्धनताई, उसनताई (उष्णता), महाचपलताई, नगनताई।

3—सज्ञा + आई मित्राई (मित्रता) बेमुषाई (विमुखता), असमरथाई,

4—सज्ञा + ई बधमानी (बध), लज्जामानी (लज्जा),

5—सज्ञा + ना (णा) उदरपूरना (णा), जीवना (णा) 'ससार का जीवना अल्प है'

विचारणा 'उपकार की विचारणा इस प्रकार जोगु है'।

6—सज्ञा + गरी कारीगरी, सउदागरी।

(ण) सर्वनाम

पाणिनि ने सवनामो की सख्या 25 दी है। परतु उत्तरवर्ती युगो मे इनकी सख्या पर्याप्त कम होती चली गई। पारसभाग मे उपलब्ध प्रमुख सवनाम ये हैं

1 किम् मूलक किआ, कवण, कउण, कउन, कछुक, कोई।
2 यत मूलक जि, जिन,
3 तत् मूलक सि, सु' सो, तिस, ते तिन,
4 अदस् मूलक अमका (अमुक), अमकी, उस, उह, ओह, वहु, उही, उनहु,
5 सर्वमूलक सभ, सभस, सभाहु,
6 युष्म (तुष्म) मूलक तू, तु, तूही, तुही, तुम, तुमहु, तुमारे
7 अस्म (अम्ह) मूलक हउ, हौं, मैं, हम, हमहु (असीं पजाबी)
8 इदम मूलक इस, इहु,

इन सर्वनामों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :

1. पुरुष वाचक : हउं, हौं, हम (उत्तम पुरुष), तूं, तू, तुम (मध्यम पुरुष), सि, सो तिस, तिन (प्रथम पुरुष),
2. निश्चय वाचक : इसु, इहु, इस, एह, एही, एई,एतु, उतु, एई, उनि. उन्हों, (उना, उन्हा : पंजाबी)
3. सम्बन्ध वाचक : जि, वे, जे, सि, सु, से,
4. प्रश्नवाचक : किआ, कवण, कउण, कउन,
5. अनिश्चयवाचक : कोई (कु), कितने (कु), किछु, कुछ, कुझ (पंजाबी) इक, इकस (पंजाबी),
6. निजवाचक : अप्प, आपणा, आप, अप्पणा

(त) विशेषण

पारसभाग में संज्ञा शब्दो से विशेषण बनाने की कई पद्धतियां दिखाई पड़ती हैं। विशेषणों का निर्माण :

1. मान
2. वान
3. वंत
4. ई

इन प्रत्ययों की सहायता से प्राय: किया गया है ।

1 संज्ञा+मान+उ

अनंदमांनु, दिसटिमांनु (दृश्यमान) कंपाइमांनु, मुभाइमांनु, क्रोधुमांनु, बंधनमान (बद्ध), लजामांन, त्रासिमांन (त्रस्त), अमचरजमांन,

2 संज्ञा+वांन+उ

जोबनवांनु, मोकवांनु, विदिआवांनु, भागवांनु, त्रासवांनु, संसैवानु (संशयवान), गिआनवांन,

3 संज्ञा+वंत+उ

अतवंतु, आकारवंतु, आसावंतु, नामवंतु, मूरतीवंतु, अकारवंतु (आकारवान) हुरपवंतु, सरधावंतु, पिमावंतु (क्षमावान), पुत्रवती (स्त्रीलिंग),

ध्यातव्य

शब्दात में 'उ' की स्थिति उच्चारण अथवा लिपि सापेक्ष है।

4 सज्ञा + ई कपटी, पयारथी।

5 सज्ञा + दाइक

लाभदाइक, पेददाइक, उसनदाइक (उष्णता देने वाला) गुणदाइक, कलिआणदाइक,

6 क्रिया + हारा (रे)

चरावणेहारा, पकडनेहारा, जाणणेहारा, पूजणेहारा, लपावणेहारे (कमवाची), जानणेहारे, वरजि करणहारे (मनाह करने वाले)

7 सज्ञा + क

अधभूतक (आधिभौतिक) रमणीक, सुआदिक (स्वाददायी) माइक (माया से सबधित),

8 सज्ञा + की

सातकी, माइकी

9 अव्यय + सज्ञा

अपार, अधिक से अधिक, अचल, अतितुछ, अजोग, अतअतक (अत्यत) कुपथ, कुमारग, विरक्त, विरस, परमु दुख, निहकाम, निहसरीर, निरलेप, निडरू,

10 अव्यय + विशेषण

अविनासी, जथारथी (यथार्थ का जिज्ञासु),

11 सज्ञा + इत (अत)

मिलित, मूरछित (छत), दुखतु (दुखित, दुखी) पडित,

12 सज्ञा + सज्ञा

ससँबुधी (सशय बुद्धि),

13 सज्ञा + विशेषण

बुधीहीण, बासनाबध (वामनाबद्ध) देह अभिमान सजुगत,' धुधिआरथी (क्षुधार्थी),

14. विशेषण + विशेषण :

मनमती दंभी, परमभागहीण, सुधकेवल (केवल शुद्ध) सूछमदंभी (सूक्ष्म दंभी),

15. विशेषण + संज्ञा

दीनचित्तु, उत्तमव्रत, अलपबुधी, करणीव कर्म (करणीय कर्म), सतरूप (सत्-सत्य-स्वरूप), सुअमत वित्त (स्वस्थ वित्त),

16. महां + संज्ञा (विशेषण)

इस प्रत्ययावली के अतिरिक्त 'महां' (महान/ के साथ बनाये गए कुछ विशेषण ये हैं :— महांमगन, महांइकाग्रचित, महादुरलंभ (महादुर्लभ) महांदुरगंधत महांराजसी, महातेजसी, महाढीठु, महांनिलजु, महांअचितु, महांमलीन, महांअजोग, महानिद (महानिन्द्य), महांतुछ, महांमूरख, महांउजल, महाठगविदिआ महांअवधूतु ।

17. व्यस्त पद-विशेषण :

अनाथहु के नाथ, महीनां ते महीन (बहुत बारीक), करनी ते रहत, रहत का मूरा ।

18. विविध-विशेषण :

कामनामयी, रसीले, मुक्ता (मुक्त), सुपनवत, दरपणवत् अधोगतु, ताते, उस कउ अधोगतु कहीता है' (पत्र: 471)

19. संकर विशेषण

(क) फारसी-संस्कृत :

नीच-निवाज, नीच गरीब निवाज, बे (बि) अंत, बे (बि) सुआदी, बीणा सजाणा, (बीना, समझदार । फारसी । 'सञाणा' ('<सज्ञान'/पंजाबी)

'निरदावे ठउर' (जिस स्थान पर किसी का दावा-अधिकार न हो) 'निर' संस्कृत । दावा : फारसी

(ख) संख्यावाची शब्द :

पारसभाग में प्रयुक्त संख्यावाची शब्दों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है :

1—गणनातीत भाव

लाष, कोट (<कोटि/करोड) पदम, नील, धुज शब्द संख्याओं का गणनातीत भाव प्रकट करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

असखमण कागद, सहसर (सहस्र) सहर, 'सहसरदान' आदि शब्दो मे भी यही भाव निहित है।

'इकीस सहसर अरु पट सै (21,600) पाप एकठे हुए होवहिगे।' (पत्र 507)

'केते लाप रूपईआ' (पत्र 462)

'केते सहसर ऊठ (ऊंट)' (पत्र 431)

2—पूर्णांक-बोधक

'इक घडी प्रमाणु (पत्र 486)

'चउदा (चौदह), 'चालीस दिन प्रजन'

उनचास 'फता मूसली ने एक रुपईआ काढि उनचास उन कउ फरि दीए' (पत्र 456)

पच लछण 'सचता रूपी पदारथ के पच लछणि प्रसिधि हैं' (पत्र 493) सत्तर 'साई भी अपने मुप सौ सत्तर बेरि सबर कउ फिरि फिरि चित्त कीआ है' (पत्र 389)।

3 क्रमबोधक

प्रथम, प्रथमे, दूसरा, दूसरे तीसरा, (री), चउथी, पजवी छठवी, पसटम पसटम इद्री मन है' पत्र 411

4 अपूर्ण सख्या बोधक

आधी घडी,'सवा रत्ती,' 'सवा दुई माशे, 'अढाई बिसवे','सवा तीन टक'।

5 सख्या मूलक समस्त पद

ए (इ) क दिन, दो बरस, तीन लोक, बारह रासि, 'तीस गुणा भलाई (पत्र 311)।

(द) अव्यय

पारसभाग मे प्रयुक्त अव्यय-स्रोत के आधार पर-तीन वर्गों मे विभाजित किए जा सकते हैं।

1. संस्कृत मूलक अव्यय :

इस वर्ग में संस्कृत-प्राकृत अपभ्रंशों से प्राप्त अव्यय रखे जा सकते है।

2. फारसी मूलक अव्यय :

फारसी (अरबी) स्रोतों से प्राप्त अव्यय इस वर्ग मे रखे जा सकते है।

3 देशज अव्यय:

स्थानीय रूप से विकसित तथा पजावी की अपनी प्रकृति के अनुरूप ढले-स्वयभू अव्यय-देशज कहे जा सकते है। फकाफक-फटाफट प्रभृति त्वरासूचक आदि स्वयंभू एवं लूं-लू आदि अनुकरणमूलक अव्यय इसी वर्ग मे रखे जा सकते है। अव्ययों के इन तीन वर्गों के ये उपवर्ग वनाए जा सकते है :—

क काल वोधक अव्यय,

ख स्थान वोधक अव्यय,

ग रीति वोधक अव्यय,

घ सादृश्य वोधक अव्यय,

ङ संयोजक अव्यय,

च विविध अव्यय।

क काल वोधक अव्यय

अजहूं, अवही, उपरंत, कदांचि (कदाचित) कवहूं, नितप्रति, निताप्रत, (<नित्यप्रति) सदीवकाल (सदईव : <सदैव), इव (अव), तव (तवि) जव, अवही, अभी, कवी (कभी), कवहूं, ततिकाल (<तत्काल), वहुडि, चिर, विंदक, (<विन्दु। क्षण भर) पिण मात्र, प्रजंत (<पर्यन्त)।

ख स्थान वोधक अव्यय :

इहां, कहां (वहां), तले, उपरि मधि (<मध्य)

ग रीति वोधक अव्यय :

अधिक (अधिक ही फलु होता है। पत्र: 450),
इउं (इउ), जिउ, तिउजिउ, जिउ का तिउ, सर्न सर्न, नुर्पन (नुर्पन ही परमपद कउं पावना है' (पत्र: 464)

'अतअंतक (<अत्यंत), 'अतअंतक भैमांनु होता है' (पत्र: 315)
'अतअंतक, निरधन' पत्र: 321

घ सादृश्य बोधक अव्यय

आदिक, इउ, एक्ता, ऐमा, एसे ही, सारपा, सरीपा निआई, जैसा तैसा तैसे ।

ङ संयोजक अव्यय

1 अरु 'आगिआकारी अर गुलामु होवै । पूजारी अर दास होवै पत्र 493
'सजाइ अर दडु' पत्र 496
'वहु दइआ रिदे विषे छिमा अर मूरतिवत हो जाती है पत्र 475-76

2 अवरु (< अवर । दूसरा) 'इक अवर वारता है ।' (पत्र 460)
'प्रोजन (प्रयोजन) विना अवर कारजु विषै असकति (आसक्त) न होवै । (पत्र 355)
'किसी अवर अरथी के नमिति मागि लेवै ।' (पत्र 410)

3 ता ते 'ता ते भै का कारणु इही बूझ है ।' (पत्र 425)
'ता ते हे जगिआसी जनहु ।' (पत्र 461)
'ता ते कारण विना जिस पर वहु दिआलु हुआ है । पत्र 441)
'ता ते धरमी अर पापी दोना पराधीन है ।' (पत्र 44)

4 जदप तउ

(यद्यपि, तो भी) 'जदप उस कउ दिआल (दियालु) क्रिपाल कहते हैं । तउ भी उसका सुध सरूप क्रिपा अर क्रोध ते परे हैं । (पत्र 438) ।
'जदप कोई पलु घडी मे सुचेत (सावधान) होता है । पर तउ भी सीघ्र ही अचेतु हो जाता है ।' (पत्र 439)

जदप पर,

'जदप उसका डरना अवस्था के निमिति नहीं होता । पर सिध की प्रसनता अरु अपनी निवलता कउ देखि करि कपाइमान होता है ।' (पत्र 438)

'जदप सनजन सरब, पापहु ते निरलेप हैं । पर महाराजि के ईस्वरज का भै उन कउ भी होता है ।' (पत्र 438)

5—अधिकतउ

(अधिकतर) 'ऊहा (स्वर्ग मे) अधिक तउ निरधन दिसट आवते थे ।' (पत्र 430)

विविध अव्यय

1—ही :

अवधारणार्थक 'ही' तथा 'भी' का प्रचुर प्रयोग पारसभाग में पाया जाता है :

'जाणिआ ही नही' ।

'अवसमेव मांगणा ही होवै' ।

'कुछ ही नही होवैगा' ।

'एक सारपा ही भजनु करण विसेप है' ।

'तीन ही पदारथ इस कउं चाहीते हैं' ।

2—भी

'तब नतकारु भी न करै' ।

'भगवंत की अवगिआ भी न करी थी' ।

'सेवा करिके भी उस कउं रिझाइआ न था' ।

3—प्रसिध :

'प्रत्यक्ष' (सामने) के अर्थ में 'प्रसिध' अव्यय का प्रयोग पारसभाग की भापा में उपलब्ध होता हैं :.

'प्रसिध जांचना न करे' ।

'जब प्रसिध मांगे तब एक पुरप की ओर द्रिसटी न करै' ।

(पत्र : 459)

'अवर अरथी के नमति प्रसिध ही मांगि लेवै' ।

4—त्राह-त्राह :

'त्राहि-त्राहि' का अव्यय रूप में प्रयोग पारसभाग की विशेपता है :

'मुप ते त्रह त्राह करने लगता है' ।

'भगवंत के संमुप त्राह-त्राह करने लगता है' ।

फारसी मूलक अव्ययों में हर (हरि गांव, हरि नगरि), मुतलक, दिरानी उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार मत (कही) विदक, रंचक आदि पंजाबी (देशज) अव्यय पारसभाग में मिलते है।

द्विरुक्त शब्द

प्राय: सभी आधुनिक आर्य भापाओं में 'द्विरुक्त' शब्द रखने की एक

व्यापक प्रवृत्ति पाई जाती है। 'हिन्दी शब्द सागर' मे इस प्रवृत्ति को अनुकरणमूलक बताया गया है। परन्तु इन सभी शब्दो मे अनुकरण का भाव सर्वत्र विद्यमान नही है। मूलत इस प्रवृत्ति का उद्देश्य अतिशय, आवृत्ति आदि की सूचना देना था। 'कारम् कारम्' जैसे सस्कृत के प्रयोगों मे इस प्रवृत्ति का मूल खोजा जा सकता है। सस्कृत व्याकरण के लेखकों ने इस प्रवृत्ति को 'आम्रेडित' नाम दिया था। 'आ+म्रेड्+क्त। √'म्रेड (√म्रेडि) धातु का अर्थ 'उन्मत्त वचन' किया गया है। देखिए 'वाचस्पत्यम्' तथा 'शब्द कल्पद्रुम'। कैलाग ने भी 'ग्रामर आफ हिन्दी लैंग्वेज' मे कुछ द्विरुक्त शब्द सदर्भित किए हैं (पृष्ठ 492-6)।

वस्तुत ये शब्द न तो निरर्थक ही हैं और न ही मात्र 'अनुकरण-सूचक 'शैली' के साथ इन द्विरुक्त शब्दों का एकमात्र सबध है।

सामान्य वार्तालाप मे भी द्विरुक्त शब्द प्राय प्रयुक्त होते हैं। वहा भी इन्हे केवल निरर्थक मान लेना उचित नहीं है। किसी शब्द विशेष के पूरे परिवेश की ओर सकेत करते ये शब्द अपनी लाक्षणिकता, अपनी लघुता तथा अनुरणनात्मकता के कारण हमारी आधुनिक भाषाओ के अभिन्न अग बन चुके हैं।

इन द्विरुक्त शब्दों का प्रयोग विभिन्न भाषाओ-बोलियों-मे अपनी-अपनी आवश्यकता प्रकृति तथा अपने उच्चारण सौकर्य को ध्यान मे रखकर होता हैं। पजाबी-हिन्दी के इन द्विरुक्त शब्दों की तुलना से यह बात स्पष्ट हो सकती है

पजाबी	हिन्दी (मानक)
रोटी-राटी, रोटी-रूटी, रोटी शोटी (पोठोहारी),	रोटी-वोटी
पाणी-धाणी, पाणी-शाणी (पश्चिमी लहदी),	पानी-वानी
दाल-दूल (ल्ह),	दाल-वाल
आदमी-ऊदमी, चाह्-चू, चाह्-शाह, (लहदी), चाय।	आदमी-वादमी, लोग-बाग चाय-वाय

वस्तुत इन द्विरुक्त शब्दों का पूरा इतिहास तथा भाषाओं-बोलियो-की अभिव्यक्ति क्षमता को इनका योगदान एक व्यापक अनुसधान का मुखापेक्षी है।

पारसभाग मे प्रयुक्त साहित्यिक स्तर के कुछ द्विरुक्त शब्द ये है :

आदर-भाउ, राजा-राउ रासि-पूंजी, सरमु-करम (श्रम-कर्म) ऐल-फैल, गाली-गुफ्ता, गाली-गलौच (गाली+वाच्, क्), पग-भला, (अच्छा भला), षान-सुलतान, षुसी-आनंद, पेलु तमासा, पेवी, मजूरी-मनकति, साग-सगऊती (< शाक पत्र), गति-मति, चरचा-वपिआनु, चिराग-दीवे (<दीप/पजाबी) जलि-थलि, टहल-किरति, डिगना-डोलना, तट-तीरथ, दाणा-चोगा, दुआ-सलाम, धकि-धुकि (किसी तरह धकिया कर), नग-भुख (नग्न<नंग, भूख), पति-सोभा (पत: मान: शोभा) सुघड़-चतुर, मैल-परवति पति-पतिस्ठा (मान प्रतिष्ठा। 'पत' सभवत: 'पद' का विकास है। पत रखना जैसे मुहावरे प्रचलित है।)

द्विरुक्ति-संकर

संस्कृत-फारसी . मसु-सिआही (मसी+स्याही) वीना-सआणा।

'गाली गुफ्ता' के अतिरिक्त 'ऐल-फैल' जैसे द्विरुक्त शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

वाक्य-संरचना

पारसभाग की वाक्य संरचना मूलत· खडी बोली की सरल वाक्य संरचना के अनुकूल है। एक ही क्रिया पर आश्रित संज्ञा-विशेषण आदि व्याकरणिक सामग्री का इकहरा विधान, परसर्गो, कृदन्त रूपो तथा अव्ययों की अनन्त सुषमा एवं स्पष्टतम, संदेहातीत तथा सशक्त संप्रेषणीयता जैसे तत्व पारसभाग की वाक्य संरचना की एक विशिष्ट पहचान बनाते हैं। इन तत्वों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है :

1. इकहरा विधान : आधुनिक आर्य भाषाएं विगत दो सहस्र वर्षो से अपनी प्राचीन संश्लिष्ट पद्धति को छोड़कर नवीन तथा विश्लिष्ट भाषाई रूप ग्रहण करती आ रही है। आज संभवत: इन भाषाओ की विश्लिष्ट पद्धति अपने चरम बिंदु पर है। पारसभाग चूंकि लगभग दो अढाई सौ वर्ष पूर्व की रचना है, अत: इसकी भाषा मे कही-कही प्राचीन भाषाई संश्लिष्ट पद्धति भी पाई जाती है। संभवत. इस प्राचीन संश्लिष्टता को उत्तरोत्तर विश्लिष्ट रूप दिया जाता रहा है। फिर भी यत्र-तत्र पारसभाग की भाषा मे संश्लिष्ट रूपों के अवशेष प्राय: मिल जाते है।

आवश्यक प्रमाण तथा प्राचीनतम पाण्डुलिपियों के अभाव मे पारसभाग की भाषा (वाक्य संरचना) के सम्बन्ध मे अभी अंतिम रूप से कुछ कहना संभव नहीं है। फिर भी अन्तरिम रूप से उपलब्ध प्रमाण तथा हस्तलिखित सामग्री के

आधार पर कहा जा सकता है कि पारसभाग की वाक्य संरचना का मूलाधार है, व्याकरणिक सामग्री का इकहरा विधान। पारसभाग की वाक्य सरचना सरल वाक्य अर्थात् एक ही क्रिया-कर्ता कर्म-विशेषण विधान की सरलतम पद्धति का अनुसरण करती है। वाक्य मे उपवाक्य एकाधिक विशेषण तथा क्रियापदो मे सहायक क्रिया एव पूर्वकालिक क्रिया रूपो की योजना अपवाद रूप से ही कहीं-कही मिलती है। इस इकहरे विधान के कुछ उदाहरण इस प्रकार दिए जा सकते हैं

'सरधा की उतपति का मारगु प्रतीति (विश्वास) है,

तुम कउ करतत विष उही सावधान करती है',

'अगिआसी जन कउ इहु वारता परवानु नही',

'परि इहा भी मैं एक द्रिस्टात प्रगटि करता हौं'

'सरब स्रिस्ट (सृष्टि) अरु सकल पदारथ भगवत ने कारज बिना उतपनि नही कीए।

2 परसग बहुलता विभिन्न कारकीय परसर्गों की छटा इन अवतरणा मे लक्षणीय है

'तिअ ग (तोबह) ते जागे ही जगिआसी (जिज्ञासु) के चित विषे धरम का प्रकासु प्रगट होना है।'

'ते, ('से') 'के', का', 'विषे' का प्रयोग इस अवतरण मे लक्षणीय है।

'तवि सदीक ने भैमान होइकै पूछिआ जो हे साइ के पिआरे ऐसे डड (दड) ते किउ करि छूटीए' ।

'मैं भगवति की बेपरवाही कउ जाणिआ है। ('ने का अभाव लक्षणीय)

'महाराजि का आस्रा भी करै। पर करणीव (करणीय) करमहु ते रहतु भी न होवै'। इस वाक्य मे का' के साथ-साथ सश्लिष्ट 'करमहु' की एकत्र उपस्थिति पारसभाग की भाषा की प्राचीनता-सक्राति कालीनता-का प्रमाण है।

3 कृदत रूपों की विविधता —प्राचीन 'मर्वति' आदि सश्लिष्ट क्रियापदो के स्थान पर नव-विकसित कृदत रूपों के माध्यम से क्रिया पदा की सूचना पारसभाग मे दी गई है

'जो पुरखु अपने मन की वासना अनुसार वरतता है अरु भगवत की दइआ (दया) का आसरा राखता है' (राखता + है)।

'जो पुरखु नरकहु का बीजु बावै अरु सुपहु की आसा राखै। सो महामूरखु है'।

संभावना मूलक कृदन्त रूपों (वोवै, रापै) तथा 'है' के विधान से क्रियापदों की निर्मिति इस अवतरण में द्रष्टव्य हैं ।

'ऊहां (स्वर्ग में) अधिक तउ निरधान द्रिस्ट आवते थे', इस प्रकार के भूतकालिक कृदन्त प्रत्यय पारसभाग में प्रायः मिल जाते हैं ।

'धनवांन जतन करिकै स्वर्ग कउं पावहिगे । अरु निरधन सुपैन ही सुप कउं प्रापत होवहिगे' ।

भविष्यकालिक बहुवचनी कृदन्त रूपों की यह व्यवस्था लक्षणीय है ।

4 अव्यय प्रचुरता :

संयोजक अव्यय :

'अरु अंनया कारज विपै द्रिड होंणे करिकै मनमुपु होता है अरु भगवंत की आगिआ का समझणा भी संपूरन विदिआ विना नही होता' ।

इस अवतरण में अरु-अरु के प्रयोग से दो विचारों का परस्पर संयोजन किया गया है ।

'भगवंत के निकटि ऐसा पदारथु कोउ नहीं । जो न होवै । तां ते सभी किसी कउं सुन्दर अरु संपूरन (प्रभु ने) वनाइआ है' । 'जो, तां, ते' के प्रयोग से जटिल वाक्य बनाया गया है ।

'सो जदप ऐसे भी हैं । पर तदप समुन्द्र विपे ऐसे जीव उतपति कीए हैं' । 'जदप' 'तदप' पारसभाग में अनेकशः प्रयुक्त संयोजक अव्यय हैं ।

'पर जब तूं उनहु नेत्रहु करिकै पर इसत्री की ओरि देपहि । तब इह तेरा देपणा ही भगवंत के पदारथ (नेत्र) की मनुमुपी होती हैं' ।

संयोजक 'पर' तथा विशेपण सूचक 'पर' (इसत्री), 'ओरि', 'ही', इन अव्ययों की योजना इस अवतरण में पाई जाती है ।

5 स्पष्ट अभिव्यक्ति :

अपने कथ्य को अधिकाधिक स्पप्ट बनाने की प्रवृत्ति पारसभाग में कहीं भी लक्षित की जा सकती है । उपयुक्त शब्दों का अभाव, मूल तथा अनुवाद में संगति वैठाने का निरंतर संघर्प तथा मध्य-कालीन भाषा की सीमाएं पारसभाग की स्पप्टता को कहीं कहीं रोकती-टोकती अवश्य हैं । पर समूचे तौर पर पारसभाग का लेखक (अनुवादक) अपने कथ्य को अपने पाठकों-श्रोताओं-

तक सप्रेषित करने मे सामान्यत सफल हो ही जाता है। ये उदाहरण इस कथन की पुष्टि करते हैं

क 'अचानक ही सभनहु कउ (काल) आनि पकडता है। अरु इस मानुष कउ उसकी कछु चितवनी भी नही होती'।

'खबर' सूचना जैसे शब्दो के अभाव मे भी 'चितवनी' से कथ्य को स्पष्ट करने का प्रयास यहा लक्षित किया जा सकता है।

ख 'सो जब इहु अलपबुधी जीव ऐसे सूषम (सूक्ष्म) वचन सुनते हैं। तब इनकी कछुक पहली प्रतीति भी नष्ट हो जाती है। ता ते भगवत का ही नतकार (निषेध) करने लागते हैं'।

सूक्ष्म विचारो के स्थान पर 'सूषम वचन', श्रद्धा-विश्वास के स्थान पर 'प्रतीति' तथा निषेध या अस्वीकार के स्थान पर 'नतकार' का प्रयोग पारसभाग के लेखक (अनुवादक) की विवशता ही है। पर इस विवशता के साथ-साथ उसने अपने वक्तव्य को पर्याप्त स्पष्ट भी बनाया है।

ग 'बितीत (व्यतीत) हूई वारता विषे भी झठु कदाचित न करै। बहुडि आगे भी झूठा वचनु न करै। अरु मधिकाल विषे भी साचु ही बोलै।

भूत-भविष्य वर्तमान के लिए उपयुक्त शब्दो का अभाव होने पर भी पारसभाग का लेखक 'बितीत-आगे मधिकाल' के द्वारा अपने मतव्य को स्पष्ट कर ही देता है।

घ हजरत मुहम्मद की अपने अनुयायियो के प्रति भविष्यवाणी — 'माइआ (माया शैतान) तुम परि बलु पावैगी। तुम आपस मो (विरुधु) विरोध (शत्रुता) कमावोगे। जो देवते (फरिश्ते) सहाइता करणे वाले हैं। बहु भी उलटे तुम सौं विरुध करहिगे'।

इस्लामी शब्दावली का भारतीयकरण पारसभाग मे कितनी व्यापकता तथा सहजता के साथ हुआ है, इस तथ्य का साक्षात्कार इस अवतरण मे होता है।

ड 'जो भगवतु दुइ देवते मानुष की रषिआ निमति भेजता है। सो बहु एकु देवता मानुष कउ मारगु दिषावता है। अरषु इहु जो उस देवते का प्रकास मानुष विषे प्रगटि होता है। तब उसी प्रकास करिकै करम के फल कउ पछाणता है।

इस अवतरण मे कुर्आन के दो फरिश्तो-किरामन और कातिबीन-की योनि परिवर्तन कर देवता पद प्रदान किया गया है। 'अरषु इहु' और 'तातपरजु इहु'

आदि पदों के प्रयोग से अपने कथ्य को निरंतर स्पष्टता प्रदान करते चलना पारसभाग की भाषाई रीति-नीति जान पड़ती है।

जटिल वाक्य-विन्यास :

एक से अधिक सहायक, अपूर्ण तथा पूर्ण क्रिया पदों, एकाधिक उपवाक्यों. अभिव्यजक विशेषणपदो तथा विभिन्न कोटिक अव्ययो की योजना के द्वारा पारसभाग मे स्थान-स्थान पर जटिल वाक्य भी बनाए गए हैं। यद्यपि पारसभाग की भाषा की इकहरी प्रकृति इस जटिलता को कठिनता से ही झेल पाती है, तथापि मूल (फारसी) वाक्य के जटिल विन्यास के अनुरोध पर एवं मूल के अधिक से अधिक निकट रह पाने की लालसा के कारण कही कही पारसभाग मे जटिल वाक्यो की रचना हुई जान पड़ती है।

इसके अतिरिक्त प्रायः प्रत्येक पाण्डुलिपि मे वाक्य-समाप्ति-सूचक पूर्ण विराम का चिन्ह (।।) 'है' या 'था' से पूर्व लिपिक लगा देते हैं। वाक्य के इकहरे होने का भ्रम पाठक को इस विराम चिह्न से तथा 'अरु' की आवृत्ति से होता है। परंतु वाक्य की आंतरिक संरचना तथा वाक्य के विभिन्न खण्डों की परस्पर गुफित स्थिति से वाक्य विन्यास की जटिलता का बोध होते देर नही लगती।

पारसभाग के कुछ जटिल वाक्य ये हैं :—

1. 'क्रिपणता, अभिमांन, अहंकार, दंभ, ईरषा, क्रोध, अहार की अधिकता अरु विअरथ बोलणां बहुड़ि धन अरु मान की प्रीति अरु अजांणता अरु कठउर मुभाव आदिक विकारहु कउं बीचारु करिकै दूरि कीआ चाहीता है' पत्र : 424

कृपणता आदि ग्यारह विकारों का संबंध 'दूरि कीआ चाहीता है', इस क्रियापद के साथ है। 'बीचारु करिकै' इस अपूर्ण क्रिया का प्रयोग भी इस वाक्य को जटिल बना देता है।

2. 'तां ते चाहिए जो बालक अवसथा ते लेकरि जिस जिस नेम (नियम) ते अचेतु हूआ होवै अथवा दसवंध (आय का दशम अंश। 'दसौंध' प्रचलित रूप) न दीआ होवै अथवा अधिकारी बिना दसवंध दीआ होवै। तब सबनहु का पुनहु चरणु (पुनश्चरण : प्रायश्चित्त) ऐसे करै जो भजन अरु दांन की अधिकता बढ़ावै' पत्र 35।

केन्द्रीय भाव यह है कि भजन-दान की मात्रा बढ़ाकर पूर्वकृत नियम-उल्लंघन का प्रयश्चित्त करे। अनेक विकल्पों (उपवाक्यों) का विधान, छह

क्रियापदो तथा एक अपूर्ण क्रिया के प्रयोग से इस वाक्य को जटिल बनाया गया है।

3 'लघु पापहु का पुनहचरनु इम परकारि करै। जो (कि) जब अधिक बोलिआ होवै। तब मौनि विषे इमथिति रहै। अरु जब असुभ ओरि द्रिसटि करी होवै। तब लजिआ (लज्जा) करकै नेत्रहु कउ मूदि राखै। ऐसे सभनहु विकरमहु विषे विपरजै भाव कउ अगीकारु करै'। पत्र 409

विपर्यय भाव के ग्रहण करने से विकारों का प्रायश्चित्त होता है, इस केन्द्रीय भाव को इस वाक्य मे एकाधिक उपवाक्यो, अपूर्ण क्रियापदो तथा 'अरु' बहुलता के साथ जटिल वाक्य के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

4 'ता ते चाहिऐ जो धन कउ अरथीअहु के अरथ विषे लगावउ अरु जदप मुझ कउ भी इस बसत (वस्तु) की अपेछा अवसमेव है तउ भी चाहीऐ जो पुरषारथु करिकै अपणे अरथ कउ तिआगु करऊ। उत्तम उदारता करिकै अवर जीवहु का अरथु सपूरन करउ' पत्र 524

एकाधिक उपवाक्यो तथा दो अपूर्ण क्रियापदो के प्रयोग से इस वाक्य को जटिल बनाया गया है।

वाक्य सम्बधी इस विवेचन को समाप्त करने से पूर्व यह कह देना आवश्यक जान पडता है कि पारसभाग का वाक्य विन्यास कभी कभी बुरी तरह त्रुटित तथा खडित भी हुआ है। लिंग-भेद, वचन व्यत्यय, अविति तथा उपयुक्त शब्दो का अभाव जैसी त्रुटिया पारसभाग के वाक्य-विन्यास मे पाई जाती हैं

1 लिंगभेद 'लिंग हमारी भाषाओ मे कदाचित सर्वाधिक विवादास्पद तत्व है। दही अच्छी है या अच्छा, 'हाथी आती है या आता है' आदि अनेक स्थानों पर लिंग-व्यवस्था सबधी मतभेद आज भी पाए जाते हैं। पारसभाग के वाक्य विन्यास म लिंग भेद सबधी ये अवतरण उल्लेखनीय हैं।—

क 'पर इह मूरखता अरु अचेतता ही इस मन कउ बडा पटलु हूआ हैं। (पत्र 514)

दो स्त्रीलिंगी भाववाचक सज्ञाओ को पुल्लिंगी क्रिया 'हूआ है' के साथ *रखा गया है। सभवत पुल्लिंगी पटल और उसके पुल्लिंगी विशेषण बडा के* कारण यह लिंग-भेद हुआ है।

ख 'मौनि जिसकी बीचार सजुगति होवै। सो मुझते भी बसेष (विशेष) है' (ईसा वचन पत्र 519) तथा 'मौनि करणी कठिन है' (पत्र 211) आदि

स्थलों पर मौन को स्त्रीलिंग बना दिया गया है। कर्त्ताकारकीय 'इ' (मौनि) के कारण यहां लिंगभेद हुआ जान पड़ता है।

ग 'अनुभव जो आगे कही है' (पत्र: 315),
'ऐसी अनभव रापी है' (पत्र: 537),

घ 'त्रिण सरीर की जीवन रूप है' (पत्र: 532)

ङ 'इसी कारण ते वीचार कउ सरवगुणहु का मूलु अरु कुजी कही है' (पत्र: 522)

आदि वाक्यों मे लिंग भेद खटकता है।

2 वचन व्यत्यय:

जटिल वाक्यों में कही कही वचन व्यत्यय भी पाया जाता है :

(क) 'आंसू जो चलणे लागतीआं है' (लिंग-वचन-व्यत्यय) (पत्र: 444)

(ख) 'जिन कउं चाहीता है तिस कउं न देवै'। पत्र: 502
'जिनका संबंध 'तिन' के साथ होना चाहिए।

(ग) 'वहु कहणे लागे' (पत्र : 152)
एक वचनी कर्ता के लिए कही-कही बहुवचनी क्रिया रूप प्रयुक्त हुए हैं। आदरार्थक बहुवचन होने की स्थिति में इस दोष का परिहार हो सकता है।

3. अन्विति अभाव

वाक्य के विभिन्न घटकों में अन्विति का अभाव पारसभाग के वाक्य विन्यास को कहीं कही शिथिल तथा सदोष बना देता है। कुछ उदाहरण :

(क) 'तिसने उनका तिआगु नही कर सकिआ'
(पत्र : 441) 'ने' केसाथ 'सकिआ' अन्वित नही सो सकता। 'वहु नहीं कर सकिआ' अपेक्षित है।
'मैंने भै करिकै उस कउं बुलाइ न सक़िआ' (पत्र: 513)

(ख) 'तब उनहु ने कहा जो तूं किसी की ओरि देषणे लागहि । तवि उसते भी भगवंत कउं अपणी ओरि देषता जांणु' (पत्र : 500)। उसते भी —'अधिक'-अपेक्षित है। विशेषण विशेष्य में वाक्यगत व्यवधान इस वाक्य को सदोष बना देता है।

(ग) 'चित की ब्रित कवहूं इसथित होती है——कवहु विछेपता होती है' (पत्र: 503)।

(घ) 'हे महाराज मैं इस उदर सजमहीण ते अरु अधिक निंद्रा (निद्रा) करने हारे नेत्रहु ते तेरी ही रषिआ (रक्षा) चाहता हों' (पत्र 513)। फारसी वाक्य सरचना के प्रभाव से इस प्रकार के वाक्य दोषपूर्ण हो गए हैं।

(ङ) 'मैं अपणे नेत्रहु कउ रूप की द्रिसटि ते रोकि नही सकता (पत्र 500)।

'की द्रिसटि' के स्थान पर के दशन' अपेक्षित है।

(च) ' इहु पुरपु निवणे (<नम्र) चलणे पडा होणा बैंठणे कउ समरथु होवें' (पत्र 529)।

इस वाक्य मे 'पडे होणे' अपेक्षित है।

फारसी नुमा वाक्य

अन्विति का यह अभाव पारसभाग के फारमी नुमा वाक्यो मे प्राय पाया जाता है

क 'मूलु धरमु का तिआगु है (पत्र 501)।

अर्थात धर्म का मूल त्याग (तौबह) है। इस भाव को पारसभाग के हिन्दी रूपातरकार भी न पकड सके

'यद्यपि मूल धर्म का त्याग है' (लखनऊ सस्करण पारसभाग पृष्ठ 401)।

'पारसमणि' में मूल वाक्य की सगति इस प्रकार लगाई गई है

'धम का मूल यद्यपि त्याग है' (पृष्ठ 603)।

अन्विति के अभाव मे 'मूल धर्म के त्याग' का भ्रम हो सकता है।

ख 'जो मूलु सरव पापहु का माइआ (माया) की प्रीति है' (पत्र 428)। 'सरव पापहु का मूलु' अपेक्षित है।

ग 'जब इस मानुष के रिदै (हृदय) विषे पाप की मनसा होती है द्रिढु (पत्र 478)।

विशेषण (द्रिढ) का पूणत्रिया के पश्चात आना हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नही है।

घ 'वसत्र कउ सुगध लगावणी भी कछु पापु नाहि पर जब आप कउ *बडा जणावणे की मनसा ना होवै' (पत्र 481)।*

यह वाक्य भी हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नही है।

शीर्षक

'वाक्य-अन्विति की सबसे अधिक उपेक्षा पारसभाग के अध्यायों तथा

अध्यायों के अन्तर्गत विभिन्न सर्गों के शीपकों में हुई है :

'अथ प्रगटि करणी उसतति भै की' (पत्र : 435)

'अव प्रगटि करणा रुप भै का' (पत्र: 431)

'अथ प्रगटि करणा भेद भै की अवस्था का' (पत्र : 439) ।

'अथ प्रगटि करणी उसतति अरु अरथु वैराग का' (पत्र : 466) ।

'अथ प्रगट करणा इसका जो तिआगु सरव मानुपहु कउं सरव समै विपै परवांनु है' (पत्र: 211) ।

'दूसरे विभागि विपे निहकामता का सरूप अरु उसतति (<स्तुति) वरनन होवैगी' (पत्र : 485) ।

पंजावी-प्रभाव :

(क) क्रियापद

'थिगरीआं (थिगलियां) लगाईआं थीआं' (पत्र: 468) ।

'वहुते लोक अपणे साथ परचाइ करि' (पत्र : 215) ।

'कारीगरीआं रचीआं हैनि' (पत्र : 256) ।

'वादि (व्यर्थ) ही पड़ा वोलता है' (पत्र: 15) ।

'दुप कउं भुगावता है' (पत्र : 305) ।

'दंभु ही पड़ा करता है' (पत्र : 121) ।

'जान सकीता' 'रपीता' 'कहीता है,' 'चाहीता है,' 'करीता हैं' 'वीजता है', (वोता है) ।

(ख) पंजावी शब्द : (स्वरागम) : असथूल (स्थूल), असथिर, सथिर (स्थिर), असत (अस्थि) असथन, इसथन (स्तन), इसथावर (स्थावर), गिलान (ग्लानि), मनमतीआ ।

(ग) दैनिक वोलचाल (पंजावी शब्द)

अरदास (प्रार्थना), वघिआड़ (<व्याघ्र), सांझीवाल (साझेदार) मुरजीत (<सजीव), नतकार (निपेध) ।

संस्कृत प्रभाव : 'अथ दुतीआ अवकास निरूपते' (पत्र : 525)

वस्तुतः मूल फारसी पुस्तक (कीमिआ) पारमभाग के अनुवादक को अभिभूत किए हुए है । अतः फारसी शब्दावली, फारसी वाक्य विन्यास तथा तदनुकूल शब्दों की वाक्य मे योजना पारसभाग के वाक्य विन्यास की नियति ही जान पड़ती है

निश्चय ही अपनी समस्त भापाई तथा वैचारिक सीमाओं के भीतर रहते

हुए भी पारसभाग के लेखक को सामान्यत वाक्य विन्यास के क्षेत्र मे एक अद्‌भुत सफलता मिली है। अनुवादक की मातृभाषा (पजाबी) का भी अनुवादक पर गम्भीर प्रभाव हैं। पजाबी शब्दावली के अतिरिक्त पजाबी के मुहावरे, विशिष्ट प्रयोग तथा पजाब की आचलिकता जैसे तत्व पारसभाग के समूचे लेखनकर्म मे कहीं भी लक्षित किए जा सकते हैं।

पारसभाग का शब्द भण्डार

भाषाई स्रोत

पारसभाग के भाषाई सामर्थ्य तथा उसके वैभव के विराट रूप का साक्षात्कार पारसभाग के शब्द-भण्डार मे किया जा सकता है। वस्तुत अनेक भाषाई स्रोतों से ली गई विविध कोटिक शब्दावली ने पारसभाग की भाषा को इन्द्रधनुषी रग प्रदान किए हैं।

पारसभाग के शब्द-भण्डार मे मुख्यत

(1) **सस्कृत तथा सस्कृत मूलक शब्दावली**

(2) **अरबी-फारसी शब्दावली, तथा**

(3) **देशज शब्दावली**

का प्राचुर्य एक लक्षणीय तत्व है। जिस प्रकार विचारो के क्षेत्र म पारसभाग का लेखक विभिन्न स्रोतों से सामग्री सकलित करता है, उसी प्रकार भाषा के क्षेत्र मे भी उसकी उदार तथा व्यावहारिक दृष्टि उपयुक्त शब्दावली का चयन अनेक भाषाई स्रोतो से-बिना किसी भेदभाव के-करती चलती है।

एक सूत्रता

पारसभाग मे विभिन्न भाषाई स्रोतो से ली गई शब्दावली के द्वारा भाषा को बहुरगी एक सूत्रता प्रदान करने का एक अनुकरणीय प्रयास किया गया है। यही कारण है कि अरबी-फारसी सस्कृत मूलक तथा देशज शब्दावली अपने-अपने परिवेश से कटकर भी पारसभाग की भाषा के अपने अनुशासन मे ढली हुई है। भाषाई अनुशासन की यह एकसूत्रता पारसभाग की एक लक्षणीय विशेषता है।

पारसभाग मे विभिन्न भाषाई स्रोतों से ली की गई शब्द-सम्पदा का एक सक्षिप्त सा परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है

सस्कृत मूलक शब्दावली

पारसभाग की भाषा का अक्षय स्रोत है सस्कृत। सस्कृत से ली गई शब्दावली पारसभाग के भाषाई अनुशासन मे सरलता से बध जाती है। फलत भाषाई स्रोत की दृष्टि से सस्कृत मूलक शब्दावली का प्रचुर प्रयोग पारसभाग की भाषा की आवश्यकता भी है और भूषा भी।

निश्चय ही गुरुमुखी लिपि की सीमाएं पारसभाग मे प्रयुक्त संस्कृत शब्दावली को लगभग तद्भव रूप दे डालती है। परन्तु अपनी इस विवशता को भी पारसभाग का लेखक (अनुवादक) अपने शब्द-प्रयोग की सरलता, सहजता तथा रुचिरता के माध्यम से कलात्मक रूप देने मे सफल हो जाता है।

(क) संस्कृत मूलक शब्दावली

पारसभाग में उपलब्ध यह संस्कृत मूलक तथा देशज शब्दसम्पदा लक्षणीय है :

अ

अंतरिजामी (<अन्तर्यामी), अनादि, अतिअंतक, अनिस्ट, असभव, असचरज, अंनथा (<अन्यथा), असंख, अरोगता, अजाण (अनजान), अलप, अधिक, अधीन अनुसार, अक्रितघण (कृतघ्न : स्वरागम) अस्थिर (<स्थिर: स्वरागम), असत (<अस्थि), अवगिआ (<अवज्ञा), असंभव, अउगण (<अवगुण), अधोगति, अकसमात (<अकस्मात्), अधीरज (<अधैर्य), असथूल (<स्थूल), अछरू (<अक्षर), अमित, अमुक, असीस (<आशीर्वाद), अजापाली (<अजापालक : गडरिया), अंगीकार, अचाहरूप, अचेतता, असकति (<आसक्ति), ।

आ

आइआ (आया), आगिआ (<आज्ञा), आगिआकारी, आरबला (<आयुर्बल : आयु), आगे, आलसी ।

इ

इक, इकत्र (<एकत्र) इकात (<एकात) इच्छा, इच्छित, इतर (अन्य), इस्ट, इसथूल, इसथित (<स्थित), इसथिति, इसथिर (<स्थिर) इसथावर (<स्थावर), इसनांन (<स्नान), इसथन (स्तन) ।

उ

उदिआन (<उद्यान), उनमांन (<अनुमान), उपकार, उत्तम, उदारता, उसतुत (<स्तुति), उतपति, उनमत्त ।

ई

ईस्वरज (<ऐश्वर्य) ।

ए

एक (इक : सामान्यत: प्रयुक्त), एकला (अकेला) ।

ऐ

ऐसा (विरल प्रयोग 'अइसा' सामान्यत प्रयुक्त)।

औ

और, औढणा, औला (ओला उपलवृष्टि। आवला औला भी सभावित)।

अ

अत।

क

कपणा (कापना), कउतक, कउ, कउण (क्वन) कटि, कभो, कठउर-कठउड, (<कठोर), कछु, कही, करणीव (करणीय), करणेहारा, काल, काम, काठ, कुमारग, कुटल (कुटिल), क्रिपाल, क्रोप (<कोप), किआ (क्या), कीरती, कीनी, कीआ (सम्बन्धकारकी बहुवचन। स्त्रीलिग, पजाबी प्रभाव) कुटी, क्रम (कम), (<कृपा) कोठडी।

ख

लिपि चिन्ह 'ष।

षरा, षट्टा, षसटम (<षष्ठ), षाणा, षिण (क्षण), षीण (<क्षीण), षेल, षोल, षेचना (आकृष्ट करना)।

ग

गढ, गमन, गवार, गडा (ओला पजाबी), गचकारी (मकान आदि की पक्की चिनाई), गुहज (<गुह्य), गोडिअहु (गोडे घुटने), गोदरी (गुदडी)।

घ

घर, घडी, घेरा, घोडा (घोरा)।

च

चचल, चपल, चरवाल (चरवाहा), चार, चारणेहारा (चराने वाला), चक्रवरती, चउथी, चित्त, चित्रगुपत, चोरना, चूरा, चित्रशाला, चोर।

छ

छठवी, छल, छाल, छूत, छोड।

ज

जल, जवि जब, जइसे, जडता, जगिआसी, जाणना, जाणा, जाग्रत, जिउ, जीव-जीउ, जेवरा (रस्सा जेवरी) जो।

झ

झटि (झट), झिडी (झाडी), झूठ।

ट

टक, टोक ।

ठ

ठउर (ठौर), ठग, ठगउरी (ठगी: ठगौरी: ब्रज), ठठेरा, ठाकुर ।

ड

डारना (डालना) ।

ढ

ढंग, ढोल ।

त

तरना, तपत, तामसी, तारामण्डल, तीरथ, तेल, तोल, त्रास, त्राह-त्राह (त्राहि), त्रिसा (<तृषा) ।

थ

थण, थंम (<स्तंभ), थरहर, थाली, थान, थी, थे, थोड़ा ।

द

दंम, दइआ (दया), दांन, दीरघ, दरपणवत, द्रिस्टी, द्रिढ़, द्रिसटांत, दुआर, दुषत (दुखी), दुरलंभता, दुरलंभ (<दुर्लभ) दुरभिष (<दुर्भिक्ष), दुस्ट ।

ध

धंन (धन-धान्य), धाम, धोव (धो), ध्रिकार (धिक्कार), धिआउ (अध्याय) ।

न

न, ना, नही, नाहीं, नमिति (निमित्त), निरसंदेह (<निःसंदेह), नपुंसक, (<निफूसक) नतकारू (नकार-निषेध), नासता (नाश+ता), नाम (नां: पंजाबी), नीचता, निरलेपता, निंद (निंद्य), निहकाम, निलज, निरबलता, नेम (नियम) ।

प

परमेसुर, पटल, पडोसी, पसचाताप, पारावार, पुरातन, पुराणां, पुरषारथ, पुजारी, प्रति, प्रतबिंब, प्रफुलत (प्रफुल्लित), प्रबल, प्रजंत (पर्यन्त), प्रसिद्ध, प्रीतवांन, प्रीतम, प्रोजन (प्रयोजन) ।

ब

बंद (बंध), बहुत-बहुते, बांवरा, बाहज-बाहीज (<बाह्य), बाटमारे (बटमार: डाकू), बिरला, बिसमै (विस्मय), बिसमाद, बिसमादता, बिसथार, बिस्राम, बिराने, (बेगाने), बिछेप (<विक्षेप) ब्रिध-बिरध (<वृद्ध), ब्रिछ, बुराई, बेमुष (<विमुख), बेमुखाई, बेचणा, बोलणा ।

भ

भगवत, भजन, भला, भूषण, भूपत, भैमान, भ्रमादिक, भोग।

म

मदबुधी, मदर, मन, मलीन, मह्रा (महा), मसाण (<श्मशान), मत, मधि (<मध्य), माण(मान) मारग, मिति, मिसट (<मिष्ट), म्रिजाद, म्रित (<मृत्यु), मोल।

य

'य' कारादि शब्द प्राय 'ज' कारादि बन गए है। जम (<यम), जस (<यश)।

र

रचक, राजा, राजे, राजनीत, रूपा (चादी)।

ल

लपट, लाभदाइक, लेपु, लेषण (लेखनी), लोक।

व

(व — ब) बरनन, बिचित्र, बिचल (भटकन), बिसमै, बितरेक(<व्यतिरेक), बिसथार, बिरक्त (<विरक्त), बिरस (नीरस), बिपरजै (<विपर्यय)।

स

सकुचि (<सकोच), ससैवान (<सशय), सजुगत, सहस्र, समान, सहकाम (<सकाम), समग्री, सनबधु, साषा (शाखा साखिया), साधना, सातकी (<सात्विक), सुभाउ, सिघासन।

ह

हस, हलाहल, हासी (हसी), हिरन (हरिण), ही, हेतू (हेतु हितू)।

(ख) अरबी फारसी मूलक शब्दावली

अ

अदल, अमर (हुक्म)।

क

करतूत (करतत), करतूति। कुदरति, कुरवान।

ग

गुलामु।

ट

टहलूआ।

त

तराजू, तबर (तेज गडासा, लकडी काटने का एक खास औजार), तोसा

तोसह : सफर खर्चा) तोबरा (चमड़े का थैला : इसमें घोड़े को दाना खिलाया जाता है)।

द

दिवार, दाव, दावा।

प

परदा (पड़दा)।

फ

फजूली।

ब

बपसना, बेकार, बंगुला (बंगला : 'अपने ग्रिह ऊपरि ऊंचा बंगुला बनाइआ था' पत्र : 468)।

म

महीन, मनसा (मन्शा), मजूरी (मजदूरी), मुहलत।

ल

लसकरु।

स

सराई (सराय) सउदागरी, सबर, सुकर, सिगरफु, सैतान।

ह

हिसाब।

ग पंजाबी शब्दावली

त

तुरत (तुरंत)

प

परचना (मन लगना)।

ब

बघिआड़ (< व्याघ्रः बाघ)।

स

सांझीवाल, सुरजीत, सतवां (सातवां)।

घ सानुनासिक शब्दावली

पारसभाग की भाषा में निरनुनासिक शब्दों को सानुनासिक रूप में लिखने की एक व्यापक प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। पारसभाग की प्रायः सभी पाण्डुलिपियों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है।

वर्ग के पंचम वर्णों के योग में तथा शब्दों की मध्य तथा अंत्य स्थितियों में सानुनासिक ध्वनियां मिलती हैं। कुछ सानुनासिक शब्द ये हैं :

मध्य अठानवें कदाचित (कदाचित), आनि (अन्य), नाना, काम, जाण जाण, मानुख, पुन (पुण्य), तू (<त्वम तू), (धन <धन्य) हाणी (हानि), माण (मान), दान, अतरिजामी, सगराद (सङ्क्रान्ति) भैवान (भयमान), पुराणा (पुराना) महामूरख, गिलान (ग्लानि), प्रसन (प्रसन्न), दुलंभ (दुलभ), सातिक (<सात्विक), अगिआनता, सहस्र, सुआमी, निंद्रा, प्रमाणु, धिआन, पाण, सरबस (सर्वस्व)।

अत महा (महान), इतना, डरना, रसना, साधना, वासना, तिजागणा, कउ, जिवें (पजाबी जैसे)।

उच्चारण के स्तर पर इतनी सानुनासिकता कदाचित् सभव नहीं हैं। लिपि के स्तर पर भी इतनी सानुनासिकता एक विलक्षण प्रवृत्ति कही जा सकती है।

पारसभाग की भाषा मे प्रयुक्त इस व्यापक शब्दावली को उद्धृत करने का एकमात्र उद्देश्य यह है कि इस शब्दावली के अतराल म प्रतिबिंबित मानवीय ज्ञान-विज्ञान की अद्भुत तथा विस्मयकारी झाकी प्रस्तुत की जा सके। वस्तुत अपनी दृष्टि की परिधि तथा समसामयिक ज्ञान की सीमाओ के भीतर रहते हुए भी पारसभाग अपनी ज्ञानदर्शिता का अदभुत निदर्शन प्रस्तुत करता है, इस तथ्य की पुष्टि पारसभाग के इस शब्द भडार के माध्यम से होती है।

परिशिष्ट

चित्र फलक

परिशिष्ट

लिपि विकास

चित्र फलक 1-2 (इस चित्र फलक मे 'अ का' — अशोक कालीन 'गु का' —गुप्तकालीन मे दो सक्षिप्तिया प्रयुक्त हुई हैं।)

भारत की प्राचीनतम लिपि (ब्राह्मी। अशोक कालीन ब्राह्मी) से 18वी शती तक विकसित लिपियो का तुलनात्मक चित्र (दो फलको पर) दिया जा रहा है। 12वी से 16वी शती तक विकसित नागरी, गुरमुखी आदि लिपिया अपनी प्राचीनतम शारदा आदि लिपियो के स्रोत से विकसित हुई हैं, इस रेखाचित्र से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है।

चित्र फलक 3

इस चित्र फलक पर नागरी तथा गुरुमुखी म 'मात्रा' विकास-क्रम दिखाया गया है। गुरमुखी लिपि की उ, ऊ, ओ तथा औ की मात्राए 'कुटिल' तथा 'शारदा' लिपियो मे प्रयुक्त मात्राओ से विकसित जान पडती हैं।

चित्र फलक 4

इस चित्र फलक पर उत्तरी भारत की लिपियो मे प्रयुक्त अको का क्रमिक इतिहास-विकास निर्दिष्ट किया गया है।

ताडपत्रीय पाण्डुलिपियाँ

चित्र फलक 5

पुष्पवती कथा (लिपिकाल, 1191 विक्रमी सवत)

इस पाण्डुलिपि के चार पत्रों के बीचोबीच एक सुराख दिखाई दे रहा है। इसमे से एक 'सूत्र' (डोरा) डाल कर दोनो ओर 'ग्रथि' (गाठ) लगा दी जाती थी। इसी ग्रथि के कारण 'ग्रथ' नाम प्रचलित होने की सभावना है।

चित्र फलक 6

इस फलक मे दो ताडपत्रीय पाण्डुलिपियों के चित्र हैं :

1. 'कुमार भूपाल' के चित्र सहित एक ताडपत्रीय पाण्डुलिपि के दो पत्र (क ख लिपिकाल : 1294 बि.)

2. 'सारङ्गदेव' के राज्यकाल में लिखित एक सचित्र ताडपत्रीय प्रति का एक पत्र (ग)

चित्र फलक 7

'निशीथ चूर्णिका' की सचित्र प्रति । पत्र के बीचों बीच जिन भगवान का चित्र है । (लिपिकाल : विक्रमी संवत् 1182 क)

'निशीथ चूर्णिका' की एक अन्य ताड़पत्रीय सचित्र प्रति (लिपिकाल : 1184 वि० सं० : ख)

कागज़ पर लिखी पांडुलिपियां

चित्र फलक 8

लोरिक चन्दा (चन्दायन) की एक सचित्र प्रति (लिपिकाल : 1540 संवत्) । एक लोक कथा पर आधारित रचना ।

चित्र फलक 9

सचित्र 'मधुमालती' का 'मैनासत प्रसंग' ।

चित्र फलक 10-11

'पारसभाग' का 'ततकरा' (विषयसूची) दो पत्र । संभवत: अठाहरवीं शती के छठे-सातवें दशक में प्रतिलिपित रचना ।

चित्र फलक 12

'पारस भाग' का प्रथम पत्र ।

चित्र फलक 13

पारस भाग के इस पत्र की अन्तिम पंक्ति में 'भगवंत' का 'वं' लिखते समय भ्रान्तिवश छूट गया। लिपिक ने 'ग' के ऊपर '+' चिन्ह लगाकर पंक्ति के नीचे 'वं' लिखा है। संशोधन की यह पद्धति द्रष्टव्य है । खेद है कि 'ब्लाक' में इस पद्धति को ठीक से उभारा नहीं जा सका ।

चित्र फलक 14

'पारसभाग' के इस पत्र (426) की नौवीं पंक्ति में 'परलोक के' इस पद के पश्चात् पाठ छूट गया है। लिपिक ने '+' चिन्ह लगाकर बाईं ओर—हाशिए से बाहर—त्रुटित पाठ लिखा है।

चित्र फलक 15

'पारस भाग' के इस पत्र (467) की 9वी पंक्ति मे 'एक ही वार अहार' के पश्चात् पाठ छूट गया। लिपिक ने 'अहार' के ऊपर नीचे—दोनो ओर—'+ +' दो चिह्न बनाकर हाशिए के बाहर दाईं ओर एक पंक्ति लिखी है। पत्रांक 467 हाशिए से बाहर पत्र की पहली पंक्ति के अंतिम अक्षर से सटा कर लिखा गया है।

चित्र फलक 16

पारसभाग के इस पत्र की दूसरी पंक्ति मे 'किसी' के पश्चात् पाठ छूट गया है। इस शब्द के ऊपर नीचे दोनो ओर + + चिह्न लगाकर तथा एक रंगीन वक्र रेखा के साथ पत्र के बाईं ओर एक पंक्ति लिखी है।

चित्र फलक 17— क, ख

'अ (इ) खबार डेवढी का'

महाराजा रणजीत सिंह के लाहौर दरबार की गुप्त सूचनाएं 'फुलकियां' आदि रियासतो और ईस्ट इंडिया कंपनी के गुप्तचर नियमपूर्वक 15-15 दिन के बाद भेजा करते थे। इन गुप्तचर सूचनाओं का एक विशाल संकलन 'स्टेट लाइब्रेरी', पटियाला मे है।

'क' पत्र पर मार्च 14, 1831 (ई) की तारीख है।

'ख' पत्र पर मार्च 11, 1831 (ई) की तारीख है।

1 'अखबार डेवढ़ी' का किसी गुप्तचर द्वारा महाराजा पटियाला को भेजी गई महाराजा रणजीत सिंह की दैनिक गतिविधियों तथा लाहौर दरबार से संबंधित विविध सूचनाओ का यह संकलन सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला मे क्रमांक 771 के अंतर्गत सुरक्षित है। इस संकलन मे $6 \times \frac{1}{2}'' \times 10 \times \frac{1}{2}''$ आकार के 146 पत्र हैं। इस संकलन की 'नकुली' 7 तथा 8 के चित्र यहां दिए जा रहे हैं।

इन 'अखबारो' का राजनीति कूटनीति तथा दूतकारिता की दृष्टि से बहुत अधिक महत्व हैं। भाषा—खडी बोली गद्य—के विकास की दृष्टि से भी ये

'अपवार' वहुत मूल्यवान हैं। इन 'अपवारों' की विपयवस्तु, पद्धति तथा भाषागत ये विशेपताएं उल्लेखनीय है :

1. इन पत्रों में 'पाठ' (इबारत : मजमून) को विपय वस्तु की दृष्टि से अनुच्छेदो मे विभक्त किया गया है। पहले अनुच्छेद में 'अपवार' की लाहौर से रवानगी की तारीखें (ईसवी सन तथा विक्रम संवत) के अनुसार दी गई है। दूसरे अनुच्छेद मे 'पवरों' का विवरण दिया गया है।

विपय वस्तु में इस प्रकार का विभाजन प्राचीन रचनाओं में प्राय: नही मिलता।

2. भाषा में फारसी के अनेक शब्दों के अतिरिक्त वाक्य-विन्यास पर भी फारसी प्रभाव वहुत गहरा है।

3. अंग्रेजी के 'करनैल' तथा फ्रैंच भाषा के 'कुमेदान' (कमांडेंट) आदि शब्दों का प्रयोग भी इन अखवारों मे हुआ है।

4. मूल खवरें लाहौर से फारसी भाषा मे आती थीं। फिर पटियाला में इन्हें "गुरमुखी भाषा" का रूप दिया जाता था।[2]

चित्रफलक का नागरी रूपांतर

'पवर:'

१ओं सतिगुर प्रसादि

'संकुली 7'। इपवार सिंघ साहिब रणजीत सिंघ वहादर की डेवढ़ी का। 11वी मारच सन 1831 ईसवी। चैत वदी 11 इकादसी संमत 1887 से तेरवी 13 मारच सन वोही (1831) चेत वदी 13 तिरोदसी समत 1887 सनीचर वार तलक तीन दिन की।

'11गिआरवी मारच चैत वदी 11इकादसी सुकरवार मकाम लाहौर। सवेरे ही आप छोटे राम के वाग में सोवते से उठे[1]। जरूरी हाजतों से फरागत हासल करी। प्रसादि छकणे के पीछे विचोवे (?) मं जलूस फरमाइआ[2]। हाशिए पर :

"विसाप वदी 12 दुआदसी समत 1888 सनीचर वार लाहौर की आमद

2 इस अपवार के विशेप विवरण के लिए देखिए 'गुरमुखी लिपि में हिन्दी गद्य' डॉ० राजगुरु . पृष्ठ : 171—180

1. सोकर उठे। प्रयोग की प्राचीनता लक्षणीय है।

2. विराजमान हुए। दरवारी आदाव के अनुरूप शब्द-प्रयोग।

फारसी इपबार के परचो की येह् गुरमुखी भापा पटियाले मे करी"

'सकुली 8 लाहौर'

१ओ सतिगुरू प्रसादि

सकुली 8। इपवार सिंघ साहिब रणजीत सिंग बहादर की डेवढी का। तारीख 14 चौधवी मारच सन ईसवी 1831। अठारा सउ इकतीस चेत वदी 14 चौदस से लगाकर 19 उनीसवी मारच सन ईसवी वोही। चेत सुदी 4 चौथ समत 1888 अठार सौ अासीए तलक छ दिन की पबर।"

"14 चौधवी मारच चत वदी 14चौदस मुकाम लाहौर एक सुका[3] मोती-राम दिवान अरू करनैल गुलाब सिंघ के नाम इस मजूमन का रवाना कीआ कि तुम जलधर मे उतरे रहो जिस वपत[4] सरदार हरीसिंघ नलूआ वहा पहुचे उस वपत सभ मिल——"

हाशिए पर

'विसाप वदी 14 सोमवार समत 1888 लाहौर की आमद इपबार के परचो से येह् गुरमुखी भापा पटिआले मे करी' (अत मे शायद दस्तखत हैं)

सकुली 8 के साथ सलग्न 'पबर'

'स्रीरामदास पुर का वासी आन कर हाजर हूआ अरू पाच रपैये नजर गुजराने अर येह् अरज करी कि बदा सरकार के हुकम मूजब आन कर हाजर हूआ है। फरमाइआ कि बहुत अच्छा कीआ। फिर फतेदीन पा कसूरीए ने अरज करी कि सरकार पचीस हजार रुपय नजराना लेवै अर कुतुबदीन पा कसूरीए से बदे को जागीर के मकान वणा कर देवैं'

'सुनकर फरमाइआ कि समझ कर जवाब दीआ जावैगा। फिर भाई राम सिंह को फरमाइआ कि गोबिंद जस कीआ अरजीआ पिलवत मे सुनाइआ करो। अरू मतावसिंघ को हुकम हूआ कि कवाइदा सताबि साथि सौप ले ओ। साह्ब फरासीस[1] की साथ की पलटनो की कुमेदानी[2] का ओह्दा तुमारे को दीआ

---

3 रुक्का। चिट। पर्ची।

4 वक्त का लाकोच्चरित रूप।

1, फ्रेंच जनरल 'वेंतुरा' की ओर सकेत है।

2 अग्रेजी 'कमाडेंट' का फ्रेंच रूप। 'कुमेदान' एक परिवार के साथ भी जुड़ा चला आ रहा है।

जावैगा। उसने अरज करी कि वहुत खूब। फिर दुपहर के नजीक मुजरई[3] रुषसत होकर वाहर आए। आपने आराम फरमाया। तीसरे पहर आगे अफीम छकी। घोड़े उपर सवार होकर जवालासिंघ किराणीए के वाग को तसरीफ ले गए। ऊहां जाकर मसनंद की ओर वैठे। अरु गुलाव सिंह पास शी सवारों के कुमे-दान को फरमाइया कि तुम भी अपने साथ के सवारो की सितावी वुलवा लेओ। इस अरसे में सरकार के वुलाणे के मूजव हाकमन साहव[4] आनकर हाजर हूए। आपने तवाजै करके मसनद के ऊपर वैठाइआ''।

---

3. दरवारी। मुजरा करने वाले।
4. संभवतः एक अमेरिकन।

चित्र क्रमांक : 2
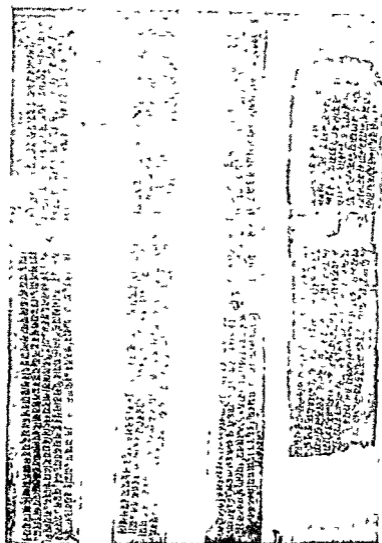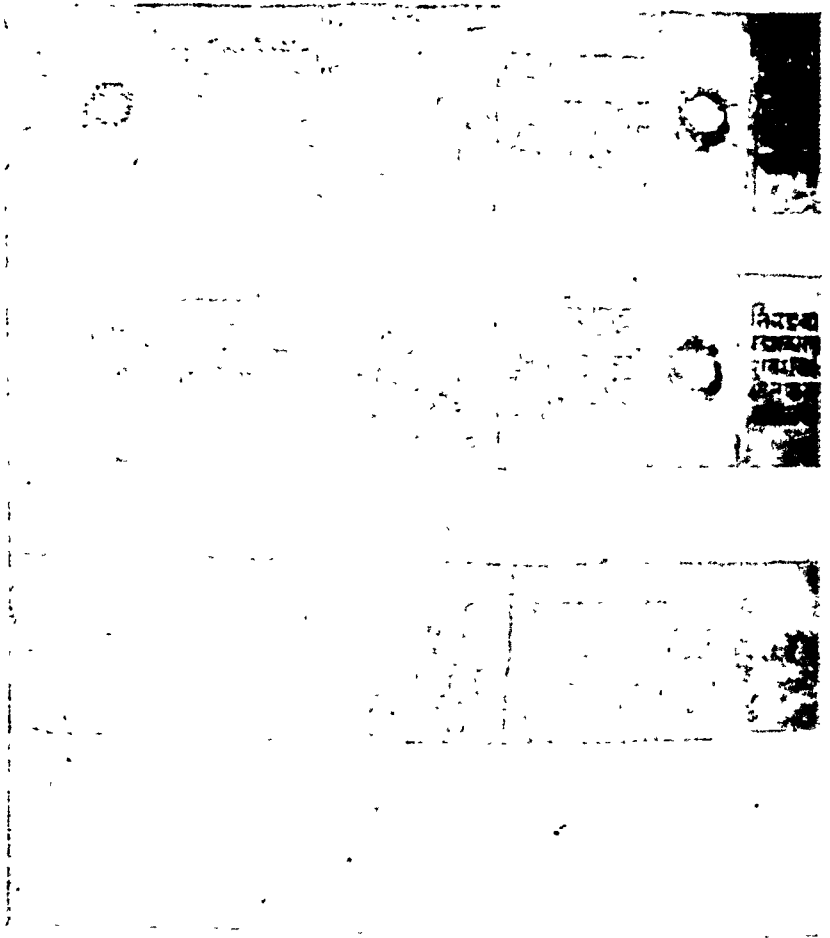
चित्र फलक 5

चित्र फलक : 6

चित्र फलक 7 (क)
सचित्र 'निशीथ चूर्णिका'
(1184 वि० सं०)

चित्र फलक 7 (ख)
सचित्र 'निशीथ चूर्णिका'
(1182 वि० सं०)

चित्र फलक : 8

चित्र फलक 9

चतुरभुजदास की मधुमालती में मैनासत प्रसग

मैनासत प्रसग का अन्तिम पत्र

चित्र फलक 11

ਬ੍ਰਿਹਦ੍ਵਿਚਉਬੈਸਮੋਖਪ੍ਰਕਰਣ ੪

ਪੰਨੇ ੩੧੦ ਸਰਗਪਾਪਕੇਤਿਆਗਾਵਿਖੇ ੧
ਪੰਨੇ ੩੯੮ ਸਰਗਸਬ੍ਰਅਰੁਸੁਕਰਾਵਿਖੇ ੨
ਪੰਨੇ ੪੩੦ ਸਰਗ ਕ੍ਰੈਅਰੁਆਸਾਵਿਖੇ ੩
ਪੰਨੇ ੪੪੮ ਸਰਗਨਿਰਧਨਤਾਈਅਰੁਵੈ
ਰਾਗਕੀਉਸਤਤਿਵਿਖੇ ੪
ਪੰਨੇ ੪੭੧ ਸਰਗਨਿਹਕਾਂਮਤਾਅਰੁ
ਸਚਤਾਵਿਖੇ ੫
ਪੰਨੇ ੪੯੫ ਸਰਗਮਨਕੋਹਿਜਾਬਾਵਿਖੇ
ਪੰਨੇ ੫੧੮ ਸਰਗਵੀਚਾਰਾਵਿਖੇ
ਪੰਨੇ ੫੪੦ ਸਰਗਪ੍ਰੀਤਅਰੁਪ੍ਰੇਮਅ
ਰੁਮਹਾਂਰਾਜਕੀਰਜਾਇਵਿਖੇ
ਪੰਨੇ ੫੯੦ ਸੁਖਨਸਾਂਈਲੋਕਾਕੇ

चित्र पटल : 12

चित्र फलक 13

चित्र फलक : 14

चित्र फलक 15

चित्र फलक : 16

चित्र फलक . 17

संदर्भित पुस्तकें

संस्कृत

कृति	रचयिता	विवरण
अमर कोश	अमर सिंह	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1940
उपमिति भव प्रपंच	वर्धमान सूरी	ताडपत्रीय प्रति
ऋग्वेद		सं प्रो० मैक्समूलर 1873
ऋग्वेद		सं० सातवलेकर 1957
ऋगथदीपिका	डॉ लक्ष्मण स्वरूप	1939
काव्य मीमांसा	राजशेखर	अनुवादक पं० केदारनाथ शर्मा 1965
तत्वार्थ दीपिका	सिद्ध सेन गणि	ताडपत्रीय प्रति 1445 सं०
मणथिर करण	महेन्द्र सूरि	संस्कृत-प्राकृत (पाण्डुलिपि)
महाभारत		सं० डॉ० सुखथंकर 1930
महावीर चरित्रम्	भवभूति	सं० डॉ० टोडरमल 1928
मालती माधव	भवभूति	सं० डॉ० भंडारकर 1905
रघुवंश	कालिदास	बम्बई 1984 सं०
राजतरंगिणी	जोनराज	सं० स्टेन कोनो, 1925
वाचस्पत्यम्		संस्कृत कोश कलकत्ता
हरिवंश पुराण		पूना संस्करण 1969
हलायुध		संस्कृत कोश

अपभ्रंश

कृति	रचयिता	विवरण
अपभ्रंश काव्यत्रयी		सं० लाल चन्द्र गांधी 1927
उक्ति व्यक्ति प्रकरण	दामोदर	सं० मुनि जिन विजय, बम्बई 1953
कीर्तिलता	विद्यापति	सं० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, 1962
णाय कुमार चरिउ	पुष्पदन्त	सं० डॉ० हीरालाल जैन 1933
दोहाकोश	सरहपा	सं० डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची : 1935
दोहाकोश	सरहपा	सं० राहुल सांकृत्यायन : 1957
पाहुड़दोहा		सं० डॉ० हीरालाल जैन 1933
प्राकृत पैंगलम्		सं० डॉ० भोला शंकर व्यास, 1959
प्राचीन फागुसंग्रह		सं० डॉ० भो० जे० संडेसरा, 1960
बौद्ध गान ओ दोहा		सं० म०म० हर प्रसाद शास्त्री, 1916
भविस्सत्त कहा	श्रीधर	सं० हरमन जैकोबी 1918
महापुराण	पुष्पदन्त	सं० डॉ० वैद्य, 1937
राउरवेलि		सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त: 1963
सौर कहा		सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त 1962

कृति	रचयिता	विवरण
सन्देश रासक	अब्दुररहमान	1—स० मुनि जिन विजय, 1945 2—स० विश्वनाथ त्रिपाठी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1960
सिद्ध हैम शब्दानुशासन	हेमचन्द्र	स० डॉ० परशुराम वैद्य, 1928
पुरातन प्रबन्धसग्रह		स० मुनि जिन विजय, 1992 (वि० स०)

हिन्दी

कृति	रचयिता	विवरण
गुरुमुखी लिपि मे हिन्दी गद्य		डॉ० गोविन्दनाथ राजगुरु, 1966
चन्दायन	मौ० दाऊद	सपादक डा० विश्वनाथ प्रसाद
चन्दायन	,, ,,	स० डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त 1962
चान्दायन	,, ,,	स० डॉ० माता प्रसाद गुप्त
जाम्भोजी विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य	डॉ० हीरालाल माहेश्वरी	1970
तुलसीदास	डॉ० माताप्रसाद गुप्त	1953
पद्मावत	जायसी	सम्पादक डा० वासुदेव शरण अग्रवाल 1964
पारसभाग*	अज्ञात	नागरी, गुरमुखी तथा उर्दू अक्षरो मे विभिन्न सस्करण(लखनऊ पाचवा सस्करण) 1914

* इस रचना के विभिन्न भाषाओं मे अनेक रूपातर मिलते हैं। इन्हें अत मे सदर्भित किया गया है।

कृति	रचयिता	विवरण
पारसमणि	स्वामी सनातन देव	1962
पांडुलिपि विज्ञान	डॉ० सत्येन्द्र	1978
पृथ्वीराज रासो	सं० डॉ० वेणी प्रसाद शर्मा	
भारतीय प्राचीन लिपिमाला	गौरी शंकर हीराचन्द ओझा,	1926
भारतीय सम्पादन शास्त्र	प्रो० मूलराज जैन	1937
भारतीय श्रमण संस्कृति	मुनि पुण्य विजय	गुजराती
महाभारत	धर्मदास	पांडुलिपि
मिरगावती		सं० डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त
योग वासिष्ठ भाषा	अज्ञात	नागरी तथा गु. मु. में अनेकश. प्रकाशित
रसलीन ग्रंथावली		सैयद गुलाम नवी
रुकमणी मंगल		पद्म भगत
लेख पद्धति	चिमन लाल, दलाल	1925
हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण		नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2021
हिन्दी साहित्य का इतिहास	पं० रामचन्द्र शुक्ल	1936 संस्करण

पंजाबी (पांडुलिपियां : मुद्रित पुस्तकें)

कृति	रचयिता	विवरण
अंम्रित अनभव	ज्ञान देव	पांडुलिपि (अनुवादक अज्ञात)
अड्डणशाह दीआं साखीआं	अज्ञात	संपादक : गोविन्द सिंह लाम्बा
अध्यात्म रामायण		पद्यानुवाद: गुलाब सिंह निर्मला : 1839 ई०
अ (ड) पवार डेवढी का		पांडुलिपि (फरवरी 1831 से जुलाई 1832 तक)
दयाराम प्रश्नोत्तरी	अज्ञात	पांडुलिपि
आदिग्रंथ।	गुरु अर्जुन देव जी	श्री गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी अमृतसर

कृति	रचयिता	विवरण
आइन ए-अकबरी	अबुल फज़ल	अनुवादक अज्ञात
आदि रामायण	मिहिरवानु हरि जी	गुरमुखी नागरी संस्करण
आसावरीआ भाई सेवा राम	अज्ञात	सेवापंथी कृति
उपनिषद भाषा		दारा शिकोह द्वारा फारसी में अनूदित भाषा-नुवाद (जनप्रह्लादि प्रतिलिपि स० 1897)
गोसटि गुरु मिहिरवानु	हरिजी	सम्पादक डॉ० गोविन्द नाथ राजगुरु
चत्रभुज पोथी	चत्रभुज	17वीं शती की पाडुलिपि
जगत प्रकासादरस	अज्ञात	पाडुलिपि (अनुवाद 'जामे जहानुमा') 7-1-1829 से 26-12-1832 तक
वड्डा सूची पत्तर	सरदार रणधीर सिंह	सिक्ख रेफरेंस लाइब्रेरी स्वर्ण मंदिर, अमृतसर 1962
पचासत उपनिषद भाषा	(दाराशिकोह अनुवाद जन प्रहलाद)	पाडुलिपि 1876
पारसभाग	अज्ञात (अनेकश प्रकाशित)	(प्रकाशित तथा अप्रकाशित अनेक प्रतियां)
पोथी सचुपडु	मिहिरिवानु	संपादक प्रो० करपाल सिंह 1962
प्रसंग भाई घनैया	अज्ञात	(पांच भाग नं० 774-78) खालसा टैक्स सोसाइटी अमृतसर
श्री सतगुरू निर्वाण गज	अज्ञात	पाडुलिपि
सत रतनमाल	सत लालचंद	तीसरा संस्करण
सम्प्रहिसार	अज्ञात	पाडुलिपि 1963
सरब सासत्र सग्रह		पाडुलिपि 1885
साखीआ अड्डण जी कीआ		(अनेक संस्करण)

ENGLISH BOOKS

TITLE	AUTHOR
A Comparative and Etymological Dictionary of Nepali	Turner, R. L.
A Companion to classical Texts	F. W. Hall. 1915
A Companion to Greek Studies	Ed. L. : Whibley 1906
A Companion to Latin studies	(Ed) J. E. Sandys. 1912
A History of Urdu literature	Bailey T. G. 1932
A Literary History of Arabs	Nicholson R. A. 1923
A Mannual of Textual Analysis	V. A. Dearing. 1959
A Niche for Lights	Alghazali, Trans, Gairdnter : Lahore 1934
Aadi Granth	Trumpp (Dr.)
Buddhist Hybrid Sanskrit	Edgerton. F.
Grammar and Dictionary	Yale. Uni 1953
Calculus of Variants	Sir Walter Greg
Catalogue of the Sanskrita and Prakrita MSS in the Library of the India office, Vol. II	A. B. Keith etc
Comparative Dictionary of Indo-Aryan Language	Turner, R. L. 1970
Counsel for Kings	Al-Ghazali Trans. F. R. C. Bagle
Dara Shikuh, Life and Works	Harsat B. J. (Dr.) 1953
Dara Shukoh	Kanungo, K. R. (Dr.) Cal. 1952
Discriptive Catalogue of MSS. (Palm leaves)	A. B. Keith
Dictionary of Islam	Hughs
Elements of South Indian Palaeography	A. H. Burnell
Encyclopaedia of Islam	
Encyclopaedia of Poetics and Poetry :	

TITLE	AUTHOR
Encyclopaedia of Religion and Ethics	
Hadith Literature	Dr Zubyr, M S 1961
History of Dharmashastra Vol II	Dr P V Kane
History of Indian Philosophy	Dass Gupta, S N (Dr) Camb, Uni, 1932
History of Indigenous system of Education since annexation and in 1982	Dr Leitner, 1932
Holy Quran	Maulvi Mohd, Ali Lahore 1920
Ihya-ul-Ulum	Al-Ghazali English Translation Dr Banke Bihari Vrindaban, 1960
India as known to Panini	Dr V S Agarwal 1953
Indian Chronology	L D Swami
Indian Palaeography	G Buhlar 1904
Literary History of Persia	E G Browne 1942
Panchtantra Reconstructed	F Edgerton 1924
Postulates for Distributional study of the Texts	A A Hill 1950 51
Prolegomena to the Critical Edition of the Adiparvan Mahabharata	V S Sukhthanker 1933
Quran	1 Al Bakillani Eng 2 Gusteve E V G Chicago Uni, 1950
Raabiaa the Mystic and her fellow saints in Islam	Margret Smith 1938
Search for Sanskrita MSS	Peter Peterson, Bombay 1887
Sufism	A G Arberri, 1952
Sufi orders in Islam	J, S TRIMINGHAM, 1972
Textual Criticism	J P Postgate 1921
The Editorial Problems in Shakespeare	Sir W Greg, 1951

TITLE	AUTHOR
Introduction to Indian Textual Criticism	S. M. Katre : 1941
The Rationale of Copy Text	Sir. W. Greg : 1950
The Text of the New Testament	K. Lake : 1928
Indian Pelaeography	A. H. Dhani, Oxford : 1963
Indian Palaeography	Rajbali Pande : 1952
Tajkirat-ul-Aulia	Ed. Nicholson 1926
Tahaafut-al-Falsafa	Alghazali : Trans. S. A. Kamali 1961
The Nighantu and Nirukta	Dr. L. Sarup 1920
The Origin and Development of Bengali Language 2 Vols	Chatterji (Dr. S. K.) Cal. 1926
The Ethical Philosophy of Alghazali	Umaruddin, Aligarh 1949
The Legacy of Jews	I. Abraham, 1927
The Recontruction of Religious Thoughts in Islam	Dr. Iqbal, 1931
The Religion of Islam	M. M. Ali, 1936
Yog Vasistha Maha Ramayana of Balmiki	Mitra, Vinaya, Cal. 1891

अल-गज़ाली की प्रमुख रचनाए

(विभिन्न भाषाओ मे अनूदित कृतियां)

कीमिआ-ए-सआदत (पारस भाग), भारतीय भाषाओ मे उपलब्ध अनुवाद —

असमिया

कीमिआ-ए-सआदत 'सौभाग्य पारसमणि' अनुवादक अब्दुल सत्तार मोहन लाइब्रेरी, कलकत्ता 1969।

बगाली

1 'कीमिआ-ए-सआदत'

'बगानुवाद कीमिआ-ए सआदत वा सौभाग्य स्पशमणि'। अनुवादक मौलाना नूर-उल-रहमान, ढाका 1974 (चार भाग)

2 सौभाग्य स्पर्शमणि। अनुवादक यूसुफ अली नूर-उल-समाज, राजशाही 1955 (पाच भाग)

3 'सौभाग्य स्पश मणि' अनुवादक यूसुफ अली, कलकत्ता 1963-64 (दो भाग)

सिंधी

'कीमिआ-ए-सआदत'। अनुवादक गुलाम मुहम्मद जलवानी सिंध अदबी बोड, कराची 1960

उर्दू

1 'गजीन-ए-हिदायत अनुवादक मौलाना शिबली, लाहौर 1862

2 'अक्सीर-ए-हिदायत' अनुवादक मौलवी फखर-उद दीन 'फरग महली' ' नवल किशोर प्रेस लखनऊ (1866-1904 तक 11 सस्करण हो चुके थे। इस का 16 वा सस्करण 'मतबा तेज कुमार, लखनऊ से 1954 मे छपा)

एशियाई भाषाए

तुर्की

1 'कीमिया-यि-सआदत' अनुवादक फारूक मेयेन इस्तांबूल 1969-71

2 'कीमिया-यि-सआदत' अनुवादक ए आर अवानोगलु इस्तांबूल. 1972-73

3. 'कीमिया-यि-सआदत' अनुवादक : मुस्तफा रहमी बलबन : इस्तांबूल : 1953

4. कीमिया-यि-सआदत' : अनुवादक : हवकी सेकोन : इस्तांबूल :

पश्चिमी भाषाएं

अंग्रेजी :

'कीमिया-ए-सआदत'
'The Alchemy of Happiness' : अनुवादक : सी. फील्ड : 1910

जर्मन :

'कीमिया-ए-सआदत'
'Das Elixer...' : अनुवादक : हैलमट रिटर :

इह्या उल-उलूम (अनुवाद)

अंग्रेजी :

'The Revival of Religious Sciences' : अनुवादक : श्री बांके बिहारी (स्वर्गीय) : 1960

फ्रैंच :

'Le Live...'
अनुवादक : लिओत बैंग्वेत : पैरिस : 1953

जर्मन :

'Uberdie guten...'
अनुवादक : हंस किंडरमान : 1964

'भाषा इंडोनीजिआ'

'इह्या-उलुमुद्दीन' : अनुवादक : एम. टी. ए. हमीदी : प्रकाशक : पुस्तक इंडोनीजिआ : (दो भाग)

तमिल :

इह्या-उलूम-अल-दीन
'इराइ तिरुप्ति' : अनुवादक : अब्दुल वहाब : मद्रास : 1960.